श्री सहजानन्द शास्त्रमालाके संरक्षक

(१) श्रीमान् ला० महावीरप्रसाद जी जैन, बैंकर्स, संरक्षक, अध्यक्ष एवं प्रधान ट्रस्टी, सदर मेरठ
(२) श्रीमती सौ० फूलमाला देवी, धर्मपत्नी श्री ला० महावीरप्रसाद जी जैन, बैंकर्स, सदर मेरठ
(३) श्रीमान् लाला लालचन्द विजयकुमार जी जैन सर्राफ, सहारनपुर

श्री सहजानन्द शास्त्रमालाके प्रवर्तक महानुभावों की नामावली—

१	श्रीमान् सेठ भवरीलाल जैन पाण्ड्या,	झूमरीतिलैया
२	,, वर्णीसंघ ज्ञानप्रभावना समिति, कार्यालय,	कानपुर
३	,, कृष्णचन्द जी जैन रईस,	देहरादून
४	,, सेठ जगन्नाथ जी जैन पाण्ड्या,	झूमरीतिलैया
५	श्रीमती सोवती देवी जी जैन,	गिरिडीह
६	श्रीमान् मित्रसैन नाहरसिहजी जैन,	मुजफ्फरनगर
७	,, प्रेमचन्द ओमप्रकाश, प्रेमपुरी,	मेरठ
८	,, सलेखचन्द लालचन्द जी जैन,	मुजफ्फरनगर
९	,, दीपचन्द जी जैन रईस,	देहरादून
१०	,, बारूमल प्रेमचन्द जी जैन,	मसूरी
११	,, बाबूराम मुरारीलाल जी जैन,	ज्वालापुर
१२	,, केवलराम उग्रसैन जी जैन,	जगाधरी
१३	,, सेठ गैंदामल दगडूशाह जी जैन,	सनावद
१४	,, मुकुन्दलाल गुलशनराय जी, नई मडी,	मुजफ्फरनगर
१५	श्रीमती धर्मपत्नी बा० कैलाशचन्द जी जैन,	देहरादून
१६	श्रीमान् जयकुमार वीरसैन जी जैन,	सदर मेरठ
१७	,, मत्री, जैन समाज,	खण्डवा
१८	,, बाबूराम अकलकप्रसाद जी जैन,	तिस्सा
१९	,, विशालचन्द जी जैन रईस,	सहारनपुर
२०	,, बा० हरीचन्दजी ज्योतिप्रसाद जी जैन, ओवरसियर,	इटावा
२१	श्रीमती सौ० प्रेमदेवी शाह सुपुत्री बा० फतेलाल जी जनसघी,	जयपुर
२२	,, मत्राणी, दिगम्बर जैन महिला समाज,	गया
२३	श्रीमान् सेठ समल जी पाण्ड्या,	गिरिडीह
२४	,, बा० गिरनारीलाल चिरजीलाल जी जैन,	,,
२५	,, बा० राधेलाल कालूराम जी मोदी,	,,

२६ श्रीमान् सेठ फूलचन्द बैजनाथ जी जैन, नई मण्डी, मुजफ्फरनगर
२७ ,, मुखबीरसिंह हेमचन्द जी सर्राफ, बड़ौत
२८ ,, गोकुलचद हरकचद जी गोधा, लालगोला
२९ ,, दीपचद जी जैन रिटायर्ड सुप्रिन्टेन्डेन्ट इजीनियर, कानपुर
३० ,, मत्री, दि० जैनसमाज, नाई की मडी, आगरा
३१ श्रीमती सचालिका, दि० जैन महिलामडल. नमककी मडी. ,,
३२ श्रीमान् नेमिचन्द जी जैन, रुडकी प्रेस, रुड़की
३३ ,, झब्बनलाल शिवप्रसाद जी जैन, चिलकाना वाले, सहारनपुर
३४ ,, रोशनलाल के० सी० जैन, ,,
३५ ,, मोल्हडमल श्रीपाल जी, जैन, जैन वेस्ट ,,
३६ ,, बनवारीलाल निरंजनलाल जी जैन, शिमला
३७ ,, सेठ शीतलप्रसाद जी जैन, सदर मेरठ
३८ दिगम्बर जैनसमाज गोटे गाँव
३९ श्रीमती माता जी धनवती देवी जैन, राजागज, इटावा
४० श्रीमान् ब्र० मुख्त्यारसिंह जी जैन, "नित्यानन्द" रुडकी
४१ ,, लाला महेन्द्रकुमार जी जैन, चिलकाना
४२ ,, लाला आदीश्वरप्रसाद राकेशकुमार जैन, ,,
४३ ,, हुकमचद मोतीचद जैन, सुलतानपुर
४४ ,, ला० मुन्नालाल यादवराय जी जैन, सदर मेरठ
४५ ,, इन्द्रजीत जी जैन, वकील, स्वरूपनगर, कानपुर
४६ श्रीमती कैलाशवती जैन, ध० प० चौ० जयप्रसाद जी, सुलतानपुर
४७ श्रीमान् * गजानन्द गुलाबचन्द जी जैन, बजाज, गया
४८ ,, * बा० जीतमल इन्द्रकुमार जी जैन छाबडा, झूमरीतिलैया
४९ ,, * सेठ मोहनलाल ताराचन्द जी जैन बडजात्या, जयपुर
५० ,, * बा० दयाराम जी जैन आर एस. डी ओ. सदर मेरठ
५१ ,, × जिनेश्वरप्रसाद अभिनन्दनकुमार जी जैन, सहारनपुर
५२ ,, × जिनेश्वरलाल श्रीपाल जी जैन, शिमला

नोटः—जिन नामोंके पहले * ऐसा चिन्ह लगा है उन महानुभावोकी स्वीकृत सदस्यताके कुछ रुपये आ गये है, शेष आने है तथा जिन नामोके पहले × ऐसा चिन्ह लगा है उनकी स्वीकृत सदस्यताका रुपया अभी तक कुछ नही आया, सभी बाकी है ।

आत्म-कीर्तन

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री शान्तमूर्ति पूज्य श्री मनोहरजी वर्णी "सहजानन्द" महाराज द्वारा रचित

हूं स्वतन्त्र निश्चल निष्काम । ज्ञाता द्रष्टा आतमराम ।।टेक।।

अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग यहं रागवितान ।
मैं वह हूं जो है भगवान, जो मै हूं वह हैं भगवान ।।१।।

मम स्वरूप है सिद्ध समान, अमित शक्ति सुख ज्ञान निधान ।
किन्तु आशवश खोया ज्ञान, बना भिखारी निपट अजान ।।२।।

सुख दुःख दाता कोइ न आन, मोह राग दुःख की खान ।
निजको निज परको पर जान, फिर दुःखका नहिं लेश निदान ।।३।।

जिन, शिव ब्रह्मा राम, विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम ।
राग त्यागि पहुंचू निज धाम, आकुलताका फिर क्या काम ।।४।।

होता स्वयं जगत परिणाम, मै जगका करता क्या काम ।
दूर हटो परकृत परिणाम, 'सहजानन्द' रहूं अभिराम ।।५।।

•••○○•••

[धर्मप्रेमी बंधुओ ! इस आत्मकीर्तनका निम्नांकित अवसरो पर निम्नांकित पद्धतियों में भारतमें अनेक स्थानोंपर पाठ किया जाता है। आप भी इसी प्रकार पाठ कीजिए]

१—शास्त्रसभाके अनन्तर या दो शास्त्रोके बीचमे श्रोतावों द्वारा सामूहिक रूपमे ।
२—जाप, सामायिक, प्रतिक्रमणके अवसरपर ।
३—पाठशाला, शिक्षासदन, विद्यालय लगनेके समय छात्रो द्वारा ।
४—सूर्योदयसे एक घटा पूर्व परिवारमें एकत्रित बालक, बालिका, महिला तथा पुरुषो द्वारा ।
५—किसी भी आपत्तिके समय या अन्य समय शान्तिके अर्थ स्वरुचिके अनुसार किसी अर्थ, चौपाई या पूर्ण छंदका पाठ शान्तिप्रेमी बन्धुओ द्वारा ।

सम्पादकीय (द्वितीय संस्करण)

प्रिय अध्यात्मप्रेमी बन्धुवर !

अनादि कालसे ससारमे परिभ्रमण करते-करते इस जीवने अनेक बार मनुष्यभव पाकर जैनधर्मरूपी अमृतका पान किया, परन्तु भव-भ्रमणसे छुटकारा न पाया, इसका मुख्य कारण था द्रव्यकी प्रतीतिका न होना।

भव्य जीवकी इस जिज्ञासाको पूर्ण करनेके लिए 'द्रव्यसग्रह प्रश्नोत्तरी टीका' एक अनुपम रचना है, जिसका पूज्य गुरुवर्य्यने इस प्रकारसे सकलन किया है कि आध्यात्मिक बधु का इसको बार-बार मनन करनेपर भी छोडनेको जी नही चाहता।

प्रथम बार यह पुस्तक देखनेमे तब आई जब आजसे २ वर्ष पहले श्री सुमेरचन्द जी जैन, सम्पादक 'वर्णी प्रवचन' मुजफ्फरनगरने मुझे इस अमूल्य ग्रन्थकी एक प्रति भेट की। इसका स्वाध्याय करके मैने कोटिशः धन्यवाद मन ही मन श्री सुमेरचन्द जी को दिया और पूज्य गुरुवर्य्यके प्रति श्रद्धा तो पहले ही थी, पर जितनी बार भी इस पुस्तकका अध्ययन करता था मन रोमाचित होकर गद्गद् हो जाता था।

अत: मैने अपनी मेरठकी गोष्ठीमे इसकी चर्चा एव विवेचन किया, जिसका यह असर हुआ कि गोष्ठीमे उपस्थित स्त्री व पुरुषोकी बडी जिज्ञासा बढी और बहुत तलाश करनेपर भी दस बारह आदमियोके लिए मगो हुई दो प्रतिया उपलब्ध हो सकी। मनन ज्यो-ज्यो बढा, जिज्ञासा बढती गई और जब सब जगहसे निराश होकर थक गए तो मै श्री खेमचन्द जी जैन, मत्री 'श्री सहजानन्द शास्त्रमाला' के पास पहुचा, जिन्होने इसके पुनः छपवानेका भरसक प्रयत्न करनेका आश्वासन दिया। महाराजजी आजकल जबलपुर चातुर्मास कर रहे थे, अतः उनके आनेकी प्रतीक्षा की गई और उन्होने भी अपनी अनुमति देकर हमे कृतार्थ किया।

प्रूफ रीडिगका भार मैने अपने ऊपर लिया, पूज्य गुरुवर्य्यकी आज्ञा हुई कि इस द्वितीय सस्करणका सम्पादन भी मेरे ही जिम्मे रहे। अतः यह ग्रथ आपके समक्ष उपस्थित है। मेरी लापरवाहीके कारण अगर इसमे त्रुटिया रह गई हो तो आप अपनी प्रतिमे ठीक करके मुझे सूचना देकर कृतार्थ करे।

यह ग्रथ अत्यत उपयोगी है। इसके अध्ययनमें आपको जो आनद आएगा वह निश्चय ही आपको श्रेयोमार्गके सन्मुख कर देगा और तत्त्वज्ञानकी एक अद्वितीय प्रभा आपके अन्तरमे उत्पन्न होकर कल्याणका कारण होगी।

आपसे प्रार्थना है कि ग्रन्थमालाके अन्य प्रकाशनोका भी अध्ययन करके लाभ उठाये।

विनीत —डा० नानकचन्द जैन
२५१, गली पार्श्वनाथ, मौ० ठठेरवाडा, मेरठ शहर।

सम्पादकीय

प्रिय धर्मबन्धुवो !

आपकी सेवामे यह ग्रन्थ देते हुए मुझे परम हर्षका अनुभव हो रहा है कि मुमुक्षु जिज्ञासु भाइयोके लक्ष्यकी पूर्तिमे सहायक इस ग्रन्थको पहुचानेमे सफल हुआ हू ।

इस ग्रन्थकी मूल गाथाओमे सक्षिप्त सिद्धान्त दर्शाया गया है । उसकी टीकामे कैसे वैराग्य जगता, कैसी क्रिया होनी चाहिये, सब क्रियावोका मूल प्रयोजन अध्यात्मगमन कैसे बनता, चरणानुयोगकी क्या उपयोगिता है, निमित्तनैमित्तिकयोग व वस्तुस्वातंत्र्यका कैसे अविरोध है, निमित्तनैमित्तिक योगका परिचय विभावसे हटनेमे कैसे सहयोगी है, वस्तुस्वातन्त्र्यका परिचय स्वभावके अभिमुख होनेमे कैसे सहयोगी है आदि तथ्योका परिचय हितकारी पद्धतिसे कराया गया है ।

इस ग्रन्थमे आध्यात्मिक एव सैद्धान्तिक अनेक रहस्योका अनेक प्रश्न व उत्तरोके रूप मे विशदीकरण है, जिसको पढते हुए ज्ञान व शुद्ध आनन्दका अनुभव होता चला जाता है ।

इस ग्रन्थका निर्माण अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री मनोहर जी वर्णी 'सहजानन्द महाराज' ने श्री प्रो० लक्ष्मीचन्द जी जैन एम. एस-सी. जबलपुर वालोके अध्ययनके निमित्त से किया है । प्रोफेसर साहबने बडी तत्परताके साथ सन् १९५६ के महाराज श्री के वर्षायोग मे महाराजको इग्लिशका अध्ययन कराया था, जिससे महाराज श्री भी आर्षग्रथोका इग्लिशमे एक्सपोजीशन भी लिखने लगे है । आजकल इग्लिशमे समयसारका एक्सपोजीशन लिखा भी जा रहा है । जिसमे से एक पुस्तक प्रकाशित भी हो गई है । आपने प्रोफेसर साहब की अद्भुत भावनासे आकर्षित होकर उनके अध्ययनके लिये इस ग्रन्थकी रचना की है । इसमे कुल प्रश्नोत्तर २२३८ है । प्रश्नोत्तरोसे विषय सुगम और रोचक हो गया है ।

इसमे क्या क्या विषय है, इसको मैं यह इसलिये नही लिख रहा हू कि इसको मैं सक्षेपमे क्या बाधूं, इसका तो आद्योपान्त अध्ययन करना ही चाहिये ।

आशा ही नही अपितु पूर्ण विश्वास है कि इस ग्रन्थके अध्ययन, मननसे शान्तिका मार्ग अवश्य ही प्राप्त होगा ।

—महावीरप्रसाद जैन, बैड्कर्स
सदर, मेरठ (उ० प्र०)

संक्षिप्त विषय परिचय

प्रथम अध्याय—गाथा २७, प्रश्नोत्तर ८३०, वर्णन—उद्देश्यसाधक मङ्गलाचरण, जीव स्वरूपके ६ अधिकार, जीवका निरुक्त्यर्थ, जीवकी उपयोगिता, उपयोगके भेद प्रभेदोंका विशद विवरण, जीवका लक्षण, अमूर्तित्व, कर्तृत्व, भोक्तृत्व, स्वदेहपरिमाणत्व, ससारित्वके भेदप्रभेद, चौदह जीवसमास, वदीफिके भेद सिद्धत्व और ऊर्ध्वगमनत्व, अजीवद्रव्योके भेद पुद्गलकी पर्यायें, धर्म, अधर्म, आकाश और उसके भेद, कालद्रव्यका स्वरूप, कालद्रव्यकी सख्या अस्तिकाय की सख्या, अस्तिकायका स्वरूप, द्रव्योके प्रदेशोका परिमाण, अणुके अस्तिकाय-पना, प्रदेशके स्वरूपका वर्णन है।

द्वितीय अध्याय—गाथा ११, प्रश्नोत्तर ८३४, वर्णन—नव तत्त्वोके नाम, आस्रवका स्वरूप, भावास्रवोका विशेष विवरण, द्रव्यास्रवोका विशेष विवरण, बन्धतत्त्वका स्वरूप, द्रव्य बधके भेद व कारण, सवर तत्त्वका स्वरूप, भावसंवरका विस्तृत विवरण, निर्जरातत्त्वका स्व-रूप, मोक्षतत्त्वका स्वरूप, पुण्य व पाप तत्त्वका स्वरूप।

तृतीय अध्याय—गाथा २०, प्रश्नोत्तर ४७४, वर्णन—निश्चयरत्नत्रय, इसे एक आत्मा का कहनेका कारण, सम्यग्दर्शनके गुण व दोष, सम्यग्ज्ञानका स्वरूप, दर्शनका स्वरूप, दर्शन व ज्ञानकी सहभाविता क्रमभाविता, सम्यक्चारित्र, अभेद सम्यक्चारित्र, ध्यानका स्वरूप, ध्यान की सिद्धिका उपाय, पदस्थध्यान, अरहतपरमेष्ठीका स्वरूप, सिद्धपरमेष्ठीका स्वरूप, आचार्यपर-मेष्ठीका स्वरूप, उपाध्यायपरमेष्ठीका स्वरूप, साधुपरमेष्ठीका स्वरूप, निश्चयध्यान व परमध्यान का स्वरूप व उपाय, अंतिम उपदेश, अंतिम कथन।

परमात्म-आरती

ॐ जय जय अविकारी।

जय जय अविकारी, ॐ जय जय अविकारी।
हितकारी भयहारी, शाश्वत स्वविहारी ॥टेक॥ ॐ

काम क्रोध मद लोभ न माया, समरस सुखधारी।
ध्यान तुम्हारा पावन, सकल क्लेशहारी ॥१॥ ॐ

हे स्वभावमय जिन तुमि चीना, भव सन्तति टारी।
तुव भूलत भव भटकत, सहत-विपति भारी ॥२॥ ॐ

परसम्बध बध दुख कारण, करत अहित भारी।
परमब्रह्मका दर्शन, चहु गति दुखहारी ॥३॥ ॐ

ज्ञानमूर्ति हे सत्य सनातन, मुनिमन सचारी।
निर्विकल्प शिवनायक, शुचिगुण भण्डारी ॥४॥ ॐ

बसो बसो हे सहज ज्ञानघन, सहज शांतिचारी।
टले टलें सब पातक, परबल बलधारी ॥५॥ ॐ

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ गुरुवर्य्य पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक
मनोहर जी वर्णी "सहजानन्द" महाराज

पूज्यपाद श्रीमन्नेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्तिकृत

द्रव्यसंग्रह

की प्रश्नोत्तरी टीका

मंगलाचरण

जीवमजीव दव्व जिणवरवसहेण जेण णिद्दिट्ठं ।
देविंदविंदवदं वंदे त सव्वदा सिरसा ॥१॥

अन्वय—जेण जिणवरवसहेण जीवमजीव दव्वं णिद्दिट्ठ देविदविदवद तं सव्वदा सिरसा वंदे ।

अर्थ—जिन जिनवरवृषभ (तीर्थंकरदेव) ने जीव व अजीव द्रव्यका निर्देश किया है, देवेन्द्रोंके समूह द्वारा वंदनीय उन प्रभुको सदा सिर नमाकर वंदन करता हू ।

प्रश्न १—जिन्हे वंदन किया है उनको जीव अजीव द्रव्यके निर्देष्टा—इस विशेषणसे कहनेका क्या कोई विशेष प्रयोजन है ?

उत्तर—यह विशेषण ग्रन्थनामसे सम्बन्ध रखता है । इस ग्रन्थमे द्रव्योका वर्णन करना है अत. द्रव्यके निर्देष्टाको वदित किया है ।

प्रश्न २—इस विशेषणसे क्या कुछ ग्रन्थकी भी विशेषता होती है ?

उत्तर—जिन द्रव्योका वर्णन इस ग्रन्थमे करना है उन द्रव्योका निर्देष्टा निर्दोष आप्त बतलानेसे ग्रन्थकी प्रामाणिकता सिद्ध होती है ।

प्रश्न ३—द्रव्यके नामके लिये यहाँ "जीव अजीव" इतने शब्दोसे क्यो कहा ?

उत्तर—जीव व अजीवके परिज्ञान बिना स्वभावकी प्राप्ति असम्भव है अतः निजके स्वभाव जाननेके प्रयोजनको जीव शब्दसे बताया है व अन्य जिन सबोसे लक्ष्य हटाना है उनको अजीव शब्दसे कहा है ।

प्रश्न ४—मूर्त और अमूर्त—इस प्रकार भी तो द्रव्यके दो प्रकार है, तब "मुत्तममुत्तं दव्व" इस प्रकार क्यो नही कहा गया ?

उत्तर—मूर्त अमूर्त कहनेपर अमूर्त आत्मा मूर्तसे तो पृथक् हो गया, किन्तु अमूर्त अन्य

४ द्रव्योसे पृथक् प्रतीत नही हो पाता, अत. केवल आत्माके ध्यानका मार्ग बनानेके उद्देश्यसे रचित इस ग्रन्थमे जीव अजीव शब्दका प्रयोग किया है।

प्रश्न ५—जीव अजीवमे जीवका पहिले नाम क्यो रक्खा ?

उत्तर—सब द्रव्योमे जीव ज्ञाता होनेसे प्रधान है तथा वक्ता श्रोता सभी जीव है। जीव को ही कल्याण करना है, अतः जीवका पहिले नाम रक्खा है।

प्रश्न ६—जीव और अजीवका लक्षण क्या है ?

उत्तर—जीव अजीवके सम्बधमे इसी ग्रन्थमें आगे विस्तारसे वर्णन होगा, अतः यहाँ न कहकर अन्य आवश्यक बातें कही जायेंगी।

प्रश्न ७—श्लोकमे व ग्रन्थनाममे "दव्वं" शब्द क्यो कहा गया, तच्च (तत्त्व) आदि शब्द भी तो कहा जा सकता था ?

उत्तर—वस्तुको पदार्थ, अस्तिकाय, द्रव्य, तत्त्व—इन चार शब्दोंसे कहा जाता है। इनमे द्रव्यदृष्टिसे तो पदार्थ, क्षेत्रदृष्टिसे अस्तिकाय, कालदृष्टिसे द्रव्य, भावदृष्टिसे तत्त्व नाम पडता है। सो इस ग्रथमे कालकी (पर्याय) बहुलतासे वस्तुका वर्णन है, अतः द्रव्य शब्द कहा है।

प्रश्न ८—जिणवरवसहेण इतना बडा शब्द क्यो रक्खा, जब तीर्थंकर जिन भी कहलाते हैं, सो मात्र जिन शब्दसे भी काम चल जाता ?

उत्तर—जिणवरवसह (जिनवरवृषभ) शब्दका अर्थ है जो मिथ्यात्व वैरीको जीते सो जिन अर्थात् सम्यग्दृष्टि गृहस्थ व मुनि उन सबमे श्रेष्ठ गणधर व उनसे भी श्रेष्ठ तीर्थङ्कर। इन तीन शब्दोसे परम्परा भी सूचित कर दी गई है कि सिद्धान्तके मूलग्रन्थकर्ता तो तीर्थंकर देव हैं अर्थात् इनकी दिव्यध्वनिके निमित्तसे सिद्धातका प्रवाह चला, उसके बाद उत्तरग्रन्थकर्ता गणधर देव हुए, फिर अन्य मुनिजन हुए, बादमे गृहस्थ पडितोने भी उसका प्रवाह बढाया।

प्रश्न ९—यहाँ "णिद्दिट्ठ" शब्द ही क्यो दिया, रचित आदि क्यो नही दिया ?

उत्तर—किसी भी सत्का रचने वाला कोई नही है। जीव अजीव द्रव्य सभी स्वतन्त्रता से अपना अस्तित्व रखते है, तीर्थंकर परमदेवने तो पदार्थ जैसे अवस्थित है वैसा निर्देश मात्र किया (दर्शाया) है। इससे अकर्तृत्व सिद्ध हुआ।

प्रश्न १०—देविंदविंदवद इस विशेषणसे प्रभुकी निज महिमा तो कुछ भी नही हुई, फिर इस विशेषणसे क्या द्योतित किया ?

उत्तर—जिन्हे देवेन्द्रोका सर्वसमूह वंदन करता हो, उनमे उत्कृष्ट सच्चाई अवश्य है, सो इस विशेषणसे उत्कृष्ट सच्चाई सुव्यक्त की, तथा वदनाका प्रकरण है उसमे केवल यही बात नही है कि मै वदना करता हू, किन्तु उन्हे तीन लोक वंदन करता है। कही मैं नया मार्ग नही कर रहा हू, यह द्योतित होता है।

प्रश्न ११—वदन कितने प्रकारसे होता है ?

उत्तर—जितनी दृष्टिया है उतने प्रकारसे वदन है। उनको संक्षिप्त करनेपर ये पाँच दृष्टिया प्राप्त होती है—(१) व्यवहारनय, (२) अशुद्धनिश्चयनय, (३) एकदेशशुद्धनिश्चयनय, (४) सर्वशुद्धनिश्चयनय, (५) परमशुद्धनिश्चयनय।

प्रश्न १२—व्यवहारनयसे किसको वदन किया जाता है ?

उत्तर—व्यवहारनयसे (अनतज्ञान, अनतदर्शन, अनतसुख, अनतशक्ति-सम्पन्न घाति-कर्मक्षयसिद्ध तीर्थंकर परमदेवको नमस्कार किया है)

प्रश्न १३—अशुद्धनिश्चयनयसे किसको वंदन हुआ ?

उत्तर—तीर्थंकर परमदेवके लक्ष्यके निमित्तसे जो प्रमोद व भक्तिभाव हुआ है उस भावको उस भावमे परिणत होने रूप वदन हुआ है।

प्रश्न १४—एकदेशशुद्धनिश्चयनयसे किसका वंदन हुआ ?

उत्तर—इस नयसे निज आत्मामे ही जो शुद्धोपयोगका अश प्रकट हुआ है उसके उपयोगरूप वदन हुआ है।

प्रश्न १५—सर्व शुद्धनिश्चयनयसे किसको वदन हुआ है ?

उत्तर—इस नयसे पूर्ण शुद्धपर्याय गृहीत होती है, वह वंदकके है नही और जब होगी तब केवल शुद्ध परिणमन है, वहाँ मात्र ज्ञाता द्रष्टा रहते है।

प्रश्न १६—परमशुद्ध निश्चयनयसे किसको नमस्कार हुआ ?

उत्तर—यह नय विकल्पातीत अनादिनिधन स्वतःसिद्ध चैतन्यमात्रको देखता है, वहाँ वन्द्यवंदक भाव नही है।

प्रश्न १७—इस श्लोकमे किस नयसे वदन हुआ है ?

उत्तर—शब्द-प्रणालीसे तो व्यवहारनयसे वंदन हुआ और (परमशुद्ध निश्चयनय व सर्वशुद्धनिश्चयनयको छोडकर) शेष अशुद्ध निश्चयनय व एकदेश शुद्धनिश्चयनयसे पूर्वोक्त वंदन अन्तर्निहित है।

प्रश्न १८—यहाँ सर्वदा वदन करना लिख रहे हैं यह तो सिद्धांतविरुद्ध भाव है, क्योंकि सम्यग्दृष्टि यदि सर्वदा कुछ चाहता है तो ज्ञानमात्र परिणमन ही चाहता है ?

उत्तर—यहाँ सर्वदाके कालको सीमाके भीतर ही लेना चाहिये अर्थात् जब तक निर्विकल्प स्थितिके सन्मुख नही हुआ तब तक आपका स्मरण वंदन रहे। जब तक अजीवसे पृथक् निज जीवस्वरूपकी निर्विकल्प उपलब्धि न हो तब तक ध्यान रहे।

प्रश्न १९—सिरसा शब्द देनेकी कोई विशेषता है क्या ?

उत्तर—(सिर श्रद्धाकी हाँ के साथ ही झुकता है, इससे मनकी सभाल सूचित हुई। अन्तर्जल्पके साथ सिर नमता है, इससे वचनकी सभाल हुई। कायकी सभाल तो प्रकट व्यक्त

है। इस तरह सिरसा इस शब्दसे मन, वचन, काय तीनोको संभालकर वदन करना सूचित हुआ)।

प्रश्न २०—द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म तीनोसे रहित परमात्मा तो सिद्ध परमेष्ठी हैं जो अत्यन्त उत्कृष्ट है उन्हे नमस्कार करना चाहिये था ?

उत्तर—यद्यपि यह सत्य है कि सर्वोत्कृष्ट देव सिद्ध परमेष्ठी हैं और वे आराधनीय है तथापि उनका भी परिज्ञान एव विविध सम्यग्ज्ञान श्री जिनेन्द्रदेवके प्रसादसे हुआ है तो उनके उपकारके स्मरणके लिये अर्हंत परमेष्ठीको नमस्कार किया है तथा जितने भी सिद्ध परमेष्ठी हुए हैं वे भी पहिले अरहत परमेष्ठी थे, सो उनकी पूर्वावस्थाके नमस्कारसे सिद्धप्रभु का नमस्कार तो सिद्ध ही है।

प्रश्न २१—विवेकी जनोकी शासनप्रवृत्ति सम्बन्ध, अभिधेय, प्रयोजन, शक्यानुष्ठान विना होती नही है। यहाँ ये चारो किस प्रकार हैं ?

उत्तर—सम्बन्ध तो यहाँ व्याख्यान व्याख्येयका है। व्याख्यान तो द्रव्य व परमात्म-स्वरूप आदिके विवरणका है और व्याख्येय उसके वाचक सूत्र हैं। अभिधेय परमात्मस्वरूप आदि वाच्य अर्थ हैं। प्रयोजन सब द्रव्योका परिज्ञान है और निश्चयसे ज्ञानानदमय निज स्वरूपका सवेदन, ज्ञान है और अन्तमे पूर्ण शुद्ध स्वरूपकी प्राप्ति है। शक्यानुष्ठान तो यह है ही, क्योकि ज्ञानमय आत्मा ज्ञानरूप मोक्षमार्गको साधे, इसमे कोई कठिनाई भी नही है।

प्रश्न २२—क्या ग्रन्थके आदिमे मगलाचरण करना आवश्यक है ?

उत्तर—यद्यपि परमात्माका व्याख्यान स्वय मगल है तथापि (जिनेन्द्रदेवके मूल परोप-कारसे सन्मार्गको पानेवाले अतरात्मासे उनका स्मरण हुए विना रहा ही नही जा सकता,) क्योकि महापुरुष निरहकार और कृतज्ञ होते हैं।

प्रश्न २३—मगलाचरणविधानसे क्या अन्य भी कोई फल व्यक्त होते हैं ?

उत्तर—मगलाचरणके अन्य भी फल हैं—१–नास्तिकताका परिहार। २–शिष्टाचार की पालना। ३–विशिष्ट पुण्य। ४–शास्त्रकी निर्विघ्न समाप्ति। ५–कृतज्ञताका विकास। ६–निरहकारताकी सूचना। ७–ग्रन्थकी प्रामाणिकता। ८–ग्रन्थ पढने सुनने वालोकी श्रद्धाकी वृद्धि आदि।

इस प्रकार श्रीमज्जिनेन्द्रदेवको नमस्कार करके श्रीमन्नेमिचन्द्राचार्य अब जीवद्रव्यका साधिकार वर्णन करते है—

जीवो उवओगमओ अमुत्ति कत्ता सदेहपरिमाणो।
भोत्ता ससारत्थो सिद्धो सो विस्ससोड्ढगई ॥२॥

अन्वय—सो, जीवो उवओगमओ अमुत्ति कत्ता सदेहपरिमाणो भोत्ता ससारत्थो सिद्धो

विस्ससोड्ढगई ।

अर्थ—वह जीव जीने वाला है, उपयोगमय है, अमूर्तिक है, कर्ता है, अपने देहके बराबर है, भोक्ता है, ससारमे स्थित है, सिद्ध है और स्वभावसे ऊर्ध्वगमन वाला है ।

प्रश्न १—अन्वयमे सर्वप्रथम 'सो' शब्दसे तभी अर्थ ध्वनित होता जब कि पहले जीवके बारेमे कुछ कह आये होते । यहाँ 'सो' शब्द कैसे दे दिया ?

उत्तर—यद्यपि 'सो' शब्द सिद्धोके बाद ठीक है, क्योकि जो ऐसा विशिष्ट है वह स्वभावसे ऊर्ध्वगमन वाला है तथापि अर्थमे साथ साथ नव अधिकारोको स्पष्ट करनेके लिये सो शब्द पहिले दिया है ।

प्रश्न २—'सो' शब्दसे जीवका ग्रहण कैसे कर लिया ?

उत्तर—इसके कई हेतु ये है—१–नमस्कार गाथामे पहिले जीवद्रव्य कहा है, उसके सम्बन्धमे यह उसके बादकी गाथा है । २–इस गाथामे दिये हुए विशेषण स्पष्टतया जीवके हैं । ३–इस ग्रन्थमे अति मुख्यतया जीवद्रव्यका वर्णन है । सर्व द्रव्योके वर्णनमें जीवका वर्णन मुख्य होता है ।

प्रश्न ३–जीने वाला है, इसका भाव क्या है ?

उत्तर–इस विशेषणको व अन्य सभी विशेषणोको समझनेके लिये अशुद्धनय व शुद्धनय दोनो दृष्टियोसे परीक्षण करना चाहिये । जीव शुद्धनयसे तो शुद्ध चैतन्यप्राणसे ही जीता है जो शुद्ध चैतन्य अनादि अनत अहेतुक व स्व-पर-प्रकाशक स्वभावी है । परन्तु अशुद्धनयसे अनादि कर्मबन्धके निमित्तसे अशुद्ध प्राणो (इन्द्रिय, बल, आयु, उच्छ्वास) करि जीता है ।

प्रश्न ४–इस विशेषणके देनेकी क्या सार्थकता है ?

उत्तर—जीवकी सत्ता माननेपर ही तो सर्व धर्म अवलम्बित है । कितनोका तो ऐसा अभिप्राय है कि जीव कुछ नही है, यह सब तो पृथ्वी, जल, अग्नि, वायुके समागमका चमत्कार है, वे निज चैतन्यमे कैसे स्थिर होगे, वे तो जिस किसी भी भावपूर्वक अतमे मरण करके भी स्वसे च्युत रहकर भव-दुःख बढावेंगे । इसलिये आस्तिकताकी सिद्धिके लिये वह विशेषण दिया है ।

प्रश्न ५—जीवको जैसा दोनो नयोसे घटित किया है ये दोनो स्वरूप जीवमे क्या एक साथ है अथवा क्रमसे ?

उत्तर—ये दोनो स्वरूप एक साथ है, क्योकि ध्रुव चैतन्य बिना व्यवहार प्राण कैसे बनेंगे और इस ससार दशामे व्यवहार प्राण प्रकट प्रतीत हो रहे हैं । हाँ इतनी बात अवश्य है कि कर्ममुक्त होनेपर वह व्यवहारसे (पर्यायसे) जो कि शुद्ध निश्चयनयस्वरूप है, चैतन्यकी शुद्ध व्यक्तिसे जीता है ।

प्रश्न ६—उक्त तीनो भावो मे से किस भावपर दृष्टि देना लाभकारी है ?

उत्तर—इनमे से परमशुद्धनय (जिसे कि शुद्धनय शब्दसे कहा है) के विषयभूत शुद्ध चैतन्यपर दृष्टि देना आवश्यक है, क्योकि अध्रुव और विकारी पर्यायपर दृष्टि देनेसे निर्विकल्पकता नही आती, किन्तु ध्रुव और अनादि अनत अविकारी स्वभावपर दृष्टि देनेसे निर्विकल्पकताका प्रवाह सचरित होता है।

प्रश्न ७—उवओगमओ शब्दका अर्थ कितने प्रकारसे है ?

उत्तर—यहाँ उपयोगसे अर्थ चैतन्यके परिणामोंसे है, अतः पर्यायप्ररूपक यह शब्द है, अतएव यहाँ परमशुद्धनिश्चयनयका प्रकार तो नही है, शेष दो प्रकार निश्चयनयके हैं—(१) अशुद्ध निश्चयनय, (२) शुद्ध निश्चयनय।

प्रश्न ८—अशुद्धनिश्चयनयसे जीव कैसे उपयोग वाला है ?

उत्तर—अशुद्ध निश्चयनयसे यह जीव क्षायोपशमिक ज्ञानोपयोग और क्षायोपशमिक दर्शनोपयोग वाला है।

प्रश्न ९—जीवको औदयिक अज्ञानके उपयोग वाला यहाँ क्यो नही कहते ?

उत्तर—औदयिक अज्ञान ज्ञानके अभावको कहते हैं। यद्यपि ज्ञानका सर्वथा अभाव कभी भी नही होता तथापि कम अधिक विकास वाला ज्ञान तो रह ही सकता है, सो जितने अशमे ज्ञान है वह तो क्षायोपशमिक है, वहाँ उपयोग होता है, परन्तु जितने अंश प्रकट नही है वह अज्ञान औदयिक है वहा तो उपयोग ही क्या होगा ? अत: अशुद्धनिश्चयनयसे क्षायोपशमिक ज्ञान दर्शनोपयोगमय जीव है।

प्रश्न १०—शुद्ध निश्चयनयसे कैसे उपयोग वाला जीव है ?

उत्तर—शुद्ध निश्चयनयसे निर्मल स्वभावपर्याय रूप केवलज्ञान केवलदर्शनके उपयोग वाला है।

प्रश्न ११—परमशुद्ध निश्चयनयसे किसी उपयोग वाला क्यो नही बताया ?

उत्तर—उपयोग चैतन्यस्वभावकी ही पर्याय है, परमशुद्धनिश्चयनय ध्रुव द्रव्य स्वभावकी दृष्टि करता है, वह पर्यायको विषय नही करता। इसलिए उपयोगमय शुद्धनिश्चयनय व अशुद्धनिश्चयनयसे ही कहा गया है।

प्रश्न १२—जीवके अमूर्तके सम्बन्धमे जाननेके लिये कितनी दृष्टियाँ है ?

उत्तर—तीन दृष्टियाँ है—१–व्यवहारनय, २–अशुद्धनिश्चयनय, ३–शुद्धनिश्चयनय।

प्रश्न १३—व्यवहारनयसे जीव कैसा है ?

उत्तर—व्यवहारनयसे जीव मूर्तिक कर्मोंके आधीन होनेसे स्पर्श रस गध वर्ण वाले कर्म नोकर्मोंसे घिरा है, सो मूर्तिक है।

प्रश्न १४—जीव अशुद्धनिश्चयनयसे कैसा है ?

उत्तर—औदयिक भाव व क्षायोपशमिक जो कि आत्माके स्वभावकी दृष्टिमे विभाव है उनसे सहित होनेसे जीव मूर्तिक है। यहाँ इन भावोमे स्पर्श रस गध वर्ण नही समझना, किन्तु ये भाव क्षायिक भावकी अपेक्षा स्थूल है अतः मूर्त है व इनके सम्बन्धसे आत्मा भी मूर्त कहलाया, ऐसा जानना।

प्रश्न १५—शुद्धनिश्चयनयसे जीव कैसा है ?

उत्तर—शुद्धनिश्चयनयसे जीव अमूर्तिक ही है, क्योकि आत्माका स्वभाव ही रूप, रस गध, स्पर्शसे सर्वदा रहित एक चैतन्यस्वभाव है।

प्रश्न १६—अमूर्त विशेषण देनेका फल क्या है ?

उत्तर—जो सिद्धान्त पृथ्वी, जल, अग्नि, वायुसे जीवको उत्पन्न होना मानते है उनके मतमे मूर्तिक सिद्ध होता है तथा जो प्रकृतिसे मूर्त मानते है उनका निराकरण हो जाता है। जीव वास्तवमे अमूर्त ही है।

प्रश्न १७—अमूर्त शब्दका अर्थ इतना ही किया जाय कि जो मूर्त नही सो अमूर्त, तो क्या हानि है ?

उत्तर—इस अर्थमे सद्भावका भाव नही आया। जीव मूर्त न होकर भी वास्तवमे अमूर्त असख्यातप्रदेशी है।

प्रश्न १८—जीव कर्ता किन-किन दृष्टियोसे कहा है ?

उत्तर—जीव उपचारसे तो कर्म, नोकर्म (शरीर) का कर्ता है और व्यवहारनयसे अपनी पर्यायका कर्ता है जिसमे कि अशुद्धनिश्चयनय रूप व्यवहारसे शुभ अशुभ कर्मका कर्ता है और शुद्धनिश्चयनयरूप व्यवहारसे अनंतज्ञान आदि शुद्धभावका कर्ता है।

प्रश्न १९—परमशुद्ध निश्चयनयसे जीव किसका कर्ता है ?

उत्तर—परमशुद्धनिश्चयनयसे जीव अकर्ता है, क्योकि यह नय सामान्य स्वभावको ग्रहण करता है वह अनादि अनत एक स्वरूप है।

प्रश्न २०—कर्ता विशेषणसे किस विशेषताकी सिद्धि होती है ?

उत्तर—प्रत्येक द्रव्य अपना परिणमन स्वय करता है—इस न्यायसे जीव भी अपने कार्योंका कर्ता स्वय है, अन्य कोई प्रभु या कर्म आदि जीवके विभावोको नही करते हैं यह सिद्ध होता है तथा जो सिद्धान्त मानता है कि जीव कुछ नही करता, प्रकृति ही करती है उस सिद्धान्तका निराकरण हुआ।

प्रश्न २१—जीव स्वय विभाव करता है, कर्म विभाव नही करता, ऐसा माननेपर विभाव जीवका स्वभाव हो जायेगा ?

उत्तर––जीवका विभाव औपाधिक (नैमित्तिक) है, जीव विभावसे स्वय परिणमता है वहाँ कर्मोदय निमित्त अवश्य है, अन्यथा विभावकी विभिन्नता भी न बनेगी।

प्रश्न २२––जैसे जीवके विभावमे कर्मोदय निमित्त है इसी प्रकार ईश्वरको निमित्त क्यो न मान लिया जावे ?

उत्तर–ईश्वर क्या सचेष्ट होकर निमित्त होगा या अचेष्ट रहकर ? सचेष्ट होकर निमित्त माननेमे तो ईश्वरको रागी द्वेषी होनेका भी प्रश्न आवेगा फिर वह ईश्वर ही कहाँ रहा तथा एक व्यापी बनकर निमित्त नही हो सकता। अनेक अव्यापी होकर निमित्त मानने पर ठीक है। जगतमे ये जितने सचेष्ट जीव दिख रहे है उनमे कोई किसीके रागद्वेषादिमे निमित्त हो ही रहे है, परन्तु इनकी ईश्वरता व्यक्त नही है।

प्रश्न २३–ईश्वर अचेष्ट होकर जीवकी रचनामे निमित्त माना जावे तो क्या हानि है ?

उत्तर–अचेष्ट होकर यदि ईश्वर निमित्त हो सकता है तो हम लोगोके अचेष्ट बननेके लिए अचेष्ट बननेसे पहिले तदनुकूल शुभ विकल्पोमे ही निमित्तमात्र हो सकता है, किन्तु हमारे सब भावोमे निमित्त नही बन सकता, परन्तु उसका यथार्थस्वरूप अवश्य समझ लेना चाहिये।

प्रश्न २४–क्या जीव कर्ता ही है ?

उत्तर–पर्यायदृष्टिमे जीव कर्ता है, क्योकि पर्यायें परिणतिके बिना नही होती और परिणतिक्रिया जीवकी स्वयंकी होती है। परन्तु परमशुद्ध निश्चयनय अथवा शुद्धद्रव्यदृष्टिसे जीव अकर्ता है, क्योकि यह आशय अनादि अनत सामान्य स्वभावको स्वीकार करता है।

प्रश्न २५–जीव कुछ नही करता है, यही मान लेनेमे क्या हानि है ?

उत्तर–प्रथम तो यह सत्स्वरूपके विरुद्ध है अतः अर्थक्रिया न करने वाला असत् हो जावेगा। दूसरी बात यह है कि जीव कुछ नही करता है तो मोक्षका यत्न ही किसलिये और कैसे होगा।

प्रश्न २६–आत्माको अपने देहके बराबर बताया है, यदि बट बीजके समान सूक्ष्म (छोटा) माना जाये तो क्या क्षति है ?

उत्तर–आत्मा यदि अतीव छोटा है तो भी समस्त शरीरके बराबर प्रदेशोमे एक ही समय सुख दुःखका संवेदन होता है, वह न होकर एक देशमे सवेदन होना चाहिये। परन्तु ऐसा होता नही है।

प्रश्न २७–तब फिर आत्माको सर्वव्यापी मान लेना चाहिये ?

उत्तर–आत्मा देहसे बाहर नही है, क्योकि अन्यत्र सवेदनका अनुभव नही होता। हाँ, समुद्घातमें अवश्य कुछ समयको देहमे रहता हुआ भी देहसे बाहर जाता है, सो उस समय वहाँ भी सारे प्रदेशोमे सवेदन होता है।

प्रश्न २८—देह बराबर आत्माके सम्बन्धमे क्या एक ही दृष्टि है या अन्य भी ?

उत्तर—इस सम्बन्धमे ३ दृष्टिया है— (१) अशुद्धव्यवहार, (२) शुद्धव्यवहार (३) निश्चय। अशुद्धव्यवहारसे तो जीव जिस गतिमे, जिस देहमे रहता है उस देहके परिमाण व्यञ्जन पर्याय (आकार) हैं तथा उस देहके बढने घटनेपर उस ही जीवनमे भी सकोच बिस्तार हो जाता है।

प्रश्न २९—शुद्धव्यवहारसे जीवके कितने परिमाण है ?

उत्तर—जीव जिस अन्तिम मनुष्यभवसे मोक्षको प्राप्त होता है उस मनुष्यके देहसे किञ्चित् ऊन प्रमाण है। फिर वह प्रमाण न कभी घटता है और न कभी बढता है।

प्रश्न ३०—मुक्त किञ्चित् ऊन क्यो हो जाता है ?

उत्तर—इसमे दो प्रकारसे वर्णन आता है—(१) सदेह अवस्थामे भी जीवोके प्रदेश बाल, नख और ऊपरकी अत्यत पतली झिल्ली, जैसे चामके अशमे नही होते है, सो यद्यपि देह छोडकर भी इतने ही रहते है, परन्तु वे देहसे कम कहे जाते है। (२) सन्देह अवस्थामे नाक, मुख, कान आदि पोलकी जगहमे आत्मप्रदेश नहीं होते है, किन्तु मुक्त अवस्थामे पोल नही रहती है। वह स्थान भी भर जाता है जिससे किञ्चित् ऊन कहा है।

प्रश्न ३१—निश्चयसे जीव किस परिमाण वाला है ?

उत्तर—निश्चयसे जीव लोकाकाश-प्रमाण असख्यातप्रदेशी है, विस्तारकी दृष्टि व्यवहारसे है।

प्रश्न ३२—'सदेहपरिमाणो' इस विशेषणसे क्या विशेषता सिद्ध हुई ?

उत्तर—इस विशेषणसे आत्मा वट-बीज प्रमाण है, सर्वव्यापी है, एक सर्वाद्वैत है आदि विरुद्ध आशयोका निराकरण हो जाता है।

प्रश्न ३३—आत्मा किस नयसे किनका भोक्ता है ?

उत्तर—इस विषयकी प्ररूपणा उपचार, व्यवहारनय, अशुद्धनिश्चयनय, शुद्धनिश्चयनय, परमशुद्धनिश्चयनय—इन पाँच दृष्टियोसे करना चाहिये।

प्रश्न ३४—उपचारसे आत्मा किसका भोक्ता है ?

उत्तर—उपचारसे आत्मा इन्द्रियोके विषयभूत पदार्थोंको भोगता है।

प्रश्न ३५—व्यवहारनयसे आत्मा किसका भोक्ता है ?

उत्तर—व्यवहारनयसे आत्मा साता असाताके उदयको भोगता है।

प्रश्न ३६—अशुद्धनिश्चयनयसे आत्मा किसको भोगता है ?

उत्तर—अशुद्धनिश्चयनयसे आत्मा हर्षविषाद भावको भोगता है।

प्रश्न ३७—शुद्धनिश्चयनयसे आत्मा किसको भोगता है ?

उत्तर – शुद्धनिश्चयनयसे आत्मा रत्नत्रयरूप शुद्धपरिणमनसे उत्पन्न हुए पारमार्थिक आनन्दको भोगता है।

प्रश्न ३८– परमशुद्धनिश्चयनयसे आत्मा किसको भोगता है ?

उत्तर– इस नयकी दृष्टिमे ध्रुव एक चैतन्यस्वभाव ही आता है, उसमे भोक्ताका विकल्प ही नही है, इसलिये आत्मा किसीका भी भोक्ता नही है।

प्रश्न ३९–आत्माके 'भोक्ता' विशेषणसे अन्य क्या विशेषता सिद्ध हुई ?

उत्तर– क्षणिक सिद्धान्त और कूटस्थ सिद्धान्तमे आत्मा भोक्ता नही है। उसका इससे निराकरण हो जाता है।

प्रश्न ४०—आत्मा सभी सदा ससारी तो रहते नही है, क्योकि आत्माके सम्यक् श्रद्धान ज्ञान अनुष्ठानके द्वारा अनन्त भव्य जीव ससारसे मुक्त हो गये और आगे भी अनन्त भव्य मुक्त होते जावेंगे। फिर 'ससारी' विशेषण कैसे घटित होगा ?

उत्तर– प्रथम तो यह बात है कि यद्यपि अनत भव्य मुक्त हो चुके व होगे तथापि उनसे अनन्तानत गुणे जीव ससारी है व रहेगे। दूसरी बात यह है कि जो मुक्त हो चुके वे भी भूतनैगमनयकी अपेक्षा ससारी कहे जाते है।

प्रश्न ४१– जीव किस नयसे ससारी है ?

उत्तर– इस विषयकी प्ररूपणाके लिये व्यवहारनय, अशुद्धनिश्चयनय, शुद्धनिश्चयनय, परमशुद्धनिश्चयमय—इन चार नयोका आश्रय करना चाहिये।

प्रश्न ४२– व्यवहारनयसे जीव कैसा ससारी है ?

उत्तर– कर्मनोकर्मबधनवश हुआ जीव गति, जाति, जीवसमास आदि व्यक्त पर्यायो वाला ससारी है।

प्रश्न ४३—अशुद्धनिश्चयनयसे जीव कैसे ससारी है ?

उत्तर—अशुद्धनिश्चयनयसे जीव दर्शन, ज्ञान, चरित्र आदि गुणोके विभावपरिणमन मे उलझा हुआ ससारी है।

प्रश्न ४४—शुद्धनिश्चयनयसे जीवकी क्या अवस्था है ?

उत्तर—शुद्धनिश्चयनयसे जीव ससारसे रहित अपने स्वाभाविक पूर्ण विकासमे तन्मय शुद्ध है।

प्रश्न ४५—परमशुद्धनिश्चयनयसे जीवकी क्या अवस्था है ?

उत्तर—यह नय अवस्थाको देखता ही नही, अतः इस नयकी दृष्टिमे न ससारी है, न मुक्त है, किन्तु सभी जीव एक चैतन्यस्वभावमय है।

प्रश्न ४६—'ससारस्थ' विशेषणसे अन्य किस आशयका निराकरण किया है ?

उत्तर—जो सिद्धान्त यह आशय रखते है कि आत्मा अनादिसे मुक्त है अथवा अशुद्ध

पुद्गल ही ससारको करता है, आत्मा तो मात्र साक्षी ही है आदि बातोका निराकरण हो जाता है।

प्रश्न ४७—आत्मा सिद्ध है, यह किन-किन दृष्टियोसे कहा जाता है ?

उत्तर—मुख्य प्रकृत अर्थ तो यह है कि आत्मा कर्म नोकर्म मलोसे दूर होकर ससार से सर्वथा मुक्त हो जाता है, वह आत्मा सिद्ध है। इस विषयको और विशद करनेके लिये चार दृष्टियाँ लगाना—(१) व्यवहारनय, (२) अशुद्धनिश्चयनय, (३) शुद्धनिश्चयनय, (४) परमशुद्धनिश्चयनय।

प्रश्न ४८—व्यवहारनयसे क्या सिद्धत्व है ?

उत्तर—व्यवहारनयसे यह जीव असिद्ध है, सिद्ध नही है। वह तो गति, जाति आदि आकाररूप अपनेको साधता है।

प्रश्न ४९—अशुद्धनिश्चयनयसे क्या सिद्धत्व है ?

उत्तर—इस नयसे भी आत्मा असिद्ध है, सिद्ध नही है। वह तो कषाय आदि विभावोको साधता है।

प्रश्न ५०—शुद्धनिश्चयनयसे जीव कैसे सिद्ध है ?

उत्तर—अपने आपके स्वभावपरिणमनसे यह आत्मा अपने गुणोके पूर्ण विकाससे सिद्धप्रभु है। ये कभी सिद्ध अवस्थासे च्युत नही होते, सदा शुद्ध सिद्ध ही रहेगे।

प्रश्न ५१—परमशुद्धनिश्चयनयसे क्या सिद्धत्व है ?

उत्तर—यह नय पर्यायको नही देखता, इसलिए इस दृष्टिमे आत्मा न सिद्ध है, न असिद्ध है। एक चैतन्यस्वभावी है जो कि स्वत.सिद्ध है।

प्रश्न ५२—आत्माको सिद्ध होकर भी सिद्धकी मर्यादा समाप्त होनेपर उन्हे असिद्ध हो जाना चाहिये ?

उत्तर—सर्व कर्मोके अत्यन्त क्षयसे जहाँ सिद्ध अवस्था प्रकट होती है वहाँ विभाव उत्पन्न होनेका कोई कारण नही, इसलिए सिद्ध भविष्यमे सर्वकाल तक सिद्ध ही रहेगे, उनकी सीमा होती ही नही।

प्रश्न ५३—जीव स्वभावसे ऊर्ध्वगमन करता है, यह विशेषण तो प्रत्यक्षसे भी बाधित है, क्योकि हम देखते है कि जीव जैसे चाहे जहाँ चाहे फिरते है ?

उत्तर—जीवका स्वभाव तो ऊर्ध्वगमनका है, परन्तु कर्म नोकर्मकी सगतिसे यह स्वभाव तिरस्कृत हो रहा है। औदारिक वैक्रियक देहके सम्बन्धसे तो यह विदिशा तकमे भी गमन कर जाता है।

प्रश्न ५४—तब यह ऊर्ध्वगमन स्वभाव कब प्रकट होता है ?

उत्तर––जब यह जीव नोकर्म (शरीर) व कर्मसे अत्यन्त विमुक्त होकर केवल शुद्ध-स्वभावमे परिणत हो जाता है तब इसका ऊर्ध्वगमन स्वभाव प्रकट हो जाता है अर्थात् सर्व कर्मोंका क्षय होते ही जीव ऊर्ध्वगमन स्वभावसे एक ही समयमे एकदम ऊपर चला जाता है।

प्रश्न ५५—यह जीव ऊपर कहाँ तक चला जाता है ?

उत्तर–मुक्त जीव लोकके अन्त तक चले जाते है, इससे आगे धर्मास्तिकायका निमित्त न होनेसे वह अपने स्वतत्र अवस्थानसे वहा निश्चल हो जाते है।

प्रश्न ५६– तब तो मुक्तोका भी गमन पराधीन हो गया ?

उत्तर—पराधीन तो तब कहलाता जब धर्मास्तिकाय अपनी परिणतिसे मुक्त जीवको चलाता, किन्तु मुक्त जीव अपने स्वभावसे अपनी परिणतिसे गमन करते है, वहाँ धर्मास्तिकाय निमित्तमात्र है।

प्रश्न ५७—इस समस्त वर्णनसे हमे सक्षिप्त सारभूत क्या प्रयोजन लेना है ?

उत्तर– इन समस्त अवस्थावो रूप जो बनता है, ऐसे एक विशुद्ध चैतन्यस्वरूप जीव-तत्त्वपर लक्ष्य करना है। जिससे निर्मल ज्ञान आनन्दकी पर्यायका प्रवाह चल उठे।

प्रश्न ५८—तब तो इस ही सारभूत तत्त्वका वर्णन करना था, सब अधिकारोके वर्णनसे क्या प्रयोजन था ?

उत्तर– जीवतत्त्वके व्यवहार पर्यायको ही यथार्थतया न समझे वह पर्यायान्वयी जीव-द्रव्यको समझनेकी पात्रता कहांसे लावेगा ? इसलिए यह पर्यायवर्णन भी इस प्रयोजनके लिये आवश्यक है।

अब जीव आदि नव अधिकारोकी सूचना करने वाली इस द्वितीय गाथाके अनन्तर बारह गाथावोमे इन्ही नव अधिकारोका विवरण किया जावेगा। जिसमे प्रथम जीव अधिकार के सम्बधमे गाथा कहते है—

तिक्काले चदुपाणा इदिय बलमाउ आणपाणो य।
ववहारा सो जीवो णिच्चयणयदो दु चेदणा जस्स ॥३॥

अन्वय–ववहारा जस्स तिक्काले चदु पाणा इदिय बल आउ य आणपाणो सो जीवो दु णिच्चयणयदो जस्स चेदणा सो जीवो।

अर्थ– व्यवहारनयसे जिसके तीन कालमे इन्द्रिय, बल, आयु, श्वासोच्छ्वास, ये चार प्राण हो वह जीव है, परन्तु निश्चयनयसे जिसके चेतना है वह जीव है।

प्रश्न १—जिस जीवके ससार अवस्थामे तो ये चार प्राण थे, किन्तु अब मुक्त अवस्था मे आनेसे प्राणोका अभाव है तो क्या वह व्यवहारनयसे जीव नही कहा जायगा ?

उत्तर—तीनो कालमे हो या केवल भूतकालमे थे, अब नही हो तो भी भूतकालमे

होनेसे ग्रहण हो गया, यह "तिक्काले" शब्दका भावार्थ है। इससे यह सिद्ध हुआ कि मुक्त जीवके इस समय ये प्राण नही है जो भी भूतकालमे थे, सो व्यवहारनयसे वह भी जीव है।

प्रश्न २—इन्द्रियप्राण किसे कहते है ?

उत्तर—द्रव्येन्द्रियोके निमित्तसे उत्पन्न हुआ क्षायोपशमिक भाव इन्द्रियप्राण है।

प्रश्न ३—इन्द्रियप्राण और इन्द्रियमे क्या अन्तर है ?

उत्तर—इन्द्रियप्राण तो क्षायोपशमिक भाव है, परन्तु इन्द्रियसे द्रव्येन्द्रियका ग्रहण होता है। इसी कारण सयोगकेवलीके इन्द्रियप्राण नही है, परन्तु ये पचेन्द्रिय माने ही गये है।

प्रश्न ४—इन्द्रियप्राण कितने प्रकारका है ?

उत्तर—इन्द्रियप्राण ५ प्रकारका है—(१) स्पर्शनेन्द्रियप्राण, (२) रसनेन्द्रियप्राण, (३) घ्राणेन्द्रियप्राण, (४) चक्षुरिन्द्रियप्राण, (५) श्रोत्रेन्द्रियप्राण।

प्रश्न ५—इन इन्द्रियप्राणोके लक्षण क्या है ?

उत्तर—स्पर्शन इन्द्रियके निमित्तसे जो क्षायोपशमिक भाव उत्पन्न हुआ वह स्पर्शनेन्द्रिय प्राण है। इसी प्रकार रसनेन्द्रिय आदिके भी अलग-अलग लगा लेना चाहिये।

प्रश्न ६—बलप्राण किसे कहते है और वे कितने प्रकारके है ?

उत्तर—अनन्त शक्तिके एक भाग प्रमाण मन, वचन, कायके निमित्तसे उत्पन्न हुए बलको बलप्राण कहते है। ये ३ प्रकारके है—(१) मनोबल, (२) वचनबल, (३) कायबल।

प्रश्न ७—इन बलप्राणोके लक्षण क्या है ?

उत्तर—मनके निमित्तसे उत्पन्न हुए वीर्यके विकासको मनोबल प्राण कहते है। इसी प्रकार वचन और कायबलमे भी अलग-अलग लगा लेना चाहिये।

प्रश्न ८—बल, प्राण, गुप्ति, योग, पर्याप्ति ये मन, वचन, कायके होते है, इनमे अन्तर क्या है ?

उत्तर—वीर्यके विकासको बलप्राण कहते है। मन, वचन, कायकी प्रवृत्तिके विरोधको गुप्ति कहते है। मन, वचन, कायके निमित्तसे आत्मप्रदेश परिस्पदके लिये जो यत्न होता है उसे योग कहते है। मनोवर्गणा, भाषावर्गणा, आहारवर्गणाको ग्रहण करनेकी शक्तिकी पूर्णताको पर्याप्ति कहते है।

प्रश्न ९—मन, वचन, कायकी प्रवृत्तिके निरोधको जब गुप्ति कहा तो इसमे वीर्य गुणका विकास रोक दिया गया, फिर गुप्ति उपादेय नही रहेगी ?

उत्तर—अशुद्ध बलको रोककर आत्मबलके विकासको गुप्ति बढाती है, इसलिये परमार्थबलके विकासका कारण होनेसे गुप्ति उपादेय है।

प्रश्न १०—आयुप्राण किसे कहते है ?

उत्तर---जिसके उदयसे भव सम्बधी जीवन और क्षयसे मरण हो वह आयुप्राण है ।

प्रश्न ११—आयुप्राणके चार भेद क्यो नही कहे गये ?

उत्तर---चारो आयुवोका सामान्यकार्य उस भवमे अवस्थान करना है, इस साधारणताके कारण आयुप्राण एक कहा गया है ।

प्रश्न १२—आनप्राण किसे कहते है ?

उत्तर—शरीरसे किसी भी प्रकार वायुके आने-जानेको आनप्राण कहते है । जैसे मुख से श्वास उच्छ्वास निकलना । रोमछिद्रोसे वायुका आना-जाना । नाडी द्वारा सचरण होना। पृथ्वी आदि सर्व शरीरसे वायुका आना-जाना । वायुकायिक जीवके भी सर्व शरीरसे वायुका आना-जाना आदि ।

प्रश्न १३ — इन चारो प्राणोका क्या कभी विनाश भी होता है ?

उत्तर—पाँच इन्द्रियप्राणोका व मनोबलका विनाश तो क्षीणमोह गुणस्थानके अन्तमे हो जाता है । वचनबल व आनप्राणका विनाश सयोगकेवलीके अन्तिम अन्तर्मुहूर्तमे होता है व कायबलका विनाश सयोगकेवलीके अन्तमे होता है और आयुप्राणका विनाश अयोगकेवलीके अन्तमे होता है ।

प्रश्न १४—इन प्राणोके विनाश होनेपर इनके एवजमे क्या किसी विशुद्ध प्राणका विकास होता है ?

उत्तर—इन्द्रियप्राणके अभावमे अतीन्द्रिय शुद्ध चैतन्यप्राणका विकास होता है । मनोबलके अभावमे अनन्त वीर्यप्राणका विकास होता है । वचनबल श्वासोच्छ्वास व कायबलके अभावमे प्रदेशोका निश्चलतारूप बलका विकास होता है और आयुप्राणके अभावमे अनादि अनन्त शुद्ध चैतन्यका सर्वथा निश्चल विकास बना रहता है ।

प्रश्न १५—ये प्राण सभी एक साथ होते है या किसी जीवके कम भी होते है ?

उत्तर—एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवके स्पर्शन इन्द्रिय, कायबल, आयु, ये तीन प्राण होते हैं । पर्याप्तके श्वासोच्छ्वास सहित ४ प्राण होते है । द्वीन्द्रिय अपर्याप्त जीवके दोइन्द्रिय, कायबल व आयु ये ४ प्राण होते है । पर्याप्तके वचनबल व उच्छ्वास सहित ६ प्राण होते है । त्रीन्द्रिय अपर्याप्तके ३ इन्द्रिय, १ बल, आयु, ये ५ प्राण होते है । पर्याप्तके वचनबल व उच्छ्वाससहित ७ प्राण होते है । चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तके ४ इन्द्रिय, १ बल, आयु ये ६ प्राण होते है । पर्याप्तके वचनबल व उच्छ्वास सहित ८ प्राण होते है । असैनी पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त के ५ इन्द्रिय, १ बल, आयु ये ७ प्राण होते है । पर्याप्तके वचनबल, उच्छ्वास सहित ९ प्राण होते है । सैनी पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्तके ५ इन्द्रिय, १ बल, आयु ये ७ प्राण होते है । पर्याप्तके मनोबल, वचनबल व उच्छ्वास सहित १० प्राण होते है ।

सयोगकेवलीके वचनबल, कायबल, आयु व उच्छ्वास—ये चार प्राण होते है व अन्त मे वचनबल रहित ३ व बादमे उच्छ्वास रहित २ प्राण होते हैं। अयोगकेवलीके केवल आयुप्राण होता है।

प्रश्न १६—ये प्राण जीवमय है या अजीवमय ?

उत्तर—इन्द्रियप्राण तो क्षायोपशमिक भाव है, सो यद्यपि जीवका मलिन भाव है तथापि पुद्गल कर्मके निमित्तसे उत्पन्न होते है, सो वे पुद्गलकर्मके कार्य है तथा शेष प्राणोका पुद्गल उपादान हैं। अतः सब प्राण पौद्गलिक है।

प्रश्न १७— निश्चयनयसे जीवके प्राण कौन-कौन है ?

उत्तर—शुद्ध निश्चयनयसे ज्ञान, दर्शन, शक्ति सुखके अनन्त विकास प्राण है व परमार्थ शुद्धनयसे चैतन्यप्राण है।

प्रश्न १८—स्पर्शनादि द्रव्येन्द्रिय क्या प्राण नही है ?

उत्तर—अशुद्ध भावेन्द्रियप्राणोका कारण होनेसे ये द्रव्येन्द्रिय भी असद्भूत व्यवहारनयसे प्राण है ? इनका अन्तर्भाव इन्द्रियप्राणमे ही कर लेना चाहिये, परन्तु भावेन्द्रिय न होनेसे सयोगकेवलीके इन्द्रियप्राण नही मानना चाहिये।

प्रश्न १९—इन सब कथनोमे उपाय उपेय भी कुछ सिद्ध होता है क्या ?

उत्तर—उपेयतत्त्व शुद्ध चैतन्यप्राण है। उसकी सिद्धिका उपाय यह है कि अति प्राथमिक अवस्थामे भावेन्द्रियप्राण ब बलप्राणका उपयोग देव, शास्त्र, गुरुकी सेवा, ध्यान मनन स्तुतिमे लगावे, फिर प्राप्त योग्यताको निज अभेद स्वभावमे पहुचनेके प्रयत्नमे लगावे। यद्यपि बुद्धिपूर्वक अभेदस्वभावमे पहुचनेका कार्य नही होता तथापि पहुचनेका यत्न करता है, फिर अति ज्ञानाभ्यास व ज्ञानसस्कार एव योग्यतासे अभेदस्वभावी निज चेतनमे उपयोगकी स्थिरता हो तब सम्पूर्ण आत्मबल प्रकट होता है।

इस प्रकार जीव अधिकारका वर्णन करके अब उपयोगाधिकारकी गाथा कहते है—

उवओगो दुवियप्पो दसण णाण च दसण चदुधा।
चक्खु अचक्खु ओही दसणमध केवल णेय ॥४॥

अन्वय—उवओगोणे दुवियप्पो दसण च णाण, दसणं चदुधा णेय चक्खु, अचक्खु, ओही अध केवल दसण।

अर्थ—उपयोग दो प्रकारका है—१—दर्शनोपयोग, २—ज्ञानोपयोग। दर्शनोपयोग चार प्रकारका जानना चाहिये। १—चक्षुर्दर्शन, २—अचक्षुर्दर्शन, ३—अवधिदर्शन और ४—केवलदर्शन।

प्रश्न १—दर्शनोपयोगका शब्दार्थ क्या है ?

उत्तर– आत्मामे एक दर्शन गुण है, उस गुणके व्यक्त उपयोगात्मक परिणमनको दर्शनोपयोग कहते है । दर्शनोपयोगका दूसरा नाम अनाकारोपयोग भी है ।

प्रश्न २–अनाकारोपयोगका भाव क्या है ?

उत्तर– जिस उपयोगके विषयमे कोई आकार, विशेष, भेद, विकल्प न आवे, किन्तु निराकार, सामान्य, अभेद, विकल्परहित जिसका विषय हो उसे अनाकारोपयोग कहते है ।

प्रश्न ३–चक्षुर्दर्शन किसे कहते है ?

उत्तर– चक्षुरिन्द्रियके निमित्तसे जो ज्ञान उत्पन्न होता है उस ज्ञानकी उत्पत्तिके लिये उस ज्ञानसे पहिले जो आत्माकी ओर उपयोग होता है उसे चक्षुर्दर्शन कहते है । इसी प्रकार अचक्षुर्दर्शनमे लगाना, केवल निमित्तमे चक्षुको छोडकर बाकी ४ इन्द्रिया और मनको कहना ।

प्रश्न ४–क्या ज्ञानसे पहिले दर्शनका होना आवश्यक है ?

उत्तर– मतिज्ञानसे पहिले व अवधिज्ञानसे पहिले दर्शनका होना आवश्यक है, केवलदर्शन केवलज्ञानके साथ-साथ होता है । कभी-कभी कोई मतिज्ञान पूर्वक भी होता है, उसके लिये पूर्वका दर्शन, दर्शन है ।

प्रश्न ५–मतिज्ञान व अवधिज्ञानसे पहिले दर्शनोपयोगकी आवश्यकता क्यो होती है ?

उत्तर–जब पूर्वज्ञानोपयोग तो छूट गया और नया ज्ञानोपयोग करना है तो बीचमे आत्माके अभिमुख होकर नये ज्ञानका बल प्रकट किया जाता है । जैसे पहिले घटको जान रहा था अब पटको जानना है तो घट ज्ञान छूटनेपर जब तक पटको नही जाना उस बीचमे दर्शनोपयोग होता है अर्थात् आतमा यहाँ किसी वस्तुको जानता फिर आत्माकी ओर झुकता, फिर किसी वस्तुको जानता, फिर आत्माकी ओर झुकता, फिर जानता—यह क्रम चलता रहता है ।

प्रश्न ६– श्रुतज्ञान और मनःपर्ययज्ञानसे पहिले दर्शन क्यो नही होता ?

उत्तर– ये दोनो ज्ञान पर्याय-विकल्पकी मुख्यता करके जानते है और जो पर्याय-विकल्पकी मुख्यता लेकर जानते है उन ज्ञानोसे पहिले दर्शन नही होता । ये दोनो ज्ञान मतिज्ञानोपयोगके अनन्तर होते है ।

प्रश्न ७–केवलज्ञानके साथ ही केवलदर्शन क्यो होता है ? वहा अन्यकी भाँति पहिले केवलदर्शन हो और पीछे केवलज्ञान हो, ऐसा क्यो नही होता ?

उत्तर–केवली भगवानके अनतशक्ति प्रकट हो गई है, अतः ज्ञानोपयोग व दर्शनोपयोग दोनो साथ-साथ होते है । छद्मस्थ जीवोके अनतशक्ति नही है, अतः साथ-साथ नही होते ।

प्रश्न ८–दर्शन और दर्शनोपयोगमे क्या अन्तर है ?

उत्तर– दर्शन तो आत्माकी शक्ति है और दर्शन गुणके विकासका नाम दर्शनोपयोग है। दर्शनशक्ति तो नित्य है और उसका परिणमन जो दर्शनोपयोग है वह उत्पाद व्यय स्वरूप है।

प्रश्न ९-- सम्यग्दर्शन और दर्शनोपयोगमें क्या अन्तर है ?

उत्तर– सम्यग्दर्शन तो श्रद्धा गुणकी निर्मल पर्याय है और दर्शनोपयोग दर्शन गुणकी पर्याय है।

प्रश्न १०– दर्शन और श्रद्धामे क्या अन्तर है ?

उत्तर– दर्शन तो अन्तर्मुखचित्प्रतिभासका नाम है और श्रद्धा उसे कहते है जिसके होने पर प्रतीति, विश्वास अथवा पर्यायकी समीचीनता होने लगे।

प्रश्न ११-- दर्शनोपयोगका सम्यग्दर्शनके साथ क्या कुछ भी सम्बन्ध नही है ?

उत्तर– दर्शनोपयोगका जो विषय है वह सामान्य–आत्मा है। यदि उस सामान्य आत्मामे अह अर्थात् निजद्रव्यकी प्रतीति करे तो सम्यग्दर्शन होता है। विषयमें आया हुआ द्रव्य दोनोका विषय है, इतना मेल तो घटित होता है, किन्तु दोनो पर्यायमे पृथक्-पृथक् गुणो के परिणमन है, अतः स्वलक्षण की अपेक्षा सम्बध नही है।

प्रश्न– १२ मिथ्यादृष्टिके दर्शनोपयोग क्या मिथ्या होता है ?

उत्तर– दर्शनोपयोग न मिथ्या होता है और न सम्यक् होता है। हा, यह अवश्य है कि मिथ्यादृष्टि दर्शनोपयोगके विषयका अनुभव नही करता, परन्तु सम्यग्दृष्टि दर्शनोपयोगके विपयकी प्रतीति करता है। यथार्थतः ज्ञान भी न सम्यक् है और न मिथ्या है। (ज्ञान मिथ्यात्व व अनतानुबन्धीके उदयमे उपचारसे मिथ्या कहलाता है। परन्तु दर्शनोपयोगमे यह उपचार भी नही है, क्योकि दर्शनोपयोग निराकार है।)

प्रश्न १३– अवधिदर्शनोपयोग किसे कहते है ?

उत्तर-- अवधिज्ञानसे पहिले होने वाले अन्तर्मुख चित्प्रतिभासको अवधिदर्शनोपयोग कहते है।

प्रश्न १४-- केवलदर्शनोपयोग किसे कहते है ?

उत्तर-- केवलज्ञानके साथ-साथ होने वाले अन्तर्मुख चित्प्रतिभासको केवलदर्शन कहते है।

प्रश्न १५-- ये दर्शनोपयोग किस निमित्तको पाकर प्रकट होते है ?

उत्तर-- चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण व अवधिदर्शनावरणके क्षयोपशमसे तो क्रमशः चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन व अवधिदर्शन प्रकट होते है और केवलदर्शनावरणके क्षयसे केवलदर्शन प्रकट होता है।

प्रश्न १६— क्षयोपशम किसे कहते है ?

उत्तर-- उदयमे आने वाले सर्वघाती स्पर्द्धकोके उदयाभावी क्षय और आगामी उदयमे आने वाले सर्वघाती स्पर्द्धकोके उपशम तथा देशघाती स्पर्द्धकोके उदयको क्षयोपशम कहते है ।

प्रश्न १७--दर्शनोपयोगके पाठसे हमे किस कर्तव्यकी प्रेरणा लेनी चाहिये ?

उत्तर-- दर्शनोपयोगका जो विषय है उसे हम ज्ञानोपयोगसे ज्ञात करे और उसके ज्ञानोपयोगके स्थिर रहनेका यत्न करें । इस उपायसे हमे सम्यक्त्वकी प्राप्ति होगी । अब उपयोगाधिकारमे वर्णित किये गये दो प्रकारके उपयोगमे से दर्शनोपयोगका वर्णन करके ज्ञानोपयोगका वर्णन करते है—

णाण अट्ठवियप्प मदिसुद ओही अणाणणाणाणि ।
मणपज्जय केवलमवि पच्चक्खपरोक्खभेय च ॥५॥

अन्वय-- णाण अट्ठवियप्प अणाणणाणाणि मदिसुदओही, मणपज्जय अवि केवल च पच्चक्खपरोक्खभेय ।

अर्थ—ज्ञानोपयोग ८ प्रकारका है—कुज्ञान और ज्ञानस्वरूप, मति, श्रुत, अवधि ये ३ और मन पर्यय व केवलज्ञान । ज्ञानोपयोग प्रत्यक्ष, परोक्षके भेदसे दो प्रकारका भी है ।

प्रश्न १-- दो प्रकारसे ज्ञानोपयोगके वर्णनमे कुछ सामञ्जस्य है क्या ?

उत्तर-- ज्ञानोपयोगके दो भेद है--१ प्रत्यक्ष, २ परोक्ष । इनमे प्रत्यक्ष २ प्रकारका है १. विकलप्रत्यक्ष, २ सकलप्रत्यक्ष । विकलप्रत्यक्ष मन पर्ययज्ञान व अवधिज्ञान हैं । परोक्षज्ञान मति और श्रुतज्ञान हैं ।

प्रश्न २— मति, श्रुत, अवधि ये तीन कुज्ञानरूप क्यो हो जाते हैं ?

उत्तर-- मिथ्यात्वके उदयके सम्बन्धसे ये तीनो ज्ञान कुज्ञान कहलाते है ।

प्रश्न ३-- क्या मिथ्यात्वके उदयका प्रभाव ज्ञानपर भी पडता है ?

उत्तर— यद्यपि मिथ्यात्वके उदयसे श्रद्धागुणका ही विपरीत परिणमन होता है तथापि विपरीत श्रद्धा वाले जीवके द्रव्य-वस्तुके ज्ञानमे यथार्थता व अनुभव न होनेसे ये ज्ञान भी कुज्ञान कहलाते है ।

प्रश्न ४-- मिथ्यादृष्टिके भी तो बडे-बडे आविष्कारो तकमे सच्चा ज्ञान पाया जाता है तब सारो वस्तुवोमे मिथ्याज्ञान कैसे कहते ?

उत्तर-- जिन्हे शुद्धात्मादितत्त्वके विषयमे विपरीत अभिप्राय रहित यथार्थ ज्ञान नही है उनके ज्ञानको मिथ्याज्ञान ही कहा गया है । क्योंकि आत्महितके साधक ज्ञानको ही सम्यग्ज्ञान

प्रश्न ५– सम्यग्दृष्टिके भी घट पटादि अनेक पदार्थोंके सम्बधमे सशय विपर्ययज्ञान हो जाता है, फिर तो वह ज्ञान मिथ्याज्ञान कहा जाना चाहिये ?

उत्तर– सम्यग्दृष्टिके द्रव्य, गुण, पर्यायका यथार्थ विवेक है। उसमे संशयादिक नही है। अतः आत्मसाधक ज्ञानमे बाधा नही आती है, अतः सम्यग्ज्ञान है। हाँ लौकिक अपेक्षा सशय विपर्यय ज्ञान है, परन्तु इससे मोक्षमार्गमे कोई बाधा नही आती।

प्रश्न ६– मनःपर्ययज्ञान भी कोई-कोई कुज्ञान क्यो नही होता ?

उत्तर– मनःपर्ययज्ञान ऋद्धिधारी भावलिङ्गी साधुके ही होता है। अतः वह कुज्ञान हो ही नही सकता।

प्रश्न ७—आत्मा तो एक द्रव्य है, उसके ये अनेक ज्ञानोपयोग क्यो हो गये ?

उत्तर– आत्मा तो निश्चयसे एक स्वभाव है, जिसकी स्वाभाविक पर्याय केवलज्ञान ही होना चाहिये, परन्तु अनादिकालसे कर्मबन्ध करि सहित होनेसे मतिज्ञानावरणादिके क्षयोपशमके अनुसार ज्ञान प्रकट होते है। अतः ये इतने प्रकारसे ज्ञानोपयोग हो गये। केवलज्ञान को छोडकर शेष ७ ज्ञानोमे भी असख्यात असंख्यात भेद हैं।

प्रश्न ८—मतिज्ञानका क्या स्वरूप है ?

उत्तर– मतिज्ञानावरण एव वीर्यान्तरायके क्षयोपशमसे तथा इन्द्रिय, मनके निमित्तसे वस्तुका एकदेश ज्ञान होना मतिज्ञान है।

प्रश्न ९– तब तो यह मतिज्ञान बहुत पराधीन हो गया ?

उत्तर—उक्त निमित्तोके रहते हुये भी मतिज्ञान ज्ञानस्वभावके उपादानसे ही प्रकट होता है, अन्य द्रव्योसे नही, अतः स्वाधीन ही है।

प्रश्न १०—मतिज्ञानका प्रसिद्ध अपर नाम क्या है ?

उत्तर– मतिज्ञानका प्रसिद्ध अपर नाम आभिनिबोधिक ज्ञान है।

प्रश्न ११—आभिनिबोधिक ज्ञानका शब्दार्थ क्या है ?

उत्तर– अभि याने अभिमुख और नि याने नियमित अर्थके अवबोधको आभिनिबोधिक ज्ञान कहते है।

प्रश्न १२—अभिमुख किसे कहते है ?

उत्तर—स्थूल, वर्तमान और व्यवधान रहित पदार्थोंको अभिमुख कहते है।

प्रश्न १३– नियमित किसे कहते है ?

उत्तर—इन्द्रिय और मनके नियत विषयोको नियमित पदार्थ कहते है।

प्रश्न १४—किस-किस इन्द्रियका क्या-क्या विषय नियत है ?

उत्तर– स्पर्शनेन्द्रियका स्पर्श, रसनेन्द्रियका रस, घ्राणेन्द्रियका गन्ध, चक्षुरिन्द्रियका

रूप और श्रोत्रेन्द्रियका सुनना नियत विषय है ।

प्रश्न १५—मनमे कौनसा विषय नियत है ?

उत्तर—मनमे दृष्ट, श्रुत और अनुभूत पदार्थ नियमित है ।

प्रश्न १६—श्रुतज्ञान किसे कहते है ?

उत्तर—श्रुतज्ञानावरण वीर्यान्तरायके क्षयोपशमसे व नोइन्द्रियके अवलम्बनसे जो ज्ञान प्रकट होता है वह श्रुतज्ञान है । इसका स्पष्ट स्वरूप एक यह भी है कि मतिज्ञानसे जाने हुये पदार्थमे और अन्य विशेष ज्ञान करना सो श्रुतज्ञान है ।

प्रश्न १७—स्मरण आदि ज्ञानका किस ज्ञानमे अन्तर्भाव है ?

उत्तर– स्मरण, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान व सान्यवहारिक प्रत्यक्ष—इन ज्ञानोका मतिज्ञानमे अन्तर्भाव है, क्योकि ये सब मतिज्ञानावरणके क्षयोपशमसे प्रकट होते है ।

प्रश्न १८– स्मरणका क्या स्वरूप है ?

उत्तर—मतिज्ञानावरण व वीर्यान्तरायके क्षयोपशम व मनके अवलम्बनसे अनुभूत अतीत अर्थका स्मरण होना स्मरण है ।

प्रश्न १९– प्रत्यभिज्ञानका क्या स्वरूप है ?

उत्तर– मतिज्ञानावरण व वीर्यान्तरायके क्षयोपशमसे, मनके अवलम्बनसे पूर्वविज्ञात पर्यायसे वर्तमान पर्यायके बीच एकता, सदृशता, विसदृशता व प्रतियोगिताके जोडरूप ज्ञानको प्रत्यभिज्ञान कहते है । जैसे यह वही है, यह अमुकके समान है, यह अमुकसे विपरीत है, यह उससे दूर है इत्यादि ।

प्रश्न २०– तर्क किसे कहते है ?

उत्तर– साध्य, साधनके व्याप्तिके ज्ञानको तर्क कहते है । जैसे जहाँ धूम्र होता है वहाँ अग्नि होती है और जहाँ अग्नि नही होती वहाँ धूम्र भी नहीं होता ।

प्रश्न २१--अनुमान किसे कहते है ?

उत्तर-- साधनसे साध्यके ज्ञानको अनुमान कहते है । जैसे धूम देखकर अग्निका ज्ञान करना ।

प्रश्न २२-- एक वस्तुके ज्ञानके बाद अन्य वस्तुका जानना तो श्रुतज्ञान हो गया, इसका मतिज्ञानमे अन्तर्भाव कैसे किया जा सकता है ?

उत्तर-- अभ्यस्त पुरुषके संस्कारवश साधन देखते ही मन द्वारा साध्यका ज्ञान हो जाता है, ऐसा स्वार्थानुमान मतिज्ञानमे अन्तर्गत होता है ।

२३-- साव्यवहारिक प्रत्यक्ष किसे कहते है ?

उत्तर-- वर्तमान पदार्थको इन्द्रिय या मनके द्वारा एकदेश स्पष्ट जानना, सो साव्यवहा-

रिक प्रत्यक्ष है ।

प्रश्न २४— यह मन व इन्द्रियोसे उत्पन्न हुआ इसे तो परोक्ष ही कहना चाहिये ?

उत्तर— मन, इन्द्रियोसे उत्पन्न होनेके कारण वास्तवमे यह मति परोक्ष ही है, किन्तु व्यवहारसे ऐसा प्रतीत होता है कि देखनेसे वस्तु स्पष्ट देखी जा रही है, कानोसे शब्द स्पष्ट सुना जा रहा है, इस कारण वह सब उपचारसे प्रत्यक्ष है । लोक कहते भी है कि मैने प्रत्यक्ष देखा, प्रत्यक्ष सुना आदि ।

प्रश्न २५-- स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क और अनुमानके विषय किस इन्द्रियके नियत विषय है ?

उत्तर-- स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क और अनुमानके विषय मनके नियत विषय है ।

प्रश्न २६— सर्व प्रकारके मतिज्ञानके जाननेकी प्रगतिकी अपेक्षा कितने भेद है ?

उत्तर— सर्व मतिज्ञानोके ४–४ भेद है । अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा ।

प्रश्न २७— अवग्रहज्ञान किसे कहते है ?

उत्तर— विषयविषयीके सन्निपातके अनन्तर जो आद्य ग्रहण होता है उसे अवग्रह कहते है ।

प्रश्न २८— सन्निपातका मतलब क्या है ?

उत्तर— बाह्य पदार्थ तो विषय होते है और इन्द्रिय एवं मन विषयी कहलाते है । इन दोनोकी ज्ञानके उत्पन्न करने योग्य अवस्थाका नाम सन्निपात है ।

प्रश्न २९— अवग्रहके कितने भेद है ?

उत्तर— अवग्रहके दो भेद है—(१) व्यञ्जनावग्रह, (२) अर्थावग्रह ।

प्रश्न ३०— व्यञ्जनावग्रह किसे कहते है ?

उत्तर— प्राप्त अर्थात् स्पृष्ट अर्थके ग्रहणको व्यञ्जनावग्रह कहते है अथवा अस्पष्ट अर्थके ग्रहण करनेको व्यञ्जनावग्रह कहते है । इस ज्ञानमे इतनी कमजोरी है कि जाननेकी दिशा भी अनिश्चित रहती है ।

प्रश्न ३१-- अर्थावग्रह किसे कहते है ?

उत्तर-- अप्राप्त अर्थात् अस्पृष्ट अर्थके ग्रहण करनेको अर्थावग्रह कहते है, अथवा स्पष्ट अर्थके ग्रहण करनेको अर्थावग्रह कहते है । इस ज्ञानमे जाननेकी दिशा निश्चित है और इस ज्ञानके बाद ईहा आदि ज्ञान हो सकते है ।

प्रश्न ३२-- ईहाज्ञान किसे कहते है ?

उत्तर-- अवग्रहसे गृहीत अर्थकी विशेष परीक्षाको ईहा कहते है । इस ज्ञानमे सदेहपना नही है, किन्तु वस्तुका विशेष परिज्ञान हो रहा है । फिर भी यह ज्ञान संदेहसे ऊपर और

अवायसे नीचेकी विचार-बुद्धि है ।

३३-- अवायज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर-- ईहाज्ञानसे जो पदार्थका ज्ञान हुआ है उसके पूर्ण प्रतीतियुक्त ज्ञानको अवाय-ज्ञान कहते है ।

३४-- धारणा ज्ञान किसे कहते है ?

उत्तर-- अवायज्ञानसे निर्णय किये गये पदार्थके कालान्तरमे विस्मरण न होनेको धारणाज्ञान कहते है।

प्रश्न ३५-- मतिज्ञानका विषय पदार्थ है या गुण है या पर्याय ?

उत्तर-- मतिज्ञानका विषय पदार्थ है, केवल गुण नही और न केवल पर्याय । हां, पदार्थ गुणपर्यायात्मक ही होता है ।

प्रश्न ३६-- केवल गुण या केवल पर्याय क्या किसी अन्य ज्ञानका विषय हो सकता है ?

उत्तर--केवल गुण या केवल पर्याय किसी भी ज्ञानका विषय नही है, क्योकि केवल गुण या केवल पर्याय असत् है । असत् किसी भी ज्ञानका विषय नही है ।

प्रश्न ३७-- द्रव्यार्थिक दृष्टिसे गुण जाना तो जाता है फिर वह असत् कैसे है ?

उत्तर-- द्रव्यार्थिक दृष्टिसे गुणकी मुख्यतासे पदार्थ जाना जाता है, केवल गुण नही ।

प्रश्न ३८--पर्यायार्थिक दृष्टिसे पदार्थ जाना जाता है, फिर वह असत् कैसे ?

उत्तर-- पर्यायार्थिक दृष्टिसे पर्यायकी मुख्यतासे पदार्थ जाना जाता है, केवल पर्याय नही ।

प्रश्न ३९-- गुण या पर्याय सत् न सही, किन्तु सत्के अश तो हैं ?

उत्तर--सत् कभी गुणकी मुख्यतासे जाना जाता है और कभी पर्यायकी मुख्यतासे जाना जाता है । इस प्रकार सत्के अशकी कल्पना की गई है । वस्तुत: सदृश परिणमन और विसदृश परिणमनमें वर्तता वह एक अखण्ड पदार्थ ही है ।

प्रश्न ४०--अवग्रहादिक चारो प्रकारके मतिज्ञान कितने प्रकारके है ?

उत्तर-- अवग्रहादिक मतिज्ञान १२-१२ प्रकारके है--(१) बहु-अवग्रह, (२) एक-अवग्रह, (३) बहुविध-अवग्रह, (४) एकविध-अवग्रह, (५) क्षिप्र-अवग्रह, (६) अक्षिप्र-अवग्रह, (७) अनि:सृत-अवग्रह, (८) नि:सृत-अवग्रह, (९) अनुक्त-अवग्रह, (१०) उक्त-अवग्रह, (११) ध्रुव-अवग्रह और (१२) अध्रुव-अवग्रह ।

प्रश्न ४१-- बहु-अवग्रह ज्ञान किसे कहते है ?

उत्तर--बहुत पदार्थोका एक साथ अवग्रहज्ञान करना बहु-अवग्रहज्ञान है । जैसे पाँचो अगुलियोका एक साथ ज्ञान होना ।

प्रश्न ४२—एक-अवग्रह किसे कहते है ?

उत्तर—एक ही पदार्थका ग्रहण होना एक-अवग्रह है।

प्रश्न ४३—बहुविध-अवग्रह किसे कहते है ?

उत्तर—बहुत प्रकारके पदार्थोंका अवग्रह करना बहुविध-अवग्रह है।

प्रश्न ४४—एकविध-अवग्रह किसे कहते है ?

उत्तर—एक ही प्रकारके पदार्थका अवग्रह करना एकविध-अवग्रह है।

प्रश्न ४५—एकविध-अवग्रह एक प्रकारके बहुत पदार्थोंका होता होगा ?

उत्तर—एकविध अवग्रह एक प्रकारके अनेक पदार्थोंमे भी होता है और एक ही पदार्थमे भी होता है।

प्रश्न ४६—एक पदार्थमे भी एकविध अवग्रह हो तो इस एकविध व एक-अवग्रहमे क्या अन्तर हुआ ?

उत्तर— एक पदार्थमे एकविधमे अवग्रह हो तो एकको एक प्रकारकी दृष्टिसे जाननेसे होता है और प्रकारकी दृष्टि बिना एकको जाननेसे एक अवग्रह होता है।

प्रश्न ४७—क्षिप्र-अवग्रह किसे कहते है ?

उत्तर—शीघ्रतासे पदार्थका अवग्रहज्ञान कर लेना क्षिप्र-अवग्रह है।

प्रश्न ४८—अक्षिप्र-अवग्रह किसे कहते है ?

उत्तर— शनैः शनैः पदार्थका अवग्रह ज्ञान करना, अक्षिप्र-ज्ञान करना अक्षिप्र-अवग्रह है।

प्रश्न ४९—निःसृत-अवग्रह किसे कहते है ?

उत्तर—निःसृत पदार्थका अवग्रह करना निःसृत-अवग्रह है।

प्रश्न ५०—अनिःसृत-अवग्रह किसे कहते है ?

उत्तर—निःसृत अशको जानकर अनिःसृत पदार्थको जानना अनिःसृत-अवग्रह है।

प्रश्न ५१—उक्त-अवग्रह किसे कहते है ?

उत्तर—इन्द्रियो व मनके द्वारा अपने नियत विषयको जानना उक्त-अवग्रह है।

प्रश्न ५२—अनुक्त-अवग्रह किसे कहते है ?

उत्तर—किसी इन्द्रिय या मन द्वारा अपने नियत विषयको जानते हुये साथ ही अन्य विषयोंको जानना अनुक्त-अवग्रह है। जैसे चक्षुरिन्द्रिय द्वारा आगको देखते हुये इसको भी जान जाना।

प्रश्न ५३—व्यञ्जनावग्रह भी क्या सर्व इन्द्रिय व मनके निमित्तसे उत्पन्न होता है ?

उत्तर—व्यञ्जनावग्रह चक्षुरिन्द्रिय व मनके निमित्तसे उत्पन्न नही होता, क्योकि चक्षुरिन्द्रिय और मन अप्राप्यकारी है, इनसे जो जाना जाता है वह एकदम स्पष्ट हो जाता है। व्यञ्जनावग्रह केवल स्पर्शन, रसना, घ्राण और श्रोत्र—इन चार इन्द्रियोके निमित्तसे उत्पन्न होता है।

प्रश्न ५४-- मतिज्ञानके कितने प्रभेद हो सकते है।

उत्तर-- मतिज्ञानके मूल भेद ५ है—(१) साव्यवहारिक प्रत्यक्ष, (२) स्मरण, (३) प्रत्यभिज्ञान, (४) तर्क, (५) अनुमान (स्वार्थानुमान)। इनमे से प्रत्येकके भेद लगाना चाहिये। विस्तारसे तो मतिज्ञानके असख्यात भेद हो जाते है।

प्रश्न ५५--साव्यवहारिक प्रत्यक्षके कितने भेद है?

उत्तर—साव्यवहारिक प्रत्यक्षके कुल भेद ३३६ है। वे इस प्रकार है—व्यञ्जनावग्रहके ४८, क्योकि व्यञ्जनावग्रह चार इन्द्रियोसे बहु आदि बारह प्रकारके पदार्थोके विषयमे उत्पन्न होता है। अर्थावग्रहके ७२, क्योकि अर्थावग्रह पाँचो इन्द्रिय व छठा मन इन ६ साधनो से बारह प्रकारके पदार्थोके विषयोमे उत्पन्न होता है। इसी प्रकार ईहाके ७२, अवायके ७२ और धारणाके भी ७२ भेद हो जाते है। सब मिलाकर साव्यवहारिक प्रत्यक्षके ३३६ भेद हुये।

प्रश्न ५६—स्मरण, प्रत्यभिज्ञान, तर्क व स्वार्थानुमानके कितने भेद हो जाते है?

उत्तर—इनके प्रत्येकके १२, १२ भेद हो जाते है, क्योकि उक्त चारो ज्ञान मनके निमित्तसे उत्पन्न होते है, इन्द्रियोके निमित्तसे उत्पन्न नही होते, अत. बारह प्रकारके पदार्थ-विषयक मनसे उत्पन्न होने वाले स्मरणादि १२-१२ प्रकारके हो जाते हैं।

प्रश्न ५७-- श्रुतज्ञानके कितने भेद है?

उत्तर—श्रुतज्ञानके २ भेद है—(१) अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान, (२) अक्षरात्मक श्रुतज्ञान।

प्रश्न ५८—अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान किसे कहते है?

उत्तर— जिसका ग्रहण अक्षरके रूपमे नही किया जाता है उसे अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान कहते है?

प्रश्न ५९—अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान किन जीवोके होता है?

उत्तर—एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय व असैनी पञ्चेन्द्रिय जीवोके तो अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान ही होता है। सैनी पञ्चेन्द्रिय जीवोके भी अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान हो सकता है।

प्रश्न ६०—अनक्षरात्मक श्रुतज्ञानके कितने भेद है?

उत्तर—अनक्षरात्मक श्रुतज्ञानके २ भेद है—(१) पर्याय, (२) पर्यायसमास।

प्रश्न ६१–पर्याय श्रुतज्ञान किसे कहते है ?

उत्तर–पर्यायका अर्थ यहाँ सबसे छोटा अश (भाग) है। अक्षर (जिसका क्षरण अर्थात् विनाश न हो ऐसा ज्ञान) के अनन्तवे भाग पर्यायनामक मतिज्ञान है। यह पर्यायनामक मतिज्ञान निरावरण व अविनाशी है। यह पर्यायनामक मतिज्ञान निरावरण व अविनाशी है। (यह पर्याय नामक मतिज्ञान सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्त भवमे उत्पन्न होने वाले जीवके प्रथम समयमे होता है। इस पर्याय मतिज्ञानसे जो श्रुतज्ञान उत्पन्न होता है उसे भी उपचारसे पर्याय श्रुतज्ञान कहते है।)

प्रश्न ६२–पर्यायसमास श्रुतज्ञान किसे कहते है ?

उत्तर—पर्याय श्रुतज्ञानसे अनन्त भाग अधिक श्रुतज्ञानको पर्यायसमास श्रुतज्ञान कहते है और इसके बाद भी असंख्यात लोक प्रमाण षड्वृद्धियो ऊपर तक पर्यायसमास श्रुतज्ञान होता है।

प्रश्न ६३–अक्षरात्मक श्रुतज्ञान किसे कहते है ?

उत्तर—जिसका ग्रहण अक्षरोके रूपमे हो, उसे अक्षरात्मक श्रुतज्ञान कहते है। यह ज्ञान सैनी जीवोके ही होता है।

प्रश्न ६४–अक्षरात्मक श्रुतज्ञानके कितने भेद है ?

उत्तर–अक्षरात्मक श्रुतज्ञान के १८ भेद है—(१) अक्षर, (२) अक्षरसमास, (३) पद, (४) पदसमास, (५) सघात, (६) सघातसमास, (७) प्रतिपत्ति, (८) प्रतिपत्तिसमास, (९) अनुयोग, (१०) अनुयोगसमास, (११) प्राभृतप्राभृत, (१२) प्राभृतप्राभृतसमास, (१३) प्राभृत, (१४) प्राभृतसमास, (१५) वस्तु, (१६) वस्तुसमास, (१७) पूर्व और (१८) पूर्वसमास।

प्रश्न ६५–अक्षर श्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—द्रव्यश्रुत-प्रतिबद्ध एक अक्षरकी जिससे उत्पत्ति हो सके उसे अक्षरज्ञान कहते है अथवा उत्कृष्ट पर्यायसमास श्रुतज्ञानसे अनन्तगुणा ज्ञान अक्षरश्रुतज्ञान है।

प्रश्न ६६—अक्षरश्रुतज्ञान किन जीवोके होता है ?

उत्तर–अक्षरश्रुतज्ञान सैनी पञ्चेन्द्रिय जीवोंके ही हो सकता है, क्योकि अक्षरश्रुतज्ञान मनका विषय है।

प्रश्न ६७—अक्षरसमास श्रुतज्ञान किसे कहते है ?

उत्तर—अक्षरज्ञानके ऊपर और पदज्ञानसे नीचे एक-एक अक्षर बढकर जितने भेद है वे सब अक्षरसमास श्रुतज्ञान है।

प्रश्न ६८—पदश्रुतज्ञान किसे कहते है ?

उत्तर–अक्षरसमास श्रुतज्ञानके ऊपर एक अक्षर बढ़नेपर पदश्रुतज्ञान होता है।

प्रश्न ६६—एक द्रव्यश्रुतपदमें कितने अक्षर होते हैं ?

उत्तर—एक द्रव्यश्रुतपदमें १६३४८३०७८८८ अक्षर होते हैं। इन अक्षरोंसे उत्पन्न हुए भावश्रुतको भी उपचारसे पदश्रुतज्ञान नामसे कहते हैं।

प्रश्न ७०—पदसमास श्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—पदश्रुतज्ञानसे ऊपर और संघातश्रुतज्ञानसे नीचे एक-एक अक्षर बढ़कर जितने भेद होते हैं वे सब पदसमास श्रुतज्ञान कहलाते हैं।

प्रश्न ७१—संघातश्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—उत्कृष्ट पदसमासमें एक अक्षर बढ़नेपर संघातश्रुतज्ञान होता है। इसके द्वारा चार गतिमार्गणामेंसे एक गति मार्गणाका प्ररूपण हो जाता है।

प्रश्न ७२—संघातश्रुतज्ञानमें कितने पद होते हैं ?

उत्तर—संघातश्रुतज्ञानमें संख्यात पद होते हैं ?

प्रश्न ७३—संघातसमास श्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—संघातश्रुतज्ञानसे ऊपर और प्रतिपत्तिश्रुतज्ञानसे नीचे एक-एक अक्षर बढकर जितने भेद होते हैं वे सब संघातसमास श्रुतज्ञान कहलाते हैं।

प्रश्न ७४—प्रतिपत्तिश्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—उत्कृष्ट संघातसमासमें एक अक्षर बढनेपर प्रतिपत्तिश्रुतज्ञान होता है। प्रतिपत्तिश्रुतज्ञानके पदोंके द्वारा १४ मार्गणावोंके एक-एक भेद प्ररूपित हो जाते हैं।

प्रश्न ७५—प्रतिपत्तिसमास श्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—प्रतिपत्ति श्रुतज्ञानसे ऊपर और अनुयोग श्रुतज्ञानसे नीचे एक-एक अक्षर बढकर जितने भेद होते हैं ये सब प्रतिपत्तिसमास श्रुतज्ञान हैं।

प्रश्न ७६—अनुयोग श्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—उत्कृष्ट प्रतिपत्तिसमासमें एक अक्षर बढनेपर अनुयोग श्रुतज्ञान हो जाता है। अनुयोगश्रुतज्ञानके पदों द्वारा १४ मार्गणावोंका पूर्ण प्ररूपण हो जाता है।

प्रश्न ७७—अनुयोगसमास श्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—अनुयोगश्रुतज्ञानसे ऊपर और प्राभृत श्रुतज्ञानसे नीचे एक-एक अक्षर बढकर जितने भेद होते हैं वे सब अनुयोगसमास श्रुतज्ञान हैं।

प्रश्न ७८—प्राभृतप्राभृत श्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—उत्कृष्ट अनुयोगसमास श्रुतज्ञानमें एक अक्षर बढनेपर प्राभृतप्राभृत श्रुतज्ञान होता है।

प्रश्न ७९—प्राभृतप्राभृत श्रुतज्ञानमें कितने अनुयोग हैं ?

उत्तर—प्राभृतप्राभृत श्रुतज्ञानमे सख्यात अनुयोग है।

प्रश्न ८०— प्राभृतप्राभृत समास किसे कहते है ?

उत्तर— प्राभृतप्राभृतसे ऊपर और प्राभृतसे नीचे एक-एक अक्षर बढकर जितने भेद होते है वे सभी प्राभृतप्राभृत समास कहलाते है।

प्रश्न ८१— प्राभृतश्रुतज्ञान किसे कहते है ?

उत्तर— उत्कृष्ट प्राभृतप्राभृतसमाससे ऊपर एक अक्षर बढनेपर प्राभृतश्रुतज्ञान होता है।

प्रश्न ८२—प्राभृतसमास श्रुतज्ञान किसे कहते है ?

उत्तर—प्राभृतश्रुतज्ञानसे ऊपर और वस्तु श्रुतज्ञानसे नीचे एक एक अक्षर बढ़कर जितने भेद होते है वे सब प्राभृतसमास श्रुतज्ञान है।

प्रश्न ८३—वस्तुश्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर— उत्कृष्ट प्राभृतसमासके ऊपर एक अक्षर बढनेपर वस्तुश्रुतज्ञान होता है।

प्रश्न ८४—वस्तुश्रुतज्ञानमे कितने प्राभृत होते है ?

उत्तर—वस्तुश्रुतज्ञानमे २० प्राभृत होते है।

प्रश्न ८५—वस्तुसमास श्रुतज्ञान किसे कहते है ?

उत्तर—वस्तुश्रुतज्ञानसे ऊपर और पूर्व श्रुतज्ञानसे नीचे एक एक अक्षर बढकर जितने भेद होते हैं वे सब वस्तुसमास श्रुतज्ञान है।

प्रश्न ८६—पूर्वश्रुतज्ञान किसे कहते है ?

उत्तर—उत्कृष्ट वस्तुसमासमे एक अक्षर बढ़नेपर पूर्वश्रुतज्ञान होता है।

प्रश्न ८७—पूर्वसमास श्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—पूर्वश्रुतज्ञानसे ऊपर जब तक लोकबिन्दुसार नामक १४वां पूर्व पूर्ण हो जाता है तब तक एक एक अक्षर बढकर जितने भेद है वे सर्व पूर्वसमास श्रुतज्ञान है।

प्रश्न ८८— उत्कृष्ट पूर्वसमाससे ऊपर क्या कोई श्रुतज्ञान नही है ?

उत्तर— उत्कृष्ट पूर्वसमाससे ऊपर भी श्रुतज्ञान होता है।

प्रश्न ८९—फिर उत्कृष्ट पूर्वसमाससे ऊपर वाले श्रुतज्ञानको श्रुतज्ञानके उक्त भेदोमें क्यो नही अलग नामसे बताया ?

उत्तर— उत्कृष्ट पूर्वसमाससे ऊपर जितना श्रुतज्ञान रह जाता है वह सब एकद्रव्य श्रुतपदके बराबर भी नही है, इसलिये इस प्रक्रियामे उसे अलग भेद करके बताया नही है।

प्रश्न ९०— इस अवशिष्ट श्रुतज्ञानको किस नामसे बोलते है ?

उत्तर—अवशिष्ट श्रुतज्ञानका नाम अङ्गबाह्य है। इसमे सामायिकादि १४ विपयोका वर्णन है।

प्रश्न ९१– विषयवारकी अपेक्षामे अक्षरात्मक श्रुतज्ञानके कितने भेद है ?

उत्तर– विषयवारकी अपेक्षा से श्रुतज्ञानके मूल भेद २ है—(१) अङ्गबाह्य, (२) अङ्गप्रविष्ट ।

प्रश्न ९२– अङ्गबाह्यके कितने भेद है ?

उत्तर– अङ्ग बाह्य के १४ भेद है—(१) सामायिक, (२) चतुर्विंशतिस्तव, (३) वन्दना, (४) प्रतिक्रमण, (५) वैनयिक, (६) कृतिकर्म, (७) दशवैकालिक, (८) उत्तराध्ययन, (९) कल्पव्यवहार, (१०) कल्प्याकल्प्य, (११) महाकल्प्य, (१२) पुण्डरीक, (१३) महापुण्डरीक, (१४) निषिद्धिका ।

प्रश्न ९३—सामायिक नामक अङ्गबाह्य श्रुतज्ञानमे किसका वर्णन अथवा ज्ञान है ?

उत्तर—सामायिक श्रुताङ्गमे नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव—इन छह पद्धतियो द्वारा समताभावके विधानका वर्णन है ।

प्रश्न ९४—चतुर्विंशतिस्तव श्रुताङ्गमे किसका वर्णन है ?

उत्तर– चतुर्विंशति तीर्थङ्करोके नाम, अवगाहना, कल्याणक, अतिशय व उनकी वन्दना विधि व वन्दनाफलका वर्णन इस श्रुताङ्गमे है ।

प्रश्न ९५– वन्दना नामक श्रुताङ्गमे किसका वर्णन है ?

उत्तर—एक जिनेन्द्रदेवकी व एक जिनेन्द्रदेवके अवलम्बनसे जिनालयकी वन्दनाकी विधिका वर्णन वन्दना नामक अङ्गबाह्य श्रुतज्ञानमे है ।

प्रश्न ९६—प्रतिक्रमण नामक श्रुताङ्गमे किस विषयका वर्णन है ?

उत्तर—दैवसिक, रात्रिक, पाक्षिक, चातुर्मासिक, सावत्सरिक, ऐर्यापथिक व औत्तमार्थिक, इन सात प्रकारके प्रतिक्रमणोका काल व शक्तिके अनुसार करनेकी विधिका वर्णन है ।

प्रश्न ९७—वैनयिक नामक अङ्गबाह्य श्रुतज्ञानमे किसका वर्णन है ?

उत्तर– इस श्रुतागमे, ज्ञानविनय, दर्शनविनय, चारित्रविनय व उपचारविनय, इन चार प्रकारके विनयोका वर्णन है ।

प्रश्न ९८– कृतिकर्म नामक श्रुतागमे किसका वर्णन है ?

उत्तर– अरहत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय व साधु, इन पाँचो परमेष्ठियोकी पूजाविधि का वर्णन कृतिकर्म नामक अगबाह्य श्रुतज्ञानमे है ।

प्रश्न ९९—दशवैकालिक श्रुतागमे किसका वर्णन है ?

उत्तर– दस विशिष्ट कालोमे होने वाली विशेषता व मुनिजनोकी आचरणविधिका वर्णन दशवैकालिक श्रुतमे है ।

प्रश्न १००—उत्तराध्ययन श्रुतागमे किसका वर्णन है ?

उत्तर– कैसे उपसर्ग सहना चाहिये, कैसे परीषह सहना चाहिये इत्यादि अनेक प्रश्नो के इसमे उत्तर दिये गये है।

प्रश्न १०१– कल्पव्यवहारनाम श्रुतागमे किसका वर्णन है ?

उत्तर—साधुओके कल्प्य याने योग्य आचरणोके व्यवहार याने आचरणका कल्प्यव्यवहारमे वर्णन है।

प्रश्न १०२–कल्प्याकल्प्य श्रुताङ्गमे किस विषयका वर्णन है ?

उत्तर– द्रव्य, क्षेत्र, काल व भावके अनुसार मुनियोके लिये यह योग्य है व यह अयोग्य है—इस प्रकार सब कल्प्य और अकल्प्योका इस श्रुताङ्गमे वर्णन है।

प्रश्न १०३– महाकल्प्य नामक अङ्गबाह्य श्रुतमे किसका वर्णन है ?

उत्तर—काल व सहननकी अनुकूलताकी प्रधानतासे साधुओके योग्य द्रव्य, क्षेत्र आदि का वर्णन इस श्रुताङ्गमे है।

प्रश्न १०४—पुण्डरीक नामक बाह्य श्रुतमे किसका वर्णन है ?

उत्तर– इस श्रुताङ्गमे चार प्रकारके देवोमे उत्पत्तिके कारणभूत पूजा, दान, तप, व्रत आदिके अनुष्ठानोका वर्णन है।

प्रश्न १०५– महापुण्डरीक श्रुतागमे किस विषयका वर्णन है ?

उत्तर– इस श्रुताङ्गमे इन्द्र व प्रतीन्द्रोमे उत्पत्तिके कारणभूत विशिष्ट तपोके अनुष्ठान का वर्णन है।

प्रश्न १०६– निषिद्धिका नामक श्रुताङ्गमे किस विषयका वर्णन है ?

उत्तर—दोषोके निराकरणमे समर्थ अनेक प्रकारके प्रायश्चितोका वर्णन निषिद्धिका नामक बाह्यश्रुतमे है।

प्रश्न १०७—अगप्रविष्टके कितने भेद है ?

उत्तर—अगप्रविष्टके बारह भेद है—(१) आचाराग, (२) सूत्रकृताङ्ग, (३) स्थानाग, (४) समवायाङ्ग, (५) व्याख्याप्रज्ञप्ति, (६) ज्ञातृकथाङ्ग, (७) उपासकाध्ययनाग, (८) अन्तःकृद्दशाङ्ग, (९) अनुत्तरोपपादिकदशाङ्ग, (१०) विपाकसूत्राङ्ग, (११) प्रश्नव्याकरणाङ्ग और (१२) दृष्टिवादाङ्ग। इन बारह अगोमे से सबसे अधिक विस्तृत दृष्टिवाद अंग है, इसके भी भेद प्रभेद अनेक है।

प्रश्न १०८—दृष्टिवाद अगके कितने भेद है ?

उत्तर—दृष्टिवाद अंगके ५ भेद है—(१) प्रथमानुयोग, (२) परिकर्म, (३) सूत्र, (४) चूलिका और (५) पूर्व। इनमे से परिकर्म, चूलिका और पूर्वके भी अनेक भेद है।

प्रश्न १०९—परिकर्मके कितने भेद है ?

उत्तर—परिकर्मके ५ भेद है—(१) चन्द्रप्रज्ञप्ति, (२) सूर्यप्रज्ञप्ति, (३) जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, (४) द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, (५) व्याख्याप्रज्ञप्ति ।

प्रश्न ११०—चूलिकाके कितने भेद है ?

उत्तर—चूलिकाके ५ भेद है—(१) जलगता, (२) स्थलगता, (३) मायागता, (४) आकाशगता और (५) रूपगता ।

प्रश्न १११—पूर्वके कितने भेद हैं ?

उत्तर—पूर्वके १४ भेद है—(१) उत्पादपूर्व, (२) अग्रायणीपूर्व, (३) वीर्यानुवाद, (४) अस्तिनास्तिप्रवादपूर्व, (५) ज्ञानप्रवादपूर्व, (६) सत्यप्रवादपूर्व, (७) आत्मप्रवादपूर्व, (८) कर्मप्रवादपूर्व, (९) प्रत्याख्यानवादपूर्व, (१०) विद्यानुवादपूर्व, (११) कल्याणवादपूर्व, (१२) प्राणवादपूर्व, (१३) क्रियाविशालपूर्व और (१४) लोकविन्दुसारपूर्व ।

प्रश्न ११२—परिमाणकी अपेक्षा कहे गये १८ प्रकारके अक्षरात्मक श्रुतज्ञानमे से किन भेदोमे किन अग पूर्व आदिका समावेश होता है ?

उत्तर—चौदह पूर्वोको छोड़कर बाकी श्रुतज्ञान वस्तु समासपर्यन्त १६ भेदोमे समाविष्ट है और चौदह पूर्व पूर्वश्रुतज्ञान पूर्वसमासश्रुतज्ञानमे समाविष्ट है ।

प्रश्न ११३—आचाराङ्गमे कितने पद है और किसका वर्णन है ?

उत्तर—इसमे मुनियोके आचारका वर्णन है कि वह किस तरह समस्त आचरण करे, यत्नपूर्वक भाषण करे, यत्नपूर्वक आहार विहार करे आदि । इस अङ्गमे १८ हजार पद हैं । एक पदमे १६३४८३०७८८८ अक्षर होते है ?

प्रश्न ११४—सूत्रकृताङ्गमे कितने पद है और किसका वर्णन है ?

उत्तर—सूत्रकृताङ्गमे ३६ हजार पद है । इस अङ्गमे सूत्रोके द्वारा ज्ञान विनय आदि अध्ययन क्रिया, कल्प्याकल्प्य आदि व्यवहारधर्मक्रिया व स्वसमय और परसमयके स्वरूपका वर्णन है ।

प्रश्न ११५—स्थानाङ्गमे कितने पद है और किसका वर्णन है ?

उत्तर—स्थानाङ्गमे ४२ हजार पद हैं । इस अङ्गमे प्रत्येक द्रव्योके १, २, ३ आदि अनेक भेद, विकल्पोका वर्णन है । जैसे जीव एक है, जीव दो है—मुक्त और ससारी । जीवके तीन भेद है—कर्ममुक्त, जीवन्मुक्त, ससारी इत्यादि ।

प्रश्न ११६—समवायांगमे कितने पद है और किसका वर्णन है ?

उत्तर—इसमे १ लाख ६४ हजार पद है । इस अङ्गमे सदृश विस्तार वाले सदृश धर्म वाले, सदृश सख्या वाले जो जो पदार्थ हैं उन सबका वर्णन है । जैसे ४५ लाख योजन वाले ५ पदार्थ है—ढाई द्वीप, सिद्धक्षेत्र आदि ।

प्रश्न ११७-- व्याख्याप्रज्ञप्ति अङ्गमे कितने पद है और किसका वर्णन है ?

उत्तर— इस अङ्गमे दो लाख अट्ठाइस हजार पद है। इसमे साठ हजार प्रश्न और उत्तर हैं। जैसे जीव नित्य है या अनित्य ? जीव वक्तव्य है या अवक्तव्य इत्यादि।

प्रश्न ११८ - ज्ञातृधर्मकथाङ्गमे कितने पद है और किसका वर्णन है ?

उत्तर— इसमे पाँच लाख छप्पन हजार पद है। इसमे वस्तुओका स्वभाव तीर्थंकरोका माहात्म्य, दिव्यध्वनिका समय व स्वरूप, गणधर आदि मुख्य ज्ञाताओकी कथावोका वर्णन है।

प्रश्न ११९— उपासकाध्ययनांगमे कितने पद है और किसका वर्णन है ?

उत्तर—इसमे ग्यारह लाख सत्तर हजार पद है। इसमे श्रावकोकी प्रतिमा, आचरण व क्रियाकाण्डोका वर्णन है। श्रावकोचित मन्त्रोका भी इसमें वर्णन है।

प्रश्न १२०— अन्तःकृद्दशाङ्गमे कितने पद है और किसका वर्णन है ?

उत्तर-- इसमे २३ लाख २८ हजार पद है और इसमे उन अन्तःकृत केवलियोका वर्णन है जो प्रत्येक तीर्थङ्करोके तीर्थमे दश दश मुनि घोर उपसर्ग सहन करके अन्तमे समाधि द्वारा ससारके अन्तको प्राप्त हुए है।

प्रश्न १२१-- अनुत्तरोपपादिकदशाङ्गमे कितने पद है और किसका वर्णन है ?

उत्तर—इसमे ९२४४००० पद है। इसमे प्रत्येक तीर्थंकरके तीर्थमे होने वाले उन दश दश मुनियोका वर्णन है जो घोर उपसर्ग सहन करके समाधि भावसे प्राण तज करके विजयादिक अनुत्तर विमानोमे उत्पन्न हुए है।

प्रश्न १२२—प्रश्न व्याकरणाङ्गमे कितने पद है और किसका वर्णन है ?

उत्तर—इसमे ९३१६००० पद है। इसमे अनेक प्रश्नोके द्वारा तीन काल सम्बन्धी धनधान्यादि लाभ, अलाभ, सुख, दुःख, जीवन, मरण, जय पराजय आदि फलोका वर्णन है।

प्रश्न १२३—विपाकसूत्रमे कितने पद है और किसका वर्णन है ?

उत्तर—इसमे एक करोड चौरासी लाख पद है और इसमे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावके अनुसार शुभ अशुभ कर्मोका तीव्र भेद आदि अनेक प्रकारके फल (विपाक) होनेका वर्णन है।

प्रश्न १२४—दृष्टिवाद अङ्गमे कितने पद है और इसमे किसका वर्णन है ?

उत्तर—इस अङ्गमे १०८ करोड ६८ लाख ५६ हजार पाँच पद है। इसमे ३६३ मिथ्यामतोका वर्णन और निराकरण है। लोक, द्रव्य, मत्र, विद्या, कलाओ, कथाओ आदि का भी वर्णन है।

प्रश्न १२५—प्रथमानुयोगमे कितने पद है और किसका वर्णन है ?

उत्तर—इसमे ५ हजार पद है। इसमे तीर्थङ्कर, चक्रवर्ती, नारायण, बलभद्र और प्रतिनारायणोकी कथाओ व इनसे सम्बन्धित उपकथाओका वर्णन है।

प्रश्न १२६– परिकर्ममे कितने पद है और किसका वर्णन है ?

उत्तर—इसमे १ करोड ८१ लाख ५ हजार पद है। इसमे भूवलय आदिके सम्बध मे गणितके करणसूत्रोका वर्णन है। इसके चन्द्रप्रज्ञप्ति आदि जो ५ भेद है उनके वर्णनमे इसके पदो और विषयोका विवरण होगा।

प्रश्न १२७– चन्द्रप्रज्ञप्तिमें कितने पद है और किसका वर्णन है ?

उत्तर—चन्द्रप्रज्ञप्तिमे ३६ लाख ५ हजार पद है और इसमे चन्द्र इन्द्रके विमान, परिवार, आयु, गमन आदिका वर्णन है एव चन्द्रविमानका पूर्णग्रहण अर्द्धग्रहण कैसे होता है इत्यादि तद्विषयक सभी वर्णन है।

प्रश्न १२८– सूर्यप्रज्ञप्तिमे कितने पद है और किसका वर्णन है ?

उत्तर– इस परिकर्ममें ५ लाख ३ हजार पद है और इसमे सूर्य प्रतीन्द्रके विमान, परिवार, आयु, गमन, ग्रहण आदि सभी बातोका वर्णन है।

प्रश्न १२९– जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिमे कितने पद है और किसका वर्णन है ?

उत्तर– इस परिकर्ममे ३ लाख २५ हजार पद है और इसमे जम्बूद्वीपके क्षेत्र, कुलाचल, ह्रद, मेरु, वेदिका, वन, अकृत्रिम चैत्यालय, व्यन्तरोके आवास, महानदियो आदिका वर्णन है।

प्रश्न १३०– द्वीपसागरप्रज्ञप्तिमे कितने पद है और किसका वर्णन है ?

उत्तर—इसमे ५२ लाख ३६ हजार पद हैं। इसमे असख्याते द्वीपसमुद्रोंके विस्तार, रचना, अकृत्रिम चैत्यालय आदिका वर्णन है।

प्रश्न १३१– व्याख्याप्रज्ञप्तिमे कितने पद है और इसमे किसका वर्णन है ?

उत्तर– इसमे रूपी अरूपी द्रव्य, जीव अजीव द्रव्य, अनन्तरसिद्ध परम्परासिद्ध एव अनेक पदार्थोंका व्याख्यान है। इसमे ८४ लाख ३६ हजार पद हैं।

प्रश्न १३२– सूत्र नामक दृष्टिवादाङ्गमे कितने पद है और किसका वर्णन है ?

उत्तर– इसमे ८८ लाख पद है। इसमे ३६३ मिथ्यामतोका विशेष विवरण है और उन समस्त पूर्वपक्षोका निराकरण है। न्यायशास्त्रोका उद्गम इस सूत्र नामक दृष्टिवाद अङ्गसे हुआ है।

प्रश्न १३३—चूलिकामे कितने पद है और किसका वर्णन है ?

उत्तर—इसके जलगता आदि ५ भेदोके प्रत्येकके २०९८९२०० पद हैं। इन पाँचो के पदोका जोड़ १०४९४६००० होता है। इतने चूलिकामे समस्त पद है। इन भेदोके विषय विवरणमे चूलिकाके विषयका वर्णन हो जावेगा।

प्रश्न १३४—जलगता चूलिकामे किसका वर्णन है ?

उत्तर—जलमे अथवा जलपर किस प्रकार गमन किया जा सकता है, अग्निका स्तम्भन, भक्षण कैसे हो सकता है ? अग्निमे प्रवेश अथवा अग्निपर बैठना कैसे हो सकता है ? इन सब बातोके करनेके मंत्र, तंत्र, तपस्याओका इसमे वर्णन है ।

प्रश्न १३५—स्थलगता चूलिकामे किस बातका वर्णन है ?

उत्तर—इसमे ऐसे मन्त्र-तन्त्र आदिका वर्णन है, जिसके प्रभावसे मेरु, पर्वत, भूमिमे प्रवेश किया जा सकता है और शीघ्र गमन किया जा सकता है ।

प्रश्न १३६—मायागता चूलिकामे किस बातका वर्णन है ?

उत्तर—अद्भुत मायामय बाते दिखाना, जो वस्तु यहाँ नही है उसे शीघ्र हाजिर करना, किसीकी गुप्त बातको बता देना आदि इन्द्रजाल सम्बन्धी बातोका इसमे वर्णन है ।

प्रश्न १३७—आकाशगता चूलिकामे किसका वर्णन है ?

उत्तर—इसमे ऐसे मन्त्र तन्त्र आदिका वर्णन है, जिसके प्रभावसे आकाशमे नाना प्रकारसे गमन किया जा सकता है ।

प्रश्न १३८—रूपगता चूलिकामे किस बातका वर्णन है ?

उत्तर—इसमे सिंह, वृषभ आदि अनेक प्रकारके रूप बना लेनेके कारणभूत मन्त्र-तन्त्र आदिका वर्णन है ।

प्रश्न १३९—पूर्वनामक दृष्टिवाद अंगमे कितने पद है और किसका वर्णन है ?

उत्तर—समस्त पूर्वोमे ९५५०५००० पद है । इसके उत्पादपूर्व आदि १४ भेद है, उनके विषयोके विवरणमे पूर्वोका विषय जान लिया जाता है ।

प्रश्न १४०—उत्पादपूर्वमे कितने पद है और किसका वर्णन है ?

उत्तर—इसमे एक करोड पद है । इसमे प्रत्येक पदार्थके उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य और उनके सयोगी धर्मोका वर्णन है ।

प्रश्न १४१—अग्रायणीपूर्वमे कितने पद है और किसका वर्णन है ?

उत्तर—इसमे ९६ लाख पद है और इसमे ५ अस्तिकाय, ६ द्रव्य, ७ तत्त्व, ७०० सुनय, ७०० दुर्नय आदिका वर्णन है । यह विषय द्वादशागका एक मुख्य विषय है ।

प्रश्न १४२—वीर्यानुवादपूर्वमे कितने पद है और किस बातका वर्णन है ?

उत्तर—इस पूर्वमे ७० लाख पद है, इसमे आत्माकी शक्ति, परपदार्थकी शक्ति द्रव्य गुण पर्यायकी शक्ति, कालकी शक्ति, तपस्याकी शक्ति आदि अनेक प्रकारकी शक्तियोका वर्णन है ।

प्रश्न १४३—अस्तिनास्तिप्रवादपूर्वमे किसका वर्णन है और इसमे कितने पद है ?

उत्तर—इस पूर्वमे स्यादस्ति, स्यान्नास्ति, स्यादवक्तव्य आदि सप्तभगोका वर्णन है जिससे द्रव्यका स्वरूप ज्ञात होता है । इसमे ६० लाख पद है ।

प्रश्न १४४—ज्ञानप्रवाद पूर्वमे किस बातका वर्णन है और इसमे कितने पद है ?

उत्तर— इस पूर्वमे पाचो सम्यग्ज्ञान और तीनो मिथ्याज्ञानोके स्वरूप, भेद, विषय, फल आदिका वर्णन है। इसमे ९९९९९९९ पद है (एक कम एक करोड पद है।)

प्रश्न १४५—सत्यप्रवादपूर्वमे किस बातका वर्णन है और इसमे कितने पद है ?

उत्तर—शब्दोच्चारणके ८ स्थान, ५ प्रयत्नोका, वचनके भेद, बारह प्रकारकी भाषा, दस प्रकारके सत्यवचन, अनेक असत्यवचन, वचनगुप्ति, मौन आदि अनेक वचन सम्बधी विषयो का वर्णन है। इसमे १ करोड ६ पद है।

प्रश्न १४६—आत्मप्रवादपूर्वमे किस बातका वर्णन है और इसमे कितने पद है ?

उत्तर—इसमे आत्मतत्त्वसम्बधी विषयोका वर्णन है। जैसे आत्मा किसे करता है, किसे भोगता है, आत्माका शुद्ध स्वरूप क्या है आदि। इसमे २६ करोड पद है।

प्रश्न १४७—कर्मप्रवादपूर्वमे किसका वर्णन है और इसमे कितने पद है ?

उत्तर-- इसमे कर्मकी अनेक अवस्थाओका वर्णन है। जैसे— कर्मोके मूल भेद कितने है ? उत्तर भेद कितने है ? बध, उदय, उदीरणा कैसे होती है आदि। इसमे एक करोड अस्सी लाख पद है।

प्रश्न १४८— प्रत्याख्यानपूर्वमे किस बातका वर्णन है और इसमे कितने पद है ?

उत्तर-- इसमे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव व पुरुषके सहननके अनुसार सदोष वस्तुका त्याग, उपवासविधान, व्रत आदिका वर्णन है। इसमे ८४ लाख पद है।

प्रश्न १४९— विद्यानुवादपूर्वमे किस बातका वर्णन है और इसमे कितने पद है ?

उत्तर-- विद्यानुवादमे अगुष्ठप्रसेन आदि ७०० अल्पविद्या और रोहिणी आदि ५०० महाविद्याओके स्वरूप, सामर्थ्य, साधनविधि और मन्त्र-तन्त्रका तथा सिद्ध विद्याओके फलका वर्णन है। इसमे एक करोड दस लाख पद है।

प्रश्न १५०-- कल्याणवादपूर्वमे कितने पद है और इसमे किसका वर्णन है ?

उत्तर-- इस पूर्वमे २६ करोड पद है और इसमे तीर्थकरोके पचकल्याणकोका, षोडश कारण भावनाओका, ग्रहण, शकुन आदिके फलोका वर्णन है।

प्रश्न १५१—प्राणानुवादपूर्वमे किस बातका वर्णन है और इसमे कितने पद है ?

उत्तर—इसमे आयुर्वेद सम्बन्धी चिकित्सा, नाडीगति, औषधियोके गुण अवगुण आदि सर्वविषयोका वर्णन है। इसमे १३ करोड़ पद है।

प्रश्न १५२— क्रियाविशाल पूर्वमे किन बातोका वर्णन है और इसमे कितने पद है ?

उत्तर—सगीत, काव्य, अलकार, कला, शिल्पविज्ञान, गर्भाधानादि क्रिया आदि नित्य और नैमित्तिक क्रियाओका इसमे वर्णन है। इसमे ९ करोड पद है।

प्रश्न १५३— लोकबिन्दुसार पूर्वमे कितने पद है और इसमे किसका वर्णन है ?

उत्तर— इस पूर्वमे १२ करोड ५० लाख पद है। इसमे तीनो लोकोका स्वरूप, मोक्ष का स्वरूप और मोक्ष प्राप्त करनेके कारण, ध्यान आदिका वर्णन है।

प्रश्न १५४— पूर्ण श्रुतज्ञान किसे कहते है ?

उत्तर— पूर्ण श्रुतज्ञान श्रुतकेवलीके होता है। द्वादशागके पाठी व ज्ञाता तो इन्द्र, लौकान्तिकदेव व सर्वार्थसिद्धिके देव भी होते है, किन्तु अगबाह्यसे अपरिचित होनेसे वे श्रुत-केवली नही कहलाते। श्रुतकेवली निर्ग्रन्थ साधु ही हो सकते है।

प्रश्न १५५— श्रुतज्ञान क्या सर्वथा परोक्ष ही होता है या किसी प्रकार प्रत्यक्ष भी हो सकता है ?

उत्तर— शब्दात्मक श्रुतज्ञान तो सर्व परोक्ष ही है, स्वर्ग आदि बाह्य विषय ज्ञान भी परोक्ष ही है। मै सुख-दुःखादिरूप हू, ज्ञानरूप हू, यह ज्ञान ईषत् परोक्ष है। शुद्धात्माभिमुख स्वसम्वेदनरूप ज्ञान प्रत्यक्ष है, हाँ केवलज्ञानकी अपेक्षा परोक्ष है।

प्रश्न १५६— यदि श्रुतज्ञान क्वचित् प्रत्यक्ष है तो "आद्ये परोक्षम्" इस सूत्रसे विरोध आ जायगा ?

उत्तर— "आद्ये परोक्षम्" यह उत्सर्ग कथन है। जैसे मतिज्ञान परोक्ष होकर भी अप-वादस्वरूप, साव्यवहारिकको प्रत्यक्ष भी माना है, वैसे श्रुतज्ञान परोक्ष होकर भी अपवादस्व-रूप अन्तर्ज्ञान प्रत्यक्ष माना जाता है।

प्रश्न १५७— अवधिज्ञान किसे कहते है ?

उत्तर— अवधिज्ञानावरणके क्षयोपशमसे व वीर्यान्तरायके क्षयोपशमसे मूर्त वस्तुको आत्मीय शक्तिसे एकदेश प्रत्यक्ष जाननेको अवधिज्ञान कहते है। अवधि मर्यादाको कहते है। जो द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी मर्यादाको लेकर जाने उसे अवधिज्ञान कहते है। अवधिज्ञानसे पहिलेके सब ज्ञान भी मर्यादाके भीतर ही जानते है।

प्रश्न १५८— इससे तो मनःपर्ययज्ञान मर्यादा रहित जानने वाला हो जावेगा ?

उत्तर— नही, मनःपर्ययज्ञान भी अवधिज्ञानसे पहिलेका ज्ञान है, क्योकि वास्तवमे ज्ञानोके नाम इस क्रमसे है— (१) मतिज्ञान, (२) श्रुतज्ञान, (३) मनःपर्ययज्ञान, (४) अवधि-ज्ञान, (५) केवलज्ञान।

प्रश्न १५९— सूत्रमे व इस गाथामे तो "मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानि ज्ञानम्" ऐसा क्रम दिया है।

उत्तर— मनःपर्ययज्ञान ऋद्धिधारी संन्यासी मुनिके ही होता है, इस विशेष प्रयोजनको दिखानेके लिये मनःपर्ययज्ञान अवधिज्ञानके बाद और केवलज्ञानसे पहिले लिखा गया है।

प्रश्न १६०—अवधिज्ञानका दूसरा अर्थ भी कोई है ?

उत्तर– है । अवाग्धानादवधिः इस व्युत्पत्तिके अनुसार अवधिज्ञानका यह अर्थ है जो नीचे विशेष क्षेत्र लेकर जावे सो अवधिज्ञान है । अवधिज्ञानका क्षेत्र नीचे विशेष होता है, ऊपर कम होता है । पूर्ण अवधिज्ञानकी बात विशेष है ।

प्रश्न १६१– अवधिज्ञानके कितने भेद है ?

उत्तर– अवधिज्ञानके २ भेद है—(१) गुणप्रत्यय अवधिज्ञान, (२) भवप्रत्यय अवधिज्ञान । गुणप्रत्यय अवधिज्ञान मनुष्य, तिर्यञ्चोका कहलाता है । भवप्रत्यय अवधिज्ञान देव नारकियोंके होता है ।

प्रश्न १६२-- क्या अवधिज्ञानके अन्य प्रकारसे भी भेद है ?

उत्तर– अवधिज्ञानके ३ भेद है– (१) देशावधि, (२) परमावधि और (३) सर्वावधि । देशावधि चारो गतियोमे हो सकता है । परमावधि और सर्वावधि मनुष्यके ही और तद्भव मोक्षगामीके ही होते हैं ।

प्रश्न १६३—अवधिज्ञानके और भी अन्य प्रकारसे भेद है क्या ?

उत्तर—अवधिज्ञानके ६ भेद है—(१) अनुगामी, (२) अननुगामी, (३) वर्द्धमान, (४) हीयमान, (५) अवस्थित, (६) अनवस्थित ।

प्रश्न १६४– इन सब भेदोके स्वरूप क्या है ?

उत्तर—इन सब भेदोके स्वरूप आदि जाननेके लिये गोम्मठसार जीवकाण्ड आदि सिद्धान्त ग्रन्थ देखें । इस टीकामे विस्तारभयसे नही लिखा जा रहा है ।

प्रश्न १६५– मन पर्ययज्ञान किसे कहते है ?

उत्तर—जो ज्ञान इन्द्रिय व मनकी सहायता बिना आत्मीय शक्तिसे दूसरोके मनमे तिष्ठते हुये विकल्पको व विकल्पागत रूपी पदार्थको एकदेश स्पष्ट जाने उसे मन.पर्ययज्ञान कहते है ।

प्रश्न १६६– क्या मन पर्ययज्ञान मनके अवलम्बनसे प्रकट नही होता ?

उत्तर– मन.पर्ययज्ञानोपयोग होनेसे पहिले ईहामतिज्ञान होता है और ईहामतिज्ञान मनके अवलम्बनसे प्रकट होता है । इस तरह मन.पर्ययज्ञानसे पहिले तो मनका अवलम्बन है, किन्तु मनःपर्ययज्ञानोपयोगके समय मनका अवलम्बन नहीं है ।

प्रश्न १६७—मन पर्ययज्ञानके कितने भेद है ?

उत्तर– मनःपर्ययज्ञानके २ भेद है– (१) ऋजुमतिमन पर्ययज्ञान, (२) विपुलमतिमनःपर्ययज्ञान ।

प्रश्न १६८– ऋजुमतिमन पर्ययज्ञान किसे कहते है ?

उत्तर– जो मनःपर्ययज्ञान परके मनमे स्थित सरल सीधी बातको जाने वह ऋजुमति-मन पर्ययज्ञान है।

प्रश्न १६९-- विपुलमतिमनःपर्ययज्ञान किसे कहते है ?

उत्तर– जो मनःपर्ययज्ञान परके कुटिल मनमे भी स्थित, अर्धचिन्तित, भविष्यमे विचारी जाने वाली, भूतकालमे विचारी गई आदि बातोको जाने वह विपुलमतिमन.पर्ययज्ञान है।

प्रश्न १७०– केवलज्ञान किसे कहते है ?

उत्तर– जो स्वतन्त्रतासे केवल आत्मशक्ति द्वारा त्रिकालवर्ती समस्त पर्यायो सहित समस्त द्रव्योको सर्वदेश प्रत्यक्ष जाने उसे केवलज्ञान कहते है। यह ज्ञान सर्व प्रकार उपादेयभूत है।

प्रश्न १७१-- इस ज्ञानकी उत्पत्तिका साधन क्या है ?

उत्तर– निज शुद्धात्मतत्त्वका सम्यक् श्रद्धान, ज्ञान और आचरण रूप एकाग्र ध्यान केवलज्ञानको उत्पत्तिका साधन है।

उत्थानिका—अब उक्त ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोगके वर्णनका नयोसे विभाग करते हुए उपसहार करते है—

अट्ठ चदुणाण दसण सामण्ण जीवलक्खण भणिय।
ववहारा सुद्धणया सुद्ध पुण दसण णाणं ॥६॥

अन्वय—ववहारा अट्ठ णाण चदु दसण सामण्ण जीवलक्खण भणिय, पुण सुद्धणया सुद्ध दसण णाण जीवलक्खण।

अर्थ—व्यवहारनयसे आठ प्रकारका ज्ञान और चार प्रकारका दर्शन सामान्य रूपसे जीवका लक्षण कहा गया है, परन्तु शुद्धनयसे शुद्ध (निरपेक्ष) दर्शन ज्ञान जीवका लक्षण है।

प्रश्न १– व्यवहारनय किसे कहते है ?

उत्तर– जो बुद्धि, पर्याय, भेद, सयोगको विषय करे उसे व्यवहारनय कहते है।

प्रश्न २– आठ प्रकारके ज्ञान और चार प्रकारके दर्शन जीवके लक्षण व्यवहारनयसे क्यो है ?

उत्तर-- केवलज्ञान और केवलदर्शन तो शुद्ध पर्याय है और मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान व मनःपर्ययज्ञान तथा चक्षुर्दर्शन, अचक्षुर्दर्शन और अवधिदर्शन ये अशुद्ध अर्थात् अपूर्ण पर्यायें है। अतः इनको जीवका लक्षण कहनां व्यवहारनयसे ही बनता है।

प्रश्न ३-- केवलज्ञान, केवलदर्शन किस व्यवहारनयसे जीवका लक्षण है ?

उत्तर-- केवलज्ञान व केवलदर्शन शुद्ध सद्भूत व्यवहारनयसे जीवका लक्षण है। इस प्रसगमे इस नयका दूसरा नाम अनुपचरित सद्भूत व्यवहारनय भी है। केवलज्ञान और केवल-

दर्शन निरपेक्ष पूर्ण स्वाभाविक शुद्ध पर्याय है।

प्रश्न ४-- मतिज्ञानादिक ४ ज्ञान व चक्षुर्दर्शनादिक तीन दर्शन किस व्यवहारनयसे जीवके लक्षण माने गये है ?

उत्तर-- मति, श्रुत, अवधि, मन पर्यय—ये चार ज्ञान और आदिके ३ दर्शन अशुद्ध सद्भूत व्यवहारनयसे जीवके लक्षण कहे गये है। इस नयका दूसरा नाम उपचरित सद्भूत व्यवहारनय भी है। ये ज्ञान व दर्शन, ज्ञानावरण व दर्शनावरण कर्मके क्षयोपशमके कारण यथार्थ कुछ प्रकट है इसलिये सद्भूत है, किन्तु कारणवश अपूर्ण हैं, अत अशुद्ध अथवा उपचरित है, पर्यायें हैं, अत व्यवहारनयके विषय है।

प्रश्न ५-- कुमति, कुश्रुत, कुअवधिज्ञान किस व्यवहारनयसे जीवके लक्षण है ?

उत्तर-- ये कुज्ञान उपचरितासद्भूतव्यवहारसे जीवके लक्षण है। ये कुज्ञान मिथ्यात्व के उदयवश होते है, इसलिये उपचरित है, विकृत भाव है। अतः असद्भूत हैं और पर्यायें है, इस कारण व्यवहारनयके विषय हैं।

प्रश्न ६-- ये सामान्यसे जीवके लक्षण है, इसका क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—ये बारह प्रकारके उपयोग समूह रूपमे जीवके लक्षण कहे जा रहे है। अत. इसे व्यवहारनयसे कहनेपर भी ससारी या मुक्त जीवके लक्षण हैं, ऐसी विवक्षा नही है।

प्रश्न ७-- उपयोग बिना तो जीव रहता ही नही है, फिर ये उपयोग व्यवहारनयसे क्यो कहे ?

उत्तर—उपयोग अर्थग्रहणके व्यापारको कहते है। यह उपयोग चाहे शुद्ध भी हो तो भी एक समयमे जो जाननवृत्ति है वही दूसरे समयमे नही है। दूसरे समयमे दूसरी ही उस समयकी जाननवृत्ति है। इसी कारण उपयोग जीवका लक्षण व्यवहारसे ही है, क्योकि उपयोग त्रैकालिक स्वभाव नही है।

प्रश्न ८-- उपयोग कितनी प्रकृतिके होते है ?

उत्तर—उपयोग ३ प्रकारके होते है— (१) शुद्ध, (२) शुभ और (३) अशुभ।

प्रश्न ९—शुद्ध उपयोग कौन है ?

उत्तर-- केवलज्ञान और केवलदर्शन— ये दो शुद्ध उपयोग है।

प्रश्न १०-- शुभ उपयोग कौन है ?

उत्तर— मतिज्ञानादिक ४ ज्ञान और चक्षुर्दर्शनादिक ३ दर्शन, ये शुभ उपयोग है।

प्रश्न ११— अशुभ उपयोग कितने और कौन-कौन है ?

उत्तर— कुमतिज्ञान, कुश्रुतज्ञान और कुअवधिज्ञान-- ये तीन कुज्ञान अशुभ उपयोग है।

प्रश्न १२— शुद्धनय किसे कहते है ?

उत्तर—जो अभिप्राय अखण्ड निरपेक्ष त्रैकालिक शुद्धस्वभावको जाने उसे शुद्धनय कहते है।

प्रश्न १३—शुद्ध दर्शनका क्या तात्पर्य है ?

उत्तर— शुद्ध दर्शन सहज दर्शनगुण याने दर्शनसामान्य है, जो क्रमश. अनेक दर्शनोपयोग पर्यायरूप परिणम करके भी किसी दर्शनोपयोगरूप नही रहता।

प्रश्न १४—शुद्ध ज्ञानका क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—शुद्ध ज्ञान ज्ञानसामान्य अर्थात् सहज ज्ञानगुणको कहते है। यह शुद्ध ज्ञान क्रमशः अनेक ज्ञानोपयोगरूप परिणम करके भी किसी ज्ञानोपयोगरूप नही रहता।

प्रश्न १५-- यह शुद्ध ज्ञान, शुद्ध दर्शन शुद्धनयसे क्यो जीवका लक्षण है ?

उत्तर-- शुद्धनय पर्यायकी अपेक्षा न करके बनता है और यह शुद्ध दर्शन और ज्ञान ना पर्यायकी अपेक्षा न करके प्रतिभास होता है, अतः शुद्ध दर्शन व शुद्ध ज्ञान जीवके लक्षण शुद्धनयसे कहे गये हैं।

प्रश्न १६-- उक्त चार नयोसे कहे गये लक्षणोमे किस नयसे देखे गये जीवके लक्षण की दृष्टि उपादेय है ?

उत्तर-- उक्त चार प्रकारके लक्षणोमे से शुद्धनयसे ज्ञात हुये जीवके लक्षणकी दृष्टि उपादेय है।

प्रश्न १७-- शुद्धनयसे जीवके लक्षणकी दृष्टि क्यो उपादेय है ?

उत्तर - शुद्ध ज्ञान व दर्शन सहज शुद्ध, निर्विकार, अनाकुलस्वभाव, ध्रुवपारिणामिक है। यह उपादेयभूत शाश्वत सहजानन्दमय अक्षय सुखका उपादान कारण है। शुद्धकी दृष्टिसे शुद्ध पर्याय प्रकट होती है, निर्विकारकी दृष्टिसे निर्विकार पर्याय प्रकट होती है, ध्रुवकी दृष्टिसे ध्रुव पर्याय प्रकट होती है। अत सहज शुद्ध निर्विकार ध्रुव शुद्ध ज्ञान दर्शनकी दृष्टि उपादेय है।

प्रश्न १८-- शुद्ध ज्ञान व दर्शनकी दृष्टि भी तो एक पर्याय है, फिर यह दृष्टि क्यो उपादेय है ?

उत्तर—शुद्ध ज्ञान दर्शनकी दृष्टि भी पर्याय है, इसलिये इस दृष्टिकी दृष्टि नही करना चाहिये, किन्तु शुद्ध ज्ञानदर्शन परमपारिणामिक भाव है, अतः शुद्ध ज्ञानदर्शन अर्थात् शुद्ध चैतन्यका अवलम्बन करना चाहिये, यही "शुद्धज्ञान दर्शनकी दृष्टि उपादेय है" इसका तात्पर्य है।

इस प्रकार "जीव उपयोगमय है" इस अर्थके व्याख्यानका अधिकार समाप्त करके जीव अमूर्त है, इसका वर्णन करते है।

वण्णरस पच गधा दो फासा ग्रट्ठ णिच्चया जीवे ।
णो सति ग्रमुत्ति तदो ववहारा मुत्ति बधादो ।।७।।

ग्रन्वय– णिच्चया जीवे पच वण्ण रस दो गंधा ग्रट्ठ फासा णो सति तदो ग्रमुत्ति, ववहारा बंधादो मुत्ति ।

ग्रर्थ—निश्चयनयसे जीवमें पांच वर्ण, ५ रस, दो गध, ८ स्पर्श नही है, इसलिये जीव ग्रमूर्त है । व्यवहारनयसे कर्मबन्ध होने के कारण जीव मूर्तिक है ।

प्रश्न १-- वर्ण किसे कहते है ?

उत्तर– वर्ण्यते ग्रवलोक्यते चक्षुरिन्द्रियेन यः स. वर्ण । चक्षुरिन्द्रियके द्वारा जो देखा जाता है उसे वर्ण कहते है ।

प्रश्न २–वर्ण द्रव्य है कि गुण है या पर्याय ?

उत्तर—वर्ण द्रव्य नही है, वर्ण सामान्य गुण है । वर्ण गुणके परिणमन वर्ण पर्याय है ।

प्रश्न ३-- वर्णगुणके कितने परिणमन है ?

उत्तर– वर्णगुणकी पर्यायें ग्रसख्यात प्रकारकी है, किन्तु उन पर्यायोको सदृश जातियो मे सक्षिप्त करके देखा जावे तो पाँच पर्यायें है—(१) कृष्ण, (२) नील, (३) रक्त, (४) पीत ग्रौर (५) श्वेत ।

प्रश्न ४– ये पाचो पर्यायें एक साथ एक द्रव्यमे रह सकती है क्या ?

उत्तर-- एक द्रव्यमे एक वर्ण पर्याय ही रह सकती है । एक वर्णकी ही बात नही प्रत्येक द्रव्यमे जितने गुण होते है उनमे प्रत्येक गुणकी एक-एक पर्याय ही एक समयमे उस द्रव्यमे होती है ।

प्रश्न ५—रस किसे कहते है ?

उत्तर– रस्यते इति रस. । जो रसनाइन्द्रियके द्वारा स्वादा जाय उसे रस कहते है । यह रससामान्य तो गुण है ग्रौर रसपरिणमन पर्याय है ।

प्रश्न ६– रस गुणके कितने परिणमन है ?

उत्तर– सक्षेपमे रस गुणके परिणमन पाँच है-- (१) तिक्त, (२) कटु, (३) कषाय, (४) ग्रम्ल याने खट्टा ग्रौर (५) मधुर ग्रर्थात् मीठा ।

प्रश्न ७– गन्ध किसे कहते है ?

उत्तर—गन्ध्यते इति गन्धः । घ्राणेन्द्रियके द्वारा जो सूघा जाय सो गन्ध है । गन्ध-सामान्य तो गुण है ग्रौर गन्ध गुणके परिणमन पर्यायें है ।

प्रश्न ८-- गन्ध गुणके कितने परिणमन है ?

उत्तर—गन्ध गुणके परिणमन दो प्रकारके है—(१) सुगन्ध, (२) दुर्गन्ध ।

प्रश्न ९– स्पर्श किसे कहते है ?

उत्तर– 'स्पृश्यते इति स्पर्शः' इन्द्रियके द्वारा छुवा जाय उसे स्पर्श कहते है । स्पर्श सामान्य तो गुण है और स्पर्श गुणके परिणमन पर्यायें है ।

प्रश्न १०-- स्पर्शगुणकी कितनी पर्याये है ?

उत्तर—स्पर्श गुणकी ८ पर्याये है—(१) स्निग्ध, (२) रूक्ष, (३) शीत, (४) उष्ण, (५) गुरु, (६) लघु, (७) मृदु और (८) कठोर ।

प्रश्न ११– स्पर्श गुणकी पर्याय एक समयमे एक द्रव्यमे एक ही रहती है या अनेक ?

उत्तर—उक्त ८ पर्यायोमे से ४ पर्यायें तो आपेक्षिक है—(१) गुरु, (२) लघु, (३) मृदु और (४) कठोर । ये स्कध पर्यायोमे ही पाये जाते है इनका आधारभूत द्रव्यमे कोई गुण नही है, केवल स्पर्शनेन्द्रियके द्वारा ये समझमे आते है सो ये स्पर्शगुणकी पर्यायें उपचारसे कही जाती हैं । आदिकी चार पर्यायोमे गुण पर्यायपना है ।

प्रश्न १२-- स्निग्ध, रूक्ष, शीत, उष्ण क्या ये चारो पर्यायें एक द्रव्यमे एक साथ रहती है या क्रमसे ?

उत्तर—एक द्रव्यमे (१ परमाणुमे) इन चारमे से दो रहती है स्निग्ध रूक्षमे से एक व शीत उष्णमेसे एक ।

प्रश्न १३-- एक स्पर्शगुणकी २ पर्याये एक साथ कैसे रह सकती है ?

उत्तर—भेदविवक्षासे वास्तवमे एक परमाणु द्रव्यमे एतद्विषयक दो गुण है—एक गुणके परिणमन तो स्निग्ध, रूक्ष है और दूसरे गुणके परिणमन शीत, उष्ण है । परन्तु ये पर्यायें एक स्पर्शनइन्द्रियके द्वारा जानी जाती है । अत इन सबको एक स्पर्श गुणके परिणमन कहा जाता है ।

प्रश्न १४—उन दोनो स्पर्श गुणोके नाम क्या है ?

उत्तर– इन दोनो स्पर्श गुणोके नाम उपलब्ध नही है, फिर भी एक गुणकी एक ही पर्याय होती है । इस अकाट्य नियमके कारण दो गुण सिद्ध ही है । जैसे एक चैतन्य गुणके दो परिणमन है—(१) ज्ञानोपयोग, (२) दर्शनोपयोग । ये दोनो उपयोग एक साथ होते है, अत. दो गुण सिद्ध होते है । एक गुणका नाम है ज्ञान और दुसरे गुणका नाम है दर्शन । चेतनकार्य दोनोका होनेसे इन दोनो गुणोका एक अभेद नाम चैतन्य है । इसी प्रकार स्पर्श गुण का भी दो प्रकार परिणमन जानना ।

प्रश्न १५—ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग छद्मस्थोमे तो क्रमसे होता है, फिर ये दो गुणोके परिणमन कैसे हुए ?

उत्तर—छद्मस्थोमे यद्यपि इनका उपयोग एक साथ नही है तो भी ज्ञानगुण और

दर्शनगुण दोनोका परिणमन सदैव होता रहता है। हाँ छद्मस्थ उपयोग क्रमसे लगा पाता है।

प्रश्न १६—उक्त बीसो पर्यायें निश्चयसे आत्मामे क्यो नही है ?

उत्तर— इन बीसो पर्यायोका और उनके आधारभूत चारो गुणोका व्याप्यव्यापक भाव पुद्गल द्रव्यके साथ है, आत्माके साथ नही। इस कारण आत्मामे निश्चयसे ये वर्ण, रस, गध, स्पर्श नही है।

प्रश्न १७—वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श न होनेसे आत्मा अमूर्त क्यो है ?

उत्तर— वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्शका नाम मूर्त है। यह मूर्त जहाँ नही, वह अमूर्त है।

प्रश्न १८— यदि आत्मा अमूर्त है तो उसके कर्मबन्ध कैसे होता है ?

उत्तर—ससारी आत्मा व्यवहारनयसे मूर्त है, अत. इस मूर्त आत्माके कर्मबन्ध हो जाता है।

प्रश्न १९—ससारी आत्मा किस कारणसे मूर्त है ?

उत्तर— अनादि परम्परासे चले आये कर्मोके बन्धनके कारण आत्मा मूर्त है।

प्रश्न २०— यदि आत्मा व्यवहारनयसे मूर्त है तो कर्मबन्ध भी व्यवहारसे ही होगा, निश्चयसे नही होगा ?

उत्तर— ठीक है। कर्मबन्ध भी व्यवहारसे है, निश्चयसे नही है। निश्चयनय तो केवल एक द्रव्यको या एक शुद्ध स्वभावको देखना है।

प्रश्न २१— यदि कर्मबन्ध व्यवहारसे है तो उसका फल दु:ख भी व्यवहारमे होता होगा ?

उत्तर—यह भी ठीक है। आत्माके दु ख भी व्यवहारसे है। निश्चयनयसे तो आत्मा सुख दु:खके विकल्पसे रहित शुद्ध ज्ञायकभावरूप जाना जाता है।

प्रश्न २२—यदि दु ख भी व्यवहारसे है तो कर्मबन्धके दूर करनेका उद्यम क्यो करना चाहिये ?

उत्तर—जिसे व्यवहारका दु ख नही चाहिये उसे व्यवहारका कर्मबन्धन हटानेका उद्यम करना ही चाहिये। हाँ, जिसे व्यवहारका दु ख इष्ट हो वह व्यवहारका कर्मबन्ध न हटावे। ऐसे जीव तो ससारमे अब भी अनन्तानन्त है।

प्रश्न २३—किस व्यवहारनयसे आत्मा मूर्तिक है ?

उत्तर—अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनयसे आत्मा मूर्तिक है। ऐसी मूर्तिकता अनादि परम्परासे है अतः अनुपचरित है, मूर्तिकता स्वरूपमे नही है इसलिये असद्भूत है और इसमे कर्मसयोगकी अपेक्षा है इसलिये व्यवहार है।

प्रश्न २४—तब ससार अवस्थामे जीवको मूर्त ही माना जावे, अमूर्त नही मानना

चाहिये ।

उत्तर– ससार अवस्थामे यह जीव कथचित् मूर्त है और कथचित् अमूर्त है । बन्धके प्रति एकत्व होनेसे यह व्यवहारनयसे मूर्त है और अपने स्वरूपसे अमूर्त है । निश्चयसे आत्मा चैतन्यमात्र है, इसमे वर्ण, रस, गन्ध व स्पर्श नही है, इसलिये अमूर्त है ।

प्रश्न २५– आत्मा कथचित् मूर्त व अमूर्त है ऐसा जानकर हमे क्या करना चाहिये ?

उत्तर-- इस अमूर्तस्वरूप आत्माकी दृष्टि उपलब्धिके न होनेसे यह आत्मा मूर्त बनकर चतुर्गतिके दु खोको भोगता है । अत मूर्त विषयोका त्याग करके, पर्यायबुद्धिको छोडकर शुद्ध-चैतन्यस्वभावमात्र अमूर्त आत्माका ध्यान करना चाहिये ।

इस प्रकार "जीव अमूर्त है" इस अर्थके व्याख्यानका अधिकार समाप्त करके "जीव कर्ता है" इसका वर्णन करते है—

पुग्गलकम्मादीरण कत्ता ववहारदो दु रिणच्चयदो ।
चेदणकम्माणादा सुद्धणया सुद्धभावाणं ।।८।।

अन्वय—आदा ववहारदो पुग्गल कम्मादीरण कत्ता, दु रिणच्चयदो चेदणकम्माण कत्ता । सुद्धणया सुद्धभावाण कत्ता ।

अर्थ-- आत्मा व्यवहारनयसे पुद्गलकर्मादिका कर्ता है, परन्तु निश्चयनयसे चेतनकर्म का कर्ता है और शुद्धनयकी अपेक्षा शुद्ध भावोका कर्ता है ।

प्रश्न १—पुद्गलकर्म आदिमे आदि शब्दसे और किन-किनका ग्रहण करना चाहिये ?

उत्तर– आदि शब्दसे औदारिक, वैक्रियक, आहारक--इन तीन शरीरके योग्य नोकर्म और आहारादि ६ पर्याप्तियोके योग्य नोकर्म रूप पुद्गलका ग्रहण करना तथा घट, पट, मकान आदि बाह्य पदार्थोका ग्रहण करना ।

प्रश्न २—आत्मा पुद्गल कर्मका कर्ता किस व्यवहारनयसे है ?

उत्तर—आत्मा ज्ञानावरण आदि पुद्गल कर्मोका कर्ता अनुपचरित असद्भूत व्यवहार-नयसे है । ज्ञानावरणादि कर्मोका आत्माके साथ एकक्षेत्रावगाह सम्बन्ध है और जब तक सम्बध है तब तक जहाँ आत्माकी गति हो वही उनकी गति है आदि । आत्मा जब कषायभाव करता है तब ये कर्मरूप परिणमते ही है । इन कारणोसे यह कर्तृत्व अनुपचरित है । कर्म भिन्न पदार्थ है, अतः असद्भूत है । भिन्न पदार्थके प्रति कर्तृत्व देखा जा रहा है सो व्यवहार है ।

प्रश्न ३– शरीर और पर्याप्तिके योग्य पुद्गलोका कर्ता आत्मा किस नयसे है ?

उत्तर—शरीरादिका भी कर्ता आत्मा अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनयसे है । ये पुद्गल भी आत्माके एकक्षेत्रावगाहमे है और जब तक इनका आत्मासे सम्बन्ध है तब तक आत्माकी गति आदिके साथ इनकी गति आदि है, अतः अनुपचरित कर्तृत्व है, भिन्न पदार्थ है,

इसलिए असद्भूत कर्तृत्व है तथा भिन्न पदार्थोंका कर्तृत्व देखा जा रहा है, अतः व्यवहार है।

प्रश्न ४—घट-पट आदिका कर्ता आत्मा किस नयसे है ?

उत्तर—आत्मा घट-पट आदिका कर्ता उपचरित असद्भूत व्यवहारनयसे है। ये पदार्थ भिन्न क्षेत्रमे है और बाह्यसम्बंधसे भी पृथक् है। हाँ, आत्माकी चेष्टाके निमित्त और निमित्तके निमित्त, उपनिमित्तोका निमित्त पाकर घट-पट आदि निष्पन्न हो जाते है, इसलिये इन बाह्य पदार्थोंका कर्तृत्व उपचरित है। भिन्न पदार्थ है, सो इनका कर्तृत्व असद्भूत है। पृथक् द्रव्योमे कर्तृत्व बताया जा रहा है, इसलिये व्यवहार है।

प्रश्न ५—जब ये पदार्थ भिन्न है तब इनके प्रति ऐसा भी कर्तृत्व क्यो बन गया ?

उत्तर—आत्मा निज शुद्ध आत्मतत्त्वकी भावनासे रहित होकर ही इन बाह्य पदार्थों का कर्ता बन जाता है।

प्रश्न ६—पुद्गल कर्म क्या वस्तु है ?

उत्तर—जगत्मे अनन्तानन्त कार्माणवर्गणायें है और प्रत्येक ससारी जीवके साथ विस्रसोपचयके रूपमे अनन्त कार्माणवर्गणायें लगी हुई है। कार्माणवर्गणाका अर्थ है कर्मरूप बनने योग्य सूक्ष्म पुद्गल स्कध। ये ही कार्माणवर्गणायें कर्मरूप परिणत हो जाते है, जब जीव कषायभाव करता है।

प्रश्न ७—जीवका कर्मके साथ तो गहरा सम्बन्ध है, फिर जीवको कर्मका असद्भूत व्यवहारनयसे कर्ता क्यो कहा गया है ?

उत्तर—जीवका कर्ममे अत्यन्ताभाव है। तीन कालमे भी जीवका द्रव्य, प्रदेश, गुण और पर्याय कर्ममे नही जा सकता और कर्मके द्रव्य प्रदेश, गुण और पर्याय जीवमे नही जा सकते। हाँ, सहज निमित्तनैमित्तिक बात ही ऐसी हो जाती है कि जीव जब अपने कषाय-परिणमनसे परिणमता है तो कार्माणवर्गणायें कर्मरूप परिणम जाती है तो भी अत्यन्ताभावके कारण असद्भूतपना ही ठीक है।

प्रश्न ८—चेतन कर्मोंका जीव किस नयसे कर्ता है ?

उत्तर—जीव अशुद्धनिश्चयनयसे चेतनकर्मोका कर्ता है।

प्रश्न ९—चेतनकर्म तो जीवकी परिणति है, फिर उसका कर्ता जीव अशुद्धनयसे क्यो है ?

उत्तर—चेतनकर्मका तात्पर्य है पुद्गल कर्म उपाधिको निमित्त पाकर रागादि विभाव रूप परिणमने वाला जीवका विभावपरिणमन। (ये रागादिभाव जीवमे स्वयं अर्थात् स्वभाव के निमित्तसे नही होते, परद्रव्यके निमित्तसे होते है, अतएव ये क्षणिक और विपरीत भाव याने अशुद्ध भाव है, किन्तु है ये जीवकी ही पर्याय) इसी कारण जीव इन चेतनकर्मोका

अशुद्ध निश्चयनयसे कर्ता है।

प्रश्न १०– रागादि भाव जब आत्माके स्वभाव नही है तब जीव इन्हे करता क्यो है ?

उत्तर—आत्माका स्वभाव निष्क्रिय अभेद चैतन्य है। इस निजस्वभावकी दृष्टि, उपलब्धिसे रहित होकर यह जीव रागादि भावकर्मोका कर्ता होता है।

प्रश्न ११– जिन कर्मोके उदयको निमित्त पाकर यह भावकर्म हुआ वे द्रव्यकर्म कैसे बने ?

उत्तर—पूर्वके भावकर्मोको निमित्त पाकर द्रव्यकर्मकी रचना हुई।

प्रश्न १२—इस तरह तो इतरेतराश्रय दोष आ जावेगा, क्योकि जब द्रव्यकर्म हो तो भावकर्म बने और जब भावकर्म हो तो द्रव्यकर्म बने ?

उत्तर-- इसमे इतरेतराश्रय दोष नही आता, क्योकि पूर्वका भावकर्म पूर्वबद्ध द्रव्यकर्मके उदयसे होता है और वह द्रव्यकर्म भी पूर्वके भावकर्मके निमित्तसे बधता है। इस तरह भावकर्म और द्रव्यकर्ममे बीज वृक्षकी तरह या पितापरम्पराकी तरह अनादि परस्परा सम्बन्ध है।

प्रश्न १३– शुद्ध भावोका कर्ता जीव किस शुद्धनयसे है ?

उत्तर—शुद्धनिश्चयनयसे जीव शुद्ध भावोका कर्ता है।

प्रश्न १४—शुद्ध भावसे यहाँ क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—मलिनतासे रहित अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख और अनन्तवीर्य आदि शुद्ध भाव है।

प्रश्न १५—इन शुद्ध भावोका कर्ता कौन जीव है ?

उत्तर—शुद्ध भावोका कर्ता पूर्ण शुद्धनिश्चयनयसे तो मुक्त जीव याने अरहत और सिद्धप्रभु है। भावनारूप एकदेश शुद्धनिश्चयनयसे छद्मस्थावस्थामे अन्तरात्मा शुद्ध भावोका कर्ता है।

प्रश्न १६—शुद्ध भावोका कर्ता जीव शुद्ध निश्चयनयसे क्यो है ?

उत्तर—अनन्तज्ञानादि शुद्ध पर्यायें कर्म उपाधिके अभावमे होती हैं और स्वभावके अनुरूप है, अतः इनका कर्तृत्व शुद्ध है और जीवकी ही परिणति है, अतः निश्चयसे इनका कर्तृत्व है। इस प्रकार जीव अनन्तज्ञानादि शुद्ध भावोंका शुद्धनिश्चयनयसे कर्ता है।

प्रश्न १७-- परमशुद्धनिश्चयनयसे जीव किसका कर्ता है ?

उत्तर—परमशुद्धनिश्चयनयसे जीव अकर्ता है। इस नयके अभिप्रायमे निजमे भी कर्ताकर्म भेद नही है। समस्त भेद, विकल्प, पर्यायकी दृष्टिसे रहित अखण्ड विषय परमशुद्ध निश्चयनयका है।

प्रश्न १८—इस कर्तृत्वके प्रकरणसे हमे क्या शिक्षा लेनी चाहिये ?

उत्तर-- निरञ्जन, निष्क्रिय निज शुद्ध चैतन्यकी भावनाके अवलम्बनसे तो शुद्ध भावो का कर्ता बन जाता है. जिसका फल अनन्त सुख है और इस निज शुद्ध चैतन्यकी भावनासे रहित होकर रागादि विभावोका कर्ता होता है, जिसका फल घोर दु ख है। सर्व दु खोसे मुक्त होनेके लिये शुद्ध चैतन्यस्वभावका अवलम्बन लेना चाहिए।

इस प्रकार "जीव कर्ता है" इस अर्थके व्याख्यानका अधिकार समाप्त करके "जीव भोक्ता है" इसका वर्णन करते है—

ववहारा सुहदुक्ख पुग्गलकम्मफ्फल पभुँजेदि ।
आदा णिच्छयणयदो चेदणभाव खु आदस्स ॥९॥

अन्वय– आदा ववहारा सुहदुक्ख पुग्गलकम्मफ्फल पभुँजेदि, खु णिच्छयणयदो आदस्स चेदणभाव पभुँजेदि।

अर्थ– आत्मा व्यवहारनयसे सुख दु.खरूप पुद्गलकर्मके फलको भोगता है और निश्चयनयसे अपने-अपने चेतनभावको भोगता है।

प्रश्न १—व्यवहारके कितने भेद है ?

उत्तर– व्यवहारके ४ भेद है—(१) उपचरित असद्भूतव्यवहार, (२) अनुपचरित असद्भूतव्यवहार, (३) उपचरित अशुद्ध सद्भूतव्यवहार, (४) अनुपचरित शुद्ध सद्भूतव्यवहार। इनमे से उपचरित अशुद्ध सद्भूतव्यवहारका नाम तो अशुद्धनिश्चयनय है और अनुपचरित शुद्ध सद्भूतव्यवहारका नाम शुद्ध निश्चयनय है।

प्रश्न २– उपचरित असद्भूतव्यवहारनयसे जीव किसको भोगता है ?

उत्तर—उपचरित असद्भूतव्यवहारनयसे जीव इन्द्रियोके विषयभूत पदार्थोंसे उत्पन्न सुख दुःखको भोगता है अथवा विषयोको भोगता है। यहाँ "पदार्थोंसे उत्पन्न" इस अर्थकी मुख्यता है। विषयभूत पदार्थ बाह्य है और एकक्षेत्रावगाही भी नही, अत. इनका भोक्तृत्व उपचरित है पदार्थ अथवा विषयज सुख आत्मस्वभावसे विपरीत है, अतः असद्भूत है और पर्याय है, इसलिये व्यवहार है।

प्रश्न ३—अनुपचरित असद्भूतव्यवहारनयसे जीव किसका भोक्ता है ?

उत्तर—अनुपचरित असद्भूतव्यवहारनयसे जीव सुख दु खरूप पुद्गल कर्मोंके फल को भोगता है। पुद्गल कर्म एकक्षेत्रावगाही है, अतः उनके फलका भोक्तृत्व अनुपचरित है। कर्म और कर्मफल आत्मस्वभावसे विपरीत है, अत असद्भूत है, पर्याय है, अतः व्यवहार है।

प्रश्न ४– निश्चयनयके कितने भेद है ?

उत्तर—निश्चयनयके २ भेद हैं– (१) अशुद्धनिश्चयनय, (२) शुद्धनिश्चयनय,

(३) परमशुद्धनिश्चयनय। इनमे अशुद्धनिश्चयनयका प्रतिपादन उपचरित अशुद्ध सद्भूतव्यवहार है और शुद्धनिश्चयनयका प्रतिपादन अनुपचरित शुद्ध सद्भूतव्यवहार है।

प्रश्न ५– अशुद्धनिश्चयनयमे जीव किसका भोक्ता है ?

उत्तर– अशुद्धनिश्चयनयसे जीव अशुद्ध चेतनभाव अर्थात् हर्ष-विषादादि परिणामका भोक्ता है। हर्ष-विषादादि विभाव है, अत अशुद्ध है, किन्तु है जीवके ही परिणमन, अतः निश्चयनयसे है, पर्यायें है, अतः व्यवहार है। इस प्रकार जीव हर्षविषादादि अशुद्ध चेतनभाव का अशुद्धनिश्चयनयसे भोक्ता है।

प्रश्न ६– शुद्धनिश्चयनयसे जीव किसका भोक्ता है ?

उत्तर—शुद्धनिश्चयनयसे जीव अनन्त सुख आदि निर्मल भावोका भोक्ता है। अनन्त सुख आदि जीवके स्वाभाविक शुद्ध भाव है, अत इनका भोक्तृत्व शुद्धनिश्चयनयसे है।

प्रश्न ७– परमशुद्धनिश्चयनयसे जीव किसका भोक्ता है ?

उत्तर—परमशुद्धनिश्चयनयसे जीव अभोक्ता है, क्योकि परमशुद्धनिश्चयनयकी दृष्टिसे भोक्ता भोग्य आदि कोई विकल्प भेद नही है। यह नय तो केवल, शुद्ध, निरपेक्ष स्वभावको विषय करता है।

प्रश्न ८—इस भोक्तृत्वके विवरणसे हमे क्या शिक्षा लेनी चाहिये ?

उत्तर– व्यवहारनयसे जो भोक्तृत्व बताया है वह तो असद्भूत ही है, इसलिये वस्तुस्वरूप जानकर यह प्रतीति हटा देनी चाहिये कि मैं विषयोसे अथवा कर्मोसे सुख या दु खको भोगता हू।

प्रश्न ९– तब मै यह सुख दु ख किसमे पाता हू ?

उत्तर– सुख दुःख मैं अपने गुणोके परिणमनसे पाता हू। कर्मोदय तो बाह्य निमित्तमात्र है और विषय केवल आश्रयमात्र है।

प्रश्न १०—यह सुख दुःख क्यो उत्पन्न हो जाता है ?

उत्तर—निज शुद्ध चैतन्यस्वभावका श्रद्धान, ज्ञान एव अनुचरण न होनेसे उपयोग अनात्माकी ओर जाता है और तब बाह्य पदार्थोका आश्रय बनानेसे सुख दु खका उसमे वेदन होने लगता है।

प्रश्न ११– इस सुख दु खका भोक्तृत्व कैसे मिटे ?

उत्तर—स्वाभाविक आनन्दका भोक्तृत्व होते ही सूक्ष्म भी सुख दुःखका भोक्तृत्व मिट जाता है।

प्रश्न १२—जीव स्वाभाविक आनन्दका भोक्ता कैसे होता है ?

उत्तर—नित्य निरञ्जन अविकार चैतन्य परम स्वभावकी भावनासे स्वाभाविक

आनन्दरूप निर्मल पर्यायकी उत्पत्ति होती है।

प्रश्न १३—यह आनन्द आत्माके किस गुणकी पर्याय है?

उत्तर—आनन्द आत्माके आनन्द गुणकी पर्याय है।

प्रश्न १४—सुख, दु ख किस गुणकी पर्यायें है?

उत्तर– सुख, दुःख भी आनन्द गुणकी पर्यायें है। आनन्द गुणकी तीन पर्यायें है—(१) आनन्द, (२) सुख और (३) दु ख। आनन्द तो स्वाभाविक परिणमन है और सुख एव दु.ख विकृत परिणमन है।

प्रश्न १५– अनन्त सुख तो स्वाभाविक परिणमन माना गया है, फिर सुखको विकृत परिणमन कैसे कहा?

उत्तर– सुखका अर्थ है—ख–इन्द्रियोको, सु–सुहावना लगना। सो यह अशुद्ध परिणमन ही है, क्योकि आत्मा तो इन्द्रियोसे रहित है। दुःखका भी अर्थ है, ख--इन्द्रियोको, दुः--बुरा लगना। जैसे दु.ख विकृत परिणमन है वैसे सुख भी विकृत परिणमन है। परन्तु सुखसे परिचित प्राणियोपर दया करके आनन्दके स्थानमे सुख शब्द रखकर अनन्त सुख शब्दसे आचार्योंने प्रतिपादन किया है। जिससे ये प्राणी "अनन्त समृद्धि मुक्तावस्थामे है" यह समझ जावे।

प्रश्न १६—आनन्द शब्दका क्या अर्थ है?

उत्तर—"आ समन्तात् नन्दन आनन्दः।" सर्व प्रकार सर्वप्रदेशोमे सत्य समृद्धि होना आनन्द है। आत्माकी सत्य समृद्धि सुख दुःखसे रहित परमनिराकुलताके अनुभवमे है। एतदर्थ आनन्दके स्रोतरूप चैतन्यस्वभावकी निरन्तर भावना करना चाहिये।

इस प्रकार "जीव भोक्ता है" इस अर्थके व्याख्यानका अधिकार समाप्त करके "जीव स्वदेहपरिमाण है" इसका वर्णन करते है—

अणुगुरुदेहपमाणो उवसहारप्पसप्पदो चेदा।
असमुहदो ववहारा णिच्चयणयदो असखदेसो वा ॥१०॥

अन्वय– चेदा ववहारा असमुहदो उवसहारप्पसप्पदो अणुगुरुदेहपमाणो, वा णिच्चयणयदो असखदेसो।

अर्थ– आत्मा व्यवहारनयसे समुद्घातके सिवाय अन्य सब समय सकोच और विस्तार के कारण अपने छोटे-बडे शरीरके प्रमाण है और निश्चयनयमे असख्यात प्रदेशोका धारक है।

प्रश्न १– समुद्घातमे यह जीव शरीरके प्रमाण क्यो नही रहता?

उत्तर– जिन कारणोंसे अथवा जिन प्रयोजनोके लिये समुद्घात होता है उनकी सिद्धि शरीरसे भी बाहर आत्मप्रदेशोके रहनेमे है।

प्रश्न २– समुद्घात किसे कहते है ?

उत्तर—अपने मूल शरीरको न छोडकर और तैजसशरीर और कार्माणशरीरके प्रदेशो सहित आत्माके प्रदेशोका शरीरसे बाहर निकलना समुद्घात है।

प्रश्न ३—समुद्घातके कितने प्रकार है ?

उत्तर—समुद्घातके ७ प्रकार है—(१) वेदनासमुद्घात, (२) कषायसमुद्घात, (३) विक्रियासमुद्घात, (४) मारणान्तिकसमुद्घात, (५) तैजससमुद्घात, (६) आहारकसमुद्घात और (७) केवलिसमुद्घात।

प्रश्न ४– वेदनासमुद्घात किसे कहते है ?

उत्तर– तीव्र वेदनाके कारण मूल शरीरको न छोडकर आत्मप्रदेशोका बाहर फैल जाना वेदनासमुद्घात है।

प्रश्न ५—इस समुद्घातसे क्या कोई लाभ भी होता है ?

उत्तर—वेदनासमुद्घातमे जो आत्मप्रदेश तैजसकार्माणशरीर सहित बाहर फैलते हैं यदि उनसे किसी औषधिका स्पर्श हो जाय तो वेदना शान्त हो सकती है। औषधिका स्पर्श ही हो, ऐसा नियम नही है। वेदनासमुद्घात तो तीव्रवेदनाके कारण हो जाता है।

प्रश्न ६—वेदनासमुद्घातमे आत्मप्रदेश कितनी दूर तक फैल जाते है ?

उत्तर– देहप्रमाणसे तिगुने प्रमाण बाहर प्रदेश जाते है। वेदनासमुद्घातसे प्रायः प्राणी शरीरसे निरोग हो जाया करते हैं।

प्रश्न ७—कषायसमुद्घात किसे कहते है ?

उत्तर—तीव्र कषायका उदय हो जानेसे परके घातके लिये मूलशरीरको न छोडकर आत्मप्रदेशोका बाहर निकल जाना कषायसमुद्घात हैं।

प्रश्न ८—कषायसमुद्घातसे क्या परका घात हो जाता है ?

उत्तर—इसका नियम नही है।

प्रश्न ९—कषायसमुद्घातमे आत्मप्रदेश कितनी दूर तक फैल जाते है ?

उत्तर– देहप्रमाणसे तिगुने प्रमाण बाहर प्रदेश जाते है।

प्रश्न १०—विक्रियासमुद्घात किसे कहते है ?

उत्तर—शरीर या शरीरका अग बढानेके लिये अथवा अन्य शरीर बनानेके लिये आत्मप्रदेशोका मूल शरीर न छोडकर बाहर निकल जाना विक्रियासमुद्घात है।

प्रश्न ११– विक्रियासमुद्घात किनके होता है ?

उत्तर—विक्रियासमुद्घात देव व नारकियोके तो होता ही है, किन्तु विक्रियाऋद्धिधारी मुनीश्वरोके भी विक्रियासमुद्घात हो जाता है।

प्रश्न १२—अन्य शरीर बनानेपर आत्मा अनेक क्यो नही हो जाते ?

उत्तर— अन्य शरीर बनानेपर भी मूलशरीर व अन्य शरीर तथा इसके अन्तरालमे उसी एक आत्माके प्रदेश फैले हुए होते है, अतः आत्मा एक ही है। हा, आत्मप्रदेशोका विस्तार वहां तक निरन्तर है।

प्रश्न १३— मूलशरीर और उत्तरशरीरमे क्रियाये तो अलग-अलग होती है, इसलिये क्या उपयोग अनेक मानने पडेंगे ?

उत्तर—नही, एक ही उपयोगसे त्वरितगति होनेके कारण दोनो शरीरमे क्रियायें होती रहती है।

प्रश्न १४—विक्रियासमुद्घातमे आत्मप्रदेश कहाँ तक फैल जाते है ?

उत्तर— जिसका जितना विक्रियाक्षेत्र है और उसमे भी जितनी दूर तक विक्रिया की जा रही है उतनी दूर तक आत्मप्रदेश फैल जाते है।

प्रश्न १५— मारणान्तिक समुद्घात किसे कहते है ?

उत्तर— मरण समयमे मूलशरीरको न छोडकर जहाँ कही भी आयु बाधी हो वहाँके क्षेत्रका स्पर्श करनेके लिये आत्मप्रदेशोका बाहर निकल जाना मारणान्तिक समुद्घात है। मारणान्तिक समुद्धात एक दिशाको प्राप्त होता है।

प्रश्न १६— मारणान्तिक समुद्घातमे बाहर प्रदेश निकलनेके बाद पुन. मूलशरीरमे आते है अथवा नही ?

उत्तर—मारणान्तिक समुद्घातमे जन्मक्षेत्रको स्पर्शकर आत्मप्रदेश अवश्य मूलशरीर मे आते है। पश्चात् सर्वप्रदेशोसे आत्मा निकलकर जन्मक्षेत्रमे पहुचकर नवीन शरीर अपना लेता है।

प्रश्न १७— मारणान्तिकसमुद्घात क्या सभी मरने वाले जीवोके होता है या किसी किसीके ?

उत्तर—मारणान्तिकसमुद्घात उन्ही जीवोके हो सकता है जिन्होने अगले भवकी पहलेसे आयु बाध ली है और जिनके एतद्विषयक विलक्षण आतुरता होती है। इस समुद्धात की अपेक्षा त्रस जीव भी त्रसनालीसे बाहर पाये जा सकते है।

प्रश्न १८— तैजससमुद्घात किसे कहते है ?

उत्तर— सयमी महामुनिके विशिष्ट दया उत्पन्न होने पर अथवा तीव्र क्रोध उत्पन्न होनेपर उनके दायें अथवा बायें कन्धेसे तैजसशरीरका एक पुतला निकलता है। उसके साथ आत्मप्रदेशोका बाहर निकलना तैजससमुद्घात है।

प्रश्न १९—तैजससमुद्घात कितने तरहका होता है ?

उत्तर—तैजससमुद्घात दो तरहका होता है—(१) शुभ तैजससमुद्घात, (२) अशुभ

तैजससमुद्घात।

प्रश्न २०– शुभ तैजससमुद्घात कब और किसलिये निकलता है ?

उत्तर– जब लोकको व्याधि, दुर्भिक्ष आदिसे पीडित देखकर तैजस ऋद्धिधारी सयमी महामुनिके कृपा उत्पन्न होती है तब मुनिके दाहिने कन्धेसे पुरुषाकार तेजस्वरूप एक पुतला निकलता है। वह व्याधि और दुर्भिक्ष आदि उपद्रवको नष्ट करके फिर मूलशरीरमे प्रवेश कर जाता है। इसे शुभ तैजसशरीर कहते है।

प्रश्न २१– शुभ तैजसशरीरका स्वरूप कैसा है ?

उत्तर– शुभ तैजसशरीर श्वेतरूपका सौम्य आकार वाला पुरुषाकार १२ योजन तक का विस्तार वाला तेजोमय होता है।

प्रश्न २२—अशुभ तैजससमुद्घात कब और किसलिये निकलता है ?

उत्तर—जब मनको अनिष्टकारी किसी कारण व उपद्रवको देखकर तैजस ऋद्धिधारी महामुनिके क्रोध उत्पन्न होता है, तब सोची हुई विरुद्ध वस्तुको भस्म करनेके लिये मुनिके बायें कधेसे तैजसशरीरमय पुतला निकलता है। वह विरुद्ध वस्तुको भस्म करके और फिर उस ही संयमी मुनिको भस्म करके नष्ट हो जाता है। इसे अशुभतैजसशरीर कहते है।

प्रश्न २३—अशुभतैजसशरीरका स्वरूप कैसा है ?

उत्तर– अशुभतैजसशरीर सिन्दूरकी तरह लाल रगका, बिलावके आकार वाला, १२ योजन लम्बा, मूलमे सूच्यगुलके सख्यातभागप्रमाण चौडा और अन्तमे ९ योजन चौडा तेजोमय होता है।

प्रश्न २४– आहारकसमुद्घात किसे कहते है ?

उत्तर– किसी तत्त्वमे सदेह होनेपर सदेहकी निवृत्तिके अर्थ आहारकऋद्धिधारी महामुनिके मस्तकसे एक हाथका पुरुषाकार श्वेत रंगका केवलज्ञानी प्रभुके दर्शनके लिये आहारक शरीर निकलता है, उसके साथ आत्मप्रदेशोका बाहर निकलना आहारकसमुद्घात है। यह आहारकशरीर सर्वज्ञदेवके दर्शन कर मूलशरीरमें प्रविष्ट हो जाता है। सर्वज्ञ प्रभुके दर्शनसे तत्त्वसन्देह दूर हो जाता है। यह समुद्घात एक ही दिशाको प्राप्त होता है।

प्रश्न २५– केवलिसमुद्घात किसे कहते है ?

उत्तर—आयुकर्मकी स्थिति अत्यल्प रहनेपर और शेष ३ अघातिया कर्मोकी स्थिति अधिक होनेपर सयोगकेवली भगवानके आत्मप्रदेशोका दण्ड, कपाट, प्रतर, लोकपूरणके प्रकार से बाहर निकलना होता है बह केवलिसमुद्घात है।

प्रश्न २६– केवलिसमुद्घात क्या सभी सयोगकेवली भगवानके होता है या किसी-किसीके ?

उत्तर— जिन मुनिराजोके ६ माह आयु शेष रहनेपर केवलज्ञान उत्पन्न होता है उन सयोगकेवलियोके केवलिसमुद्घात होता है। इसके अतिरिक्त कुछ आचार्योंके अन्य भी मत है। निष्कर्ष यह समझिये कि कुछ बिरलोको छोड सभी सयोगकेवलियोके समुद्घात होता है।

प्रश्न २७— केवलिसमुद्घातमे दण्डसमुद्घात किस तरह होता है ?

उत्तर— सयोगकेवली यदि आसीन हो तो आसन प्रमाण याने देहके त्रिगुण विस्तार प्रमाण और यदि खड्गासनसे स्थित हो तो देह विस्तार प्रमाण चौडे आत्मप्रदेश निकलते है और ऊपरसे नीचे तक वातवलयोके प्रमाणसे कम १४ राजू लम्बे फैल जाते है।

प्रश्न २८—कपाटसमुद्घात किस तरह होता है ?

उत्तर—दण्डसमुद्घातके अनन्तर अगल बगल चौडे हो जाते है। यदि भगवान पूर्वाभिमुख हो तो ऊपर, मध्यमे, नीचे सर्वत्र वातवलयप्रमाणसे कम ७-७ राजू प्रमाण आत्मप्रदेश फैल जाते है और यदि भगवान उत्तराभिमुख हो तो वातवलय प्रमाणसे हीन ऊपर तो एक राजू, ब्रह्मक्षेत्रमे ५ राजू, मध्यमे १ राजू व नीचे ७ राजू प्रमाण चौडे हो जाते है।

प्रश्न २९— प्रतरसमुद्घात किस प्रकार होता है ?

उत्तर— इस समुद्घातमे सामने व पीछे जितना लोकक्षेत्र बचा है उसमे वातवलय प्रमाणसे हीन सर्वलोकमे फैल जाते है।

प्रश्न ३०— लोकपूरण समुद्घातमे क्या होता है ?

उत्तर— इसमे आत्मप्रदेश वातवलयके क्षेत्रमे भी फैलकर पूरे लोकप्रमाण प्रदेश हो जाते है।

प्रश्न ३१— लोकपूरण समुद्घातके बाद प्रवेश-विधि किस प्रकारसे है ?

उत्तर—लोकपूरण समुद्घातके बाद लौटकर प्रतरसमुद्घात होता है, फिर कपाट समुद्घात, फिर दण्डसमुद्घात, इसके बाद मूलशरीरमे प्रवेश हो जाता है।

प्रश्न ३२—समुद्घातोमे समय कितना लगता है ?

उत्तर— केवलिसमुद्घातमे तो ८ समय लगता है और शेषके ६ समुद्घातोमे अन्तर्मुहूर्त समय लगता है।

प्रश्न ३३— केवलिसमुद्घातमे ८ समय कैसे लगता है ?

उत्तर— दण्डमे १, कपाटमे १, प्रतरमे १, लोकपूरणमे १, फिर लौटते समय प्रतरमे १, कपाटमे १, दण्डमे १, फिर प्रवेशमे १, इस प्रकार आठ समय लगता है।

प्रश्न ३४— केवलिसमुद्घातसे क्या फल होता है ?

उत्तर— केवलिसमुद्घात होनेसे शेष ३ अघातिया कर्मोकी स्थिति घटकर आयुस्थिति-

प्रमाण स्थिति रह जाती है।

प्रश्न ३५– केवलिसमुद्घात होनेका कारण क्या है ?

उत्तर– केवलिसमुद्घात स्वय होता है, इसमे निमित्त कारण अघातिया कर्मोंकी स्थिति पूर्वोक्त प्रकारसे विषम शेष रह जाना है।

प्रश्न ३६– समुद्घातके सिवाय अन्य समयोमे आत्मा किस प्रमाण है ?

उत्तर—समुद्घातके सिवाय अन्य समयोमे आत्मा व्यवहारनयसे अपने-अपने छोटे या बडे देह प्रमाण है।

प्रश्न ३७– आत्मा देहप्रमाण ही क्यो है ?

उत्तर—आत्मा अनादिसे निरन्तर देह धारण करता चला आया है उनमे यदि बडे देहसे छोटे देहमे आता है तो सकोच स्वभावके कारण उस छोटे देहके प्राण हो जाता है और यदि छोटे देहसे बडे देहमे आता है तो विस्तार स्वभावके कारण उस बडे देह प्रमाण हो जाता है।

प्रश्न ३८– देहसे सर्वथा मुक्त होनेपर आत्मा कितने प्रमाण रहता है ?

उत्तर– जिस देहसे मुक्त हुआ उस देह प्रमाण यह मुक्त आत्मा मुक्ति अवस्थामे रहता है।

प्रश्न ३९– मुक्त होनेपर आत्मा ज्ञानकी तरह प्रदेशोसे भी सर्वलोकमें क्यो नही फैल जाता ?

उत्तर– देहसे मुक्त होनेके बाद सकोच विस्तारका कोई कारण न होने से आत्मा जिस प्रमाण था उस ही प्रमाण रह जाता है। ज्ञान भी सर्वलोकमे नही फैलता, किन्तु ज्ञान आत्मप्रदेशोमे ही रहकर समस्त लोक अलोकके आकार ज्ञानरूपसे परिणम जाता है।

प्रश्न ४०– किस व्यवहारनयसे आत्मा देह प्रमाण है ?

उत्तर– अनुपचरित असद्भूतव्यवहारनयसे आत्मा देह प्रमाण है। यहा देह और आत्माका एकक्षेत्रावगाह हैं इसलिये अनुपचरित है। देहका निज क्षेत्र देहमें है, आत्माका निज क्षेत्र आत्मामे है, इस प्रकार आत्मा व देहका परस्पर अत्यन्ताभाव होनेसे असद्भूत है। यह आकार पर्याय है, इसलिये व्यवहार है।

प्रश्न ४१– निश्चयनयसे आत्मा किस प्रमाण है ?

उत्तर– निश्चयनयसे आत्मा अपने असख्यात प्रदेश प्रमाण है। यह प्रमाणता सर्वत्र सर्वदा इतनी ही रहती है।

प्रश्न ४२– शरीरकी अवगाहना कमसे कम कितनी हो सकती है ?

उत्तर– कमसे कम शरीरकी अवगाहना उत्सेधागुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण होती

है। उत्सेधांगुल प्रायः आजकल अंगुल प्रमाण होता है। इतना ही शरीर लब्ध्यपर्याप्तक सूक्ष्म-निगोदियाका होता है।

प्रश्न ४३-- शरीरकी अवगाहना बडीसे बडी कितनी हो सकती है ?

उत्तर-- शरीरकी उत्कृष्ट अवगाहना एक हजार योजन प्रमाण हो सकती है। इतना शरीर स्वयंभूरमण समुद्रमे महामत्स्यका होता है।

प्रश्न ४४-- मध्यम अवगाहना कितने प्रकारकी है ?

उत्तर—जघन्य अवगाहनासे ऊपर और उत्कृष्ट अवगाहनासे नीचे असख्यात प्रकार की मध्यम अवगाहना होती है।

प्रश्न ४५—यह आत्मा देहमे ही क्यो बसता चला आया है ?

उत्तर—देहमे ममत्व होनेके कारण देहोमे बसता चला आया है। आयु स्थितिके क्षयके कारण किसी एक देहमे चिरस्थायी नही रह सकता है तथापि देहात्मबुद्धि होनेके कारण त्वरित अन्य देहको धारण कर लेता है। जन्म मरणके दुख और देहके सम्बन्धसे होने वाले क्षुधा, तृषा, इष्टवियोग, अनिष्टसयोग, वेदना आदिके दुःख इस देहात्मबुद्धिके कारण ही भोगने पड़ते है।

प्रश्न ४६—देहसे मुक्त होनेके क्या उपाय है ?

उत्तर—देहसे ममत्व हटावे, देहमे आत्मबुद्धि न करना देहसे मुक्त होनेका मूल उपाय है।

प्रश्न ४७-- देहात्मबुद्धि दूर करनेके लिये क्या पुरुषार्थ करना चाहिये ?

उत्तर– मै अशरीर, अमूर्त, अकर्ता, अभोक्ता, शुद्ध चैतन्यमात्र हू----इस प्रकार अपना अनुभव करे। इस परम पारिणामिक भावमय निज शुद्ध आत्माके अवलम्बनसे जीव पहिले मोहभावसे मुक्त होता है, पश्चात् कषायोसे मुक्त होता है, इनके साथ ही मोहनीय कर्मका क्षय हो जाता है। तदनन्तर ज्ञानावरण, दर्शनावरण व अन्तरायका क्षय एव अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन व अनन्तशक्तिका आविर्भाव हो जाता है। तत्पश्चात् शेष अघातिया कर्मोसे व देहसे सर्वथा मुक्त हो जाता है। इस सबका एक मात्र उपाय अनादि अनन्त अहेतुक चैतन्य-मात्र निज कारणपरमात्माका अवलम्बन है।

इस प्रकार "आत्मा स्वदेह प्रमाण है", इस अर्थके व्याख्यानका अधिकार समाप्त करके "जीव ससारस्थ है" इसका वर्णन करते है---

पुढविजलतेयवाऊ वणप्फदी विविहथावरेइंदी।
विगतिगचदुपचक्खा तस जीवा होति सखादी ॥११॥

अन्वय-- पुढविजलतेयवाऊ वणप्फदी विविहए इदा थावरे होती सखादि विगतिगचदु-

पचक्खा तस जीवा होंति ।

अर्थ-- पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और बनस्पतिकायरूप नाना एकेन्द्रिय जीव स्थावर जीव है और शख, पिपीलिका आदि द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय जीव त्रस जीव है ।

प्रश्न १—पृथ्वीकाय किसे कहते है ?

उत्तर– जिनका पृथ्वी ही शरीर हो उन्हे पृथ्वीकाय कहते है । जो जीव मरकर पृथ्वीशरीर धारण करनेके लिये मोडे वाली विग्रहगति जा रहा हो, वह उस विग्रहगति वाला जीव भी पृथ्वीकाय है । इसका शुद्ध नाम पृथ्वी जीव है ।

प्रश्न २—पृथ्वीकायकी कितनी जातियाँ है ?

उत्तर-- पृथ्वीकायकी ३६ जातिया है—(१) मृत्तिका, (२) बालुका, (३) शर्करा, (४) उपल, (५) शिला, (६) लवरा, (७) लोह, (८) ताम्र, (९) रागा, (१०) शीशा, (११) सुवर्ण, (१२) चाँदी, (१३) वज्र, (१४) हडताल, (१५) हिंगुल, (१६) मेनसिल, (१७) तूतिया, (१८) अजन, (१९) प्रवाल, (२०) भुडभुड, (२१) अभ्रक, (२२) गोमेद, (२३) रुचक, (२४) अङ्क, (२५) स्फटिक, (२६) लोहित प्रभ, (२७) वैडूर्य, (२८) चन्द्रकान्त, (२९) जलकान्त, (३०) सूर्यकान्त, (३१) गैरिक, (३२) चन्दनमणि, (३३) पन्ना (३४) पुखराज, (३५) नीलम, (३६) मसारगल्लन ।

प्रश्न ३– पृथ्वीकाय जीवके देहकी कितनी अवगाहना है ?

उत्तर—घनागुलके असख्यातवे भाग प्रमाण पृथ्वीकाय जीवके देहकी अवगाहना है ।

प्रश्न ४—जलकाय किन्हे कहते है ?

उत्तर—जिनका जल ही शरीर हो उन्हे जलकाय कहते है । जो जीव जलकायमे उत्पन्न होनेके लिये मोडे वाली विग्रहगतिसे जा रहा है उसे भी जलकाय कहते है । इसका शुद्ध नाम जलजीव है ।

प्रश्न ५-- जलकायकी कितनी जातिया है ?

उत्तर—जलकायकी अनेक जातियाँ है, जैसे– ओस, तुषार, कुहर, बिन्दु, शीकर, शुद्धजल, चन्द्रकान्त जल, घनोदक, ओला आदि ।

प्रश्न ६—जलकाय जीवके देहकी कितनी अवगाहना है ?

उत्तर—घनागुलके असंख्यातवे भाग प्रमाण जलकाय जीवकी अवगाहना होती है ।

प्रश्न ७—अग्निकाय किन्हे कहते है ?

उत्तर-- जिनका अग्नि ही शरीर हो उन्हे अग्निकाय कहते हैं । जो जीव अग्निकायमे उत्पन्न होनेके लिये मोड़े वाली विग्रहगतिसे जा रहा है उसे भी अग्निकाय कहते है । इसका

शुद्ध नाम अग्निकाय है।

प्रश्न ८—अग्निकायकी कितनी जातियाँ है ?

उत्तर— अग्निकायकी अनेक जातियाँ है, जैसे—ज्वाला, अङ्गार, किरण, मुर्मुर, शुद्ध अग्नि (वज्र, बिजली आदि), बडवानल, नन्दीश्वरधूमकुण्ड, मुकुटानल आदि।

प्रश्न ९-- अग्निकायिक जीवकी कितनी अवगाहना है ?

उत्तर— घनागुलके असख्यातवें भागप्रमाण अग्निकायिक जीवोकी अवगाहना है।

प्रश्न १०— वायुकाय जीव किन्हे कहते है ?

उत्तर— जिनका वायु ही शरीर है उन्हे वायुकाय जीव कहते है। जो जीव वायुकाय मे उत्पन्न होनेके लिये मोडे वाली विग्रहगतिसे जा रहा है उसे भी वायुकाय जीव कहते है। इसका शुद्ध नाम वायुकाय जीव है।

प्रश्न ११-- वायुकाय जीव कितने प्रकारके होते है ?

उत्तर— वायुकाय जीव अनेक प्रकारके होते है—जैसे वात, उद्गम, उत्कलि, मण्डलि, महान्, घन, गुञ्जा, वातवलय आदि।

प्रश्न १२—वायुकायिक जीवोकी कितनी अवगाहना है ?

उत्तर—घनागुलके असख्यातवें भाग प्रमाण वायुकायिक जीवोकी अवगाहना है।

प्रश्न १३—वनस्पतिकाय जीव किन्हे कहते है ?

उत्तर—जिनका वनस्पति ही शरीर है उन्हे वनस्पतिकाय जीव कहते है। जो जीव वनस्पतिकायमे उत्पन्न होनेके लिये मोडे वाली विग्रहगतिसे जा रहा है उसे भी वनस्पतिकाय कहते है। इस जीवका शुद्ध नाम वनस्पतिकाय जीव है।

प्रश्न १४— वनस्पतिकाय जीव कितने प्रकारके होते है ?

उत्तर—वनस्पतिकाय जीव दो प्रकारके होते है—(१) प्रत्येकवनस्पति, (२) साधारणवनस्पति।

प्रश्न १५—प्रत्येकवनस्पतिकाय जीव किन्हे कहते है ?

उत्तर—जिन वनस्पतिकाय जीवोका शरीर प्रत्येक है अर्थात् एक शरीरका स्वामी एक ही जीव है उन्हे प्रत्येकवनस्पतिकाय जीव कहते है।

प्रश्न १६— साधारणवनस्पतिकायिक जीव किन्हे कहते है ?

उत्तर— जिन वनस्पतिकाय जीवोका शरीर साधारण है अर्थात् एक शरीरके स्वामी अनेक जीव है उन्हे साधारणवनस्पतिकाय कहते है।

प्रश्न १७—प्रत्येकवनस्पतिकाय जीवके कितने भेद है ?

उत्तर—प्रत्येक वनस्पतिकायके दो भेद हैं— (१) सप्रतिष्ठित प्रत्येकवनस्पति,

(२) अप्रतिष्ठित प्रत्येकवनस्पति ।

प्रश्न १८– सप्रतिष्ठित प्रत्येकवनस्पति किन्हे कहते है ?

उत्तर-- जो प्रत्येकवनस्पति साधारणवनस्पतिकाय जीवोकरि प्रतिष्ठित हो याने सहित हो उन्हे सप्रतिष्ठित प्रत्येकवनस्पति कहते है ।

प्रश्न १९--सप्रतिष्ठित प्रत्येकवनस्पतिकायोकी पहिचान क्या है ?

उत्तर-- जिनकी शिरा, सन्धि, पर्व अप्रकट हो, जैसे—जरुवाककडी, जरुवातुरई, थोडे दिनका गन्ना आदि ।

जिनका भङ्ग करने पर समान भङ्ग हो, जैसे—घनन्तरके पत्ते, पालकके पत्ते आदि ।

छेदन करने पर भी जो उग आवें, जैसे आलू आदि ।

जिस वनस्पतिका कन्द, मूल क्षुद्र शाखा या स्कन्धकी छाल मोटी हो, जैसे—ग्वार-पाठा, मूली, गाजर आदि ।

प्रश्न २०– सप्रतिष्ठित प्रत्येकवनस्पति भक्ष्य है अथवा अभक्ष्य ?

उत्तर– सप्रतिष्ठित प्रत्येकवनस्पतिमे अनन्त साधारणवनस्पति जीव रहते है, अत सप्रतिष्ठित प्रत्येकवनस्पतिमें अभक्ष्य है ।

प्रश्न २१– साधारणवनस्पतिके कितने भेद है ?

उत्तर-- साधारण वनस्पतिके २ भेद है– (१) वादर साधारणवनस्पतिकाय (वादर निगोद), (२) सूक्ष्म साधारणवनस्पतिकाय (सूक्ष्म निगोद) । इन दोनोके भी २–२ भेद है । (१) नित्यनिगोद, (२) इतरनिगोद ।

प्रश्न २२-- नित्यनिगोद किन्हे कहते है ?

उत्तर—जिन जीवोने निगोदके अतिरिक्त अन्य कोई पर्याय आज तक नही पाई उन्हे नित्यनिगोद कहते है । ये जीव २ तरहके है-- (१) अनादि अनन्त नित्यनिगोद, (२) अनादि सान्त नित्यनिगोद ।

प्रश्न २३– अनादि अनन्त नित्यनिगोद किन्हे कहते है ?

उत्तर-- जिन्होने निगोदके अतिरिक्त अन्य कोई पर्याय न आज तक पाई और न कभी पावेंगे उन्हें अनादि अनन्त नित्यनिगोद कहते है ?

प्रश्न–२४ अनादिसान्त नित्यनिगोद किन्हे कहते है ?

उत्तर-- अनादिसान्त नित्यनिगोद उन्हे कहते है, जिन्होने निगोदके अतिरिक्त अन्य कोई पर्याय आज तक नही पाई, किन्तु आगे अन्य पर्याय पा लेंगे याने निगोदसे निकल जावेंगे उन्हे अनादि सान्त नित्यनिगोद कहते हैं ।

प्रश्न २५– इतरनिगोद किन्हे कहते है ?

उत्तर– जो जीव निगोदसे निकलकर अन्य स्थावरकायोमे या त्रस जीवोमे उत्पन्न हो गये थे, किन्तु पुन. निगोदमे आ गये है उन्हे इतरनिगोद कहते है ।

प्रश्न २६–वादर और सूक्ष्म भेद क्या अन्य स्थावरकार्योमे भी होता है ?

उत्तर—प्रत्येकवनस्पतिमे तो वादर सूक्ष्म भेद नही होता, क्योकि वे वादर ही होते है । पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय व वनस्पतिकाय– इन चारोके वादर और सूक्ष्म भेद होते है ।

प्रश्न २७-- प्रत्येकवनस्पतिकाय जीवोकी कितनी अवगाहना होती है ?

उत्तर—अगुलके सख्यातवे भागसे १००० योजन तककी अवगाहना होती है । १००० योजनकी अवगाहना स्वयभूरमणसमुद्रमे कमलकी है ।

प्रश्न २८—साधारणवनस्पतिकाय जीवोकी कितनी अवगाहना होती है ?

उत्तर-- अगुलके असख्यातवे भाग प्रमाण साधारणवनस्पतिकाय अर्थात् निगोद जीवो की अवगाहना होती है ।

प्रश्न २९—स्थावर जीव किन्हे कहते है ?

उत्तर—जिन जीवोके एक स्पर्शनइन्द्रिय ही होती है और अङ्गोपाङ्ग नही होते, उन्हे स्थावर जीव कहते है । उक्त सभी पाँचो कायके जीव स्थावर है ।

प्रश्न ३०—त्रस जीव किन्हे कहते है ?

उत्तर—जिन जीवोके स्पर्शन रसना, ये दो, स्पर्शन, रसना, घ्राण ये तीन, स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु ये चार अथवा स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र ये पाच इन्द्रिया हो उन्हे त्रस जीव कहते है । इसी कारण त्रस जीव चार प्रकारके है—(१) द्वीन्द्रिय, (२) त्रीन्द्रिय, (३) चतुरिन्द्रिय और (४) पञ्चेन्द्रिय ।

प्रश्न ३१—द्वीन्द्रिय जीव किन्हे कहते है ?

उत्तर—स्पर्शनेन्द्रियावरण व रसनेन्द्रियावरण कर्मके क्षयोपशमसे एव वीर्यान्तराय कर्मके क्षयोपशमसे व अगोपाग नामकर्मके उदयसे जिनका दो इन्द्रिय वाले कार्योमे जन्म होता है उन्हे द्वीन्द्रिय कहते है-- जैसे शख, लट, केंचुवा, जोक, सीप, कौडी आदि ।

प्रश्न ३२—द्वीन्द्रिय जीवोकी देहकी कितनी अवगाहना है ?

उत्तर—अगुलके असख्यातवें भागसे लेकर १२ योजन तककी अवगाहना होती है । १२ योजनकी अवगाहना वाला शख अन्तिम स्वयभूरमण समुद्रमे होता है ।

प्रश्न ३३– त्रीन्द्रिय जीव किन्हे कहते है ?

उत्तर—स्पर्शनेन्द्रियावरण, रसनेन्द्रियावरण, घ्राणेन्द्रियावरणके क्षयोपशमसे तथा वीर्यान्तरायके क्षयोपशमसे एव अगोपाग नामकर्मके उदयसे तीन इन्द्रिय वाले कायमे जिनका

जन्म होता है वे त्रीन्द्रिय जीव कहलाते है। जैसे चीटी, खटमल, बिच्छू, जूँ आदि।

प्रश्न ३४-- त्रीन्द्रिय जीवोकी कितनी अवगाहना है ?

उत्तर-- त्रीन्द्रिय जीवोकी अवगाहना घनांगुलके असख्यातवें भागसे ३ कोश प्रमाण तक होती है। तीन कोशकी अवगाहना वाला बिच्छू अन्तिम स्वयंभूरमण द्वीपमे पाया जाता है।

प्रश्न ३५-- चतुरिन्द्रिय जीव किन्हे कहते है ?

उत्तर-- स्पर्शनेन्द्रियावरण, रसनेन्द्रियावरण और चक्षुरिन्द्रियावरणके क्षयोपशमसे तथा वीर्यान्तरायके क्षयोपशमसे एव अङ्गोपाङ्ग नामकर्मके उदयसे जिन जीवोका चार इन्द्रिय वाले कायसे जन्म होता है उन्हे चतुरिन्द्रिय कहते है। जैसे--ततईया, मक्खी, मच्छर, भौंरा टिड्डी, तितली आदि।

प्रश्न ३६-- चतुरिन्द्रिय जीवोकी कितनी अवगाहना होती है।

उत्तर-- चतुरिन्द्रिय जीवोकी अवगाहना घनांगुलके असंख्यातवें भागसे लेकर १ योजन तककी होती है। १ योजनकी अवगाहना वाला भ्रमर अन्तिम (स्वयंभूरमणनामक) द्वीपमे पाया जाता है।

प्रश्न ३७--पञ्चेन्द्रिय जीवके कितने भेद है ?

उत्तर-- पचेन्द्रिय जीव २ प्रकारके है--- (१) असज्ञीपञ्चेन्द्रिय, (२) संज्ञी। असज्ञी पञ्चेन्द्रिय तो केवल तिर्यग्गतिमे ही होते है, किन्तु सज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव चारो गतियोमे होते है। नरकगति, मनुष्यगति और देवगतिमें ये सज्ञी पचेन्द्रिय जीव ही होते है।

प्रश्न ३८--असज्ञी किन्हे कहते है ?

उत्तर-- जिनके मन न हो उन्हे असज्ञी कहते है। मन आलम्बनसे ही हित अहितका विचार और हेयोपादेयके त्याग और ग्रहणकी प्रवृत्ति होती है। (एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जीव भी मात्र असज्ञी होते है)।

प्रश्न ३९--सज्ञी जीव किन्हे कहते है ?

उत्तर--जिनके मन हो जो शिक्षा, उपदेश ग्रहण कर सकें। (संज्ञी जीव ही सम्यक्त्व उत्पन्न कर सकता है)।

प्रश्न ४०--पञ्चेन्द्रिय जीव किन्हे कहते है ?

उत्तर-- स्पर्शनेन्द्रियावरण, रसनेन्द्रियावरण, घ्राणेन्द्रियावरण, चक्षुरिन्द्रियावरण और श्रोत्रेन्द्रियावरणके क्षयोपशमसे एव वीर्यान्तरायके क्षयोपशमसे तथा अङ्गोपाङ्गनामा नामकर्मके उदयसे पाँच इन्द्रिय वाले कायमे जिन जीवोका जन्म होता है उन्हे पञ्चेन्द्रिय जीव कहते है। इनमे जिन जीवोके नोइन्द्रियावरणका भी क्षयोपशम होता है उन्हे संज्ञी पञ्चेन्द्रिय कहते है और जिनके नोइन्द्रियावरणका क्षयोपशम नही होता है उन्हे असज्ञीपचे-

न्द्रिय कहते हैं।

प्रश्न ४१– पचेन्द्रिय जीवोकी कितनी अवगाहना है ?

उत्तर—घनागुलके असख्यातवें भागसे १००० योजन तक। १००० योजन लम्बा और ५०० योजन चौडा व २५० योजन मोटा देहवाला महामत्स्य स्वयभूरमण नामक अन्तिम समुद्रमे पाया जाता है।

प्रश्न ४२—क्या सभी जीव त्रस और स्थावरोमें ही पाये जाते है ?

उत्तर--मुक्त जीव न त्रस हैं और न स्थावर। वे त्रस और स्थावरकी समस्त योनियों से मुक्त हो गये है।

प्रश्न ४३– त्रस स्थावर जीवोमे जन्म क्यो होता है ?

उत्तर–इन्द्रिय सुखमे आसक्त होनेसे और इसी कारण त्रस स्थावर जीवोंकी हिंसा होनेसे इन जीवोमे जन्म होता है।

प्रश्न ४४-- इन्द्रिय सुखकी आसक्ति क्यो होती है ?

उत्तर-- शुद्धचैतन्यमात्र निजपरमात्मतत्वकी भावनासे उत्पन्न होने वाले परम अतीन्द्रिय सुखका जिन्हे स्वाद नही है उनके इन्द्रिय सुखोमे आसक्ति होती है। अत' जिनके संसारजन्म से निवृत्त होनेकी वाञ्छा हो उन्हे अनादि अनन्त अहेतुक निज चैतन्यस्वरूप कारणपरमात्मा की भावना करनी चाहिये।

अब त्रस, स्थावर जीवोका ही १४ जीवसमासोके द्वारा और विवरण करते है।

समणा अमणा णेया पचेदिय णिम्मणा परे सव्वे।
वादर सुहमे इन्दी सव्वे पज्जत्त इदरा य ॥१२॥

अन्वय—पचेदिय समणा अमणा णेया, परे सव्वे णिम्मणा, एइन्दी बादर सुहमे, सव्वे पज्जत्त य इदरा।

अर्थ-- पचेन्द्रिय जीव समनस्क (सज्ञी) और अमनस्क (असज्ञी) के भेदसे दो प्रकारके है। बाकी और जीव याने द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय व चतुरिन्द्रिय जीव असज्ञी है। एकेन्द्रिय जीव भी असज्ञी हैं और बादरसूक्ष्मके भेदसे दो प्रकारके है। ये सब सातों प्रकारके जीव याने बादरएकेन्द्रिय, सूक्ष्मएकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असज्ञी पञ्चेन्द्रिय और संज्ञी-पचेन्द्रिय ये सब पर्याप्त है और अपर्याप्त है। इस प्रकार ये १४ जीवसमास है।

प्रश्न १– पर्याप्त किसे कहते है ?

उत्तर– जिनके पर्याप्तिनामकर्मका उदय है उन्हे पर्याप्त कहते है।

प्रश्न २– पर्याप्तिनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर-- जिस नामकर्मके उदयसे जीव अपने-अपने योग्य ६, ५ या ४ पर्याप्तियोंको

पूर्ण करे उसे पर्याप्तिनामकर्म कहते है।

प्रश्न ३-- अपर्याप्त किसे कहते है ?

उत्तर-- जिनके अपर्याप्तिनामकर्मका उदय है उन्हें अपर्याप्त कहते है।

प्रश्न ४-- अपर्याप्तिनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर-- जिस नामकर्मके उदयसे जीव अपने-अपने योग्य पर्याप्तियोको पूर्ण न कर सके और मरण हो जाय उसे अपर्याप्तिनामकर्म कहते है।

प्रश्न ५-- पर्याप्त, अपर्याप्तकी इस व्याख्यासे तो जिनके पर्याप्तिनामकर्मका उदय है वे पूर्वभवके मरणके बाद विग्रहगतिमें और जन्मके पहिले अन्तर्मुहूर्तमे भी अपर्याप्त न न कहलावेगे ?

उत्तर-- जिनके पर्याप्तिनामकर्मका उदय है वे जीव विग्रहगतिमें व जन्मके पहिले अन्तर्मुहूर्तमे निर्वृत्यपर्याप्त कहलाते है।

प्रश्न ६-- निर्वृत्यपर्याप्ति किन्हे कहते है ?

उत्तर-- जिन जीवोके अपने-अपने योग्य पर्याप्तियां पूर्ण तो अवश्य होनी है और पूर्ण होनेसे पहिले उनका मरण भी नही होना, किन्तु जब तक उनकी शरीरपर्याप्ति पूर्ण नही होती तब तक वे निर्वृत्यपर्याप्त कहलाते है।

प्रश्न ७-- अपर्याप्त शब्दसे यहा किन अपर्याप्तोका ग्रहण करना चाहिये ?

उत्तर-- यहाँ जिनके अपर्याप्तिनामकर्मका उदय है वे अपर्याप्त, जिनका दूसरा नाम लब्धपर्याप्त है और निर्वृत्यपर्याप्त दोनो अपर्याप्तोका ग्रहण करना चाहिये।

प्रश्न ८-- पर्याप्ति कितनी होती है ?

उत्तर--पर्याप्ति ६ होती है-- (१) आहारपर्याप्ति, (२) शरीरपर्याप्ति, (३) इन्द्रिय पर्याप्ति, (४) श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति, (५) भाषापर्याप्ति, (६) मनःपर्याप्ति।

प्रश्न ९-- आहारपर्याप्ति किसे कहते है ?

उत्तर-- एक शरीरको छोडकर नवीन शरीरके साधनभूत जिन नोकर्मवर्गणावोको जीव ग्रहण करता है उनको खल व रस भागरूप परिणमावनेकी शक्तिके पूर्ण हो जानेको आहारपर्याप्ति कहते है।

प्रश्न १०-- शरीरपर्याप्ति किसे कहते है ?

उत्तर-- गृहीत नोकर्मवर्गणावोके स्कन्धमे से खल भागको हड्डी आदि कठोर अवयव रूप तथा रसभागको खून आदि द्रव अवयवरूप परिणमावनेकी शक्तिकी पूर्णताको शरीर-पर्याप्ति कहते है।

प्रश्न ११--इन्द्रियपर्याप्ति किसे कहते है ?

उत्तर– गृहीतनोकर्मवर्गणाओके स्कन्धमेसे कुछ वर्गणाओको योग्य स्थान पर द्रव्येन्द्रियोके आकार परिणमावनेकी शक्तिकी पूर्णताको इन्द्रियपर्याप्ति कहते है ?

प्रश्न १२– श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति किसे कहते है ?

उत्तर– उन नोकर्मवर्गणावोके कुछ स्कन्धोको श्वासोच्छ्वासरूप परिणमावनेकी शक्तिकी पूर्णताको श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति कहते है।

प्रश्न १३—भाषापर्याप्ति किसे कहते है ?

उत्तर—वचनरूप होने योग्य भाषावर्गणाओको वचनरूप परिणमावनेकी शक्तिकी पूर्णताको भाषापर्याप्ति कहते है।

प्रश्न १४–मन पर्याप्ति किसे कहते है ?

उत्तर—द्रव्यमनरूप होने योग्य मनोवर्गणावोको द्रव्यमनके आकार रूप परिणमावने की शक्तिकी पूर्णताको मन पर्याप्ति कहते है।

प्रश्न १५—सज्ञी जीवोके कितनी पर्याप्तिया होती है ?

उत्तर– सज्ञी जीवोके छहो पर्याप्तियाँ होती है।

प्रश्न १६– असज्ञी पचेन्द्रिय जीवके कितनी पर्याप्तियाँ होती है ?

उत्तर—असज्ञी पचेन्द्रिय जीवके मनःपर्याप्तिको छोडकर शेषकी पाँच पर्याप्तिया होती है।

प्रश्न १७–चतुरिन्द्रिय जीवके कितनी पर्याप्तिया होती है ?

उत्तर—चतुरिन्द्रिय जीवके आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास व भाषा पर्याप्ति ये ५ पर्याप्तिया होती है।

प्रश्न १८—त्रीन्द्रिय जीवके कितनी पर्याप्तिया होती है ?

उत्तर—त्रीन्द्रिय जीवके भी मन पर्याप्तिको छोडकर बाकी पाँचो पर्याप्तियाँ होती है।

प्रश्न १९—द्वीन्द्रिय जीवके कितनी पर्याप्तिया होती है ?

उत्तर– द्वीन्द्रिय जीवके भी मनःपर्याप्तिके बिना शेष पाँचो पर्याप्तियाँ होती है।

प्रश्न २०—एकेन्द्रिय जीवोके कितनी पर्याप्तिया होती है ?

उत्तर—बादर और सूक्ष्म दोनो प्रकारके एकेन्द्रियजीवोके आहारपर्याप्ति, शरीरपर्याप्ति, इन्द्रियपर्याप्ति और श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति ये ४ पर्याप्तिया होती है।

प्रश्न २१—चौदह जीवसमासोके पूरे-पूरे नाम क्या है ?

उत्तर– चौदह जीव समासोके नाम इस प्रकार हैं– (१) बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, (२) बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, (३) सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त, (४) सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त, (५) द्वीन्द्रिय पर्याप्त, (६) द्वीन्द्रिय अपर्याप्त, (७) त्रीन्द्रिय पर्याप्त, (८) त्रीन्द्रिय अपर्याप्त,

(९) चतुरिन्द्रिय पर्याप्त, (१०) चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त, (११) असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त, (१२) असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त, (१३) सज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त, (१४) सज्ञी पचेन्द्रिय अपर्याप्त ।

प्रश्न २२—इन १४ प्रकारके जीवसमासोमे से कौनसा भेद उपादेय है ?

उत्तर– इनमेसे एक भी प्रकार उपादेय नही है, क्योकि ये सब विकृत पर्यायें है और इनका आकुलतावोसे जन्म है, आकुलतावोकी जनक है ।

प्रश्न २३– तब कौनसी अवस्था उपादेय है ?

उत्तर– अतीत जीवसमासकी अवस्था उपादेय है, क्योकि वहां आत्मा सम्पूर्ण गुण स्वाभाविक पर्यायपरिणत हो जाते है, अतः वह अवस्था सहज अनन्तआनन्दमय है ।

प्रश्न २४—अतीत जीवसमास होनेका उपाय क्या है ?

उत्तर– जीवसमाससे पृथक् अनादि अनत निज चैतन्यस्वभावकी उपासना अतीत जीवसमास होनेका बीज है ।

इस प्रकार ससारी जीवोका जीवसमास द्वारा विवरण करके अब इस गाथामे मार्गणा व गुणस्थानोका वर्णन करके नयविभागसे शुद्धता व अशुद्धताका विभाग बताते है—

मग्गण गुणठाणेहि चउदसहि हवंति तह असुद्धणया ।
विण्णेया संसारी सव्वे सुद्धा दु सुद्धणया ॥१३॥

अन्वय– तह संसारी असुद्धणया मग्गणगुणठाणेहि चउदसहि हवंति । दु सुद्धणया सव्वे सुद्धा विण्णेया ।

अर्थ– तथा ससारी जीव अशुद्धनयसे १४ मार्गणा व १४ गुणस्थानोके द्वारा १४-१४ प्रकारके होते है, किन्तु शुद्धनयसे सभी जीव शुद्ध जानना चाहिये ।

प्रश्न १– गुणस्थान किसे कहते है ?

उत्तर--मोह और योगके निमित्तसे सम्यक्त्व और चारित्र गुणोकी जो अवस्थायें होती है उन्हे गुणस्थान कहते है ।

प्रश्न २—गुणस्थान कितने होते है ?

उत्तर—गुणस्थान तो असंख्याते होते हैं, क्योकि आत्मगुणोके परिणमन असंख्याते प्रकारके है, किन्तु उन्हे प्रयोजनानुसार सक्षिप्त करके १४ प्रकारका कहा है । वे ये हैं— (१) मिथ्यात्व, (२) सासादन सम्यक्त्व, (३) सम्यग्मिथ्यात्व, (४) अविरतसम्यक्त्व, (५) देशविरत, (६) प्रमत्तविरत, (७) अप्रमत्तविरत, (८) अपूर्वकरण, (९) अनिवृत्तिकरण (१०) सूक्ष्मसाम्पराय, (११) उपशान्तकषाय, (१२) क्षीणकषाय, (१३) सयोगकेवली, (१४) अयोगकेवली ।

प्रश्न ३—मिथ्यात्व किसे कहते है ?

उत्तर-- मोक्षमार्गके प्रयोजनभूत ७ तत्त्वोके यथार्थ श्रद्धान नही होने को मिथ्यात्व कहते है ।

प्रश्न ४– सासादनसम्यक्त्व किसे कहते है ?

उत्तर—अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभमे से किसी एक कषायका उदय होने से प्रथमोपशम सम्यक्त्वसे तो गिर जाना और मिथ्यात्वका उदय न आ पानेसे मिथ्यात्व न होना इस अन्तरालवर्ती अयथार्थ भावको सासादनसम्यक्त्व कहते है ।

प्रश्न ५—सम्यग्मिथ्यात्व किसे कहते है ?

उत्तर—जहाँ मिले हुए दही गुडके स्वादकी तरह मिश्र परिणाम हो जिन्हे न तो केवल सम्यक्त्वरूप कह सकते है और न मिथ्यात्वरूप ही कह सकते है, किन्तु जो सम्यग्मिथ्यात्व रूप हो उन परिणामोको सम्यग्मिथ्यात्व कहते है ।

प्रश्न ६—अविरतसम्यक्त्व किसे कहते हैं ?

उत्तर-- जहां सम्यक्त्व तो प्रकट हो गया, किन्तु एकदेश अथवा सर्वदेश किसी भी प्रकारका सयम प्रकट न हुआ हो उसे अविरतसम्यक्त्व कहते है ।

प्रश्न ७—देशविरत किसे कहते है ?

उत्तर–जहां सम्यग्दर्शन भी प्रकट है और एकदेशसयम याने सयमासयम भी हो गया है उस परिणामको देशविरत गुणस्थान कहते है ।

प्रश्न ८—प्रमत्तविरत गुणस्थान किसे कहते है ?

उत्तर—जहाँ सर्वदेशसयम भी प्रकट हो गया, किन्तु सज्वलनकषायका उदय मद न होनेसे प्रमाद हो उसे भावप्रमत्तविरत गुणस्थान कहते है ।

प्रश्न ९—प्रमादका तात्पर्य क्या आलस्य है या अन्य ?

उत्तर– उपदेश, विहार, आहार, दीक्षा, शिक्षा आदि शुभोपयोगका राग उठना आदि प्रमादका तात्पर्य है ।

प्रश्न १०—अप्रमत्तविरत गुणस्थान किसे कहते है ?

उत्तर—जहाँ संज्वलनकषायका उदय मद हो जानेसे प्रमाद नही रहा उस परिणाम को अप्रमत्तविरत गुणस्थान कहते है ।

प्रश्न ११– अप्रमत्तविरतके कितने भेद है ?

उत्तर– अप्रमत्तविरतके २ भेद है—(१) स्वस्थान अप्रमत्तविरत, (२) सातिशय अप्रमत्तविरत ।

प्रश्न १२-- स्वस्थान अप्रमत्तविरत किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस अप्रमत्तविरत परिणामके बाद ऊँचे स्थानका परिणाम नही होता, किन्तु छठे गुणस्थानका भाव होता है उसे स्वस्थान अप्रमत्तविरत कहते है। इसका नाम स्वस्थान इसलिये है कि अपने स्थान तक रहता है, आगे नही बढ़ता। छठे व सातवें गुणस्थानका काल छोटा अन्तर्मुहूर्तमात्र है। मुनियोके परिणाम जब तक श्रेणी नही चढ़ते याने आगे नही बढते छठेसे सातवेमे सातवेंसे छठेमे, इस प्रकार असख्यात बार आते-जाते रहते है।

प्रश्न १३– सातिशय अप्रमत्तविरत किसे कहते है ?

उत्तर—जिस अप्रमत्तविरत परिणामके बाद आठवें गुणस्थानमे पहुचते है उस अप्रमत्तविरतको सातिशय अप्रमत्तविरत कहते है।

प्रश्न १४-- सातिशय अप्रमत्तविरत ऊपरके गुणस्थानमें क्यो पहुच जाता है ?

उत्तर—सातिशय अप्रमत्तविरतमे इस जातिका अधःकरण परिणाम होता है, जिस निर्मल परिणामके कारण वह ऊपरके परिणाममे पहुचा देता है।

प्रश्न १५—अधःकरण परिणाम किसे कहते हैं ?

उत्तर—जहाँ ऐसा परिणाम हो कि अधःकरणके कालमे विवक्षित कालवर्ती मुनियों के परिणामके सदृश अधस्तनकालवर्ती मुनियोके परिणाम भी मिल जायें उसे अधःकरण परिणाम कहते है।

अनन्तानुबधीका विसयोजन, दर्शनमोहनीयका उपशम, दर्शनमोहनीयका क्षय, चारित्रमोहनीयका उपशम, चारित्र मोहनीयका क्षय आदि उच्च स्थानोकी प्राप्तिके लिये एक प्रकारके निर्मल परिणाम ३ तरहके पाये जाते है—(१) अधःकरण, (२) अपूर्वकरण और (३) अनिवृत्तिकरण।

यहा चारित्रमोहनीयको उपशम या क्षयके लिये उद्यम प्रारम्भ होता है, उसके लिये होने वाले निर्मल परिणामोमे से यह पहला भाग है।

प्रश्न १६– सातिशय अप्रमत्तविरतके अनन्तर किस गुणस्थानमे पहुचना होता है ?

उत्तर– यदि चारित्रमोहनीयके उपशमके लिये अधःकरण परिणाम हुआ है तो उपशमक अपूर्वकरणमे पहुंचता है और यदि चारित्रमोहनीयके क्षयके लिये अधःकरण परिणाम हुआ है तो क्षपक अपूर्वकरणमे पहुंचता है।

प्रश्न १७—अपूर्वकरण गुणस्थान किसे कहते है ?

उत्तर—जहां चारित्रमोहनीयके उपशम या क्षयके लिये उत्तरोत्तर अपूर्व परिणाम हो उसे अपूर्वकरण गुणस्थान कहते है। इसका अपूर्वकरण इसलिये नाम है कि इसके कालमे समानसमयवर्ती मुनियोंके परिणाम सदृश भी हो जायें, किन्तु उस विवक्षित समयसे भिन्न (पूर्व या उत्तर) समयवर्ती मुनियोके परिणाम विसदृश ही होगे।

प्रश्न १८-- यह गुणस्थान कितने प्रकारका है ?

उत्तर– अपूर्वकरण गुणस्थान दो प्रकारका है– (१) उपशमक अपूर्वकरण और (२) क्षपक अपूर्वकरण ।

इस गुणस्थानसे दो श्रेणियाँ हो जाती है—(१) उपशमश्रेणी और (२) क्षपकश्रेणी । जिस मुनिने चारित्रमोहनीयके उपशमके लिये अधःकरण परिणाम किया था वह उपशमश्रेणी ही चढता है, सो वह उपशमक-अपूर्वकरण होता है और जिस मुनिने चारित्रमोहनीयके क्षयके लिये अध.करण परिणाम किया था वह क्षपकश्रेणी ही चढता है, सो वह क्षपक-अपूर्वकरण होता है ।

प्रश्न १९– उपशमश्रेणीमे कौन कौन गुणस्थान होते है ?

उत्तर– उपशमश्रेणीमे ८वा, ९वा, १०वा, ११वा ये चार गुणस्थान होते है इसके बाद तो चारित्रमोहनीयके उपशमका काल समाप्त होनेके कारण नियमसे नीचे गुणस्थानमे आना पडता है ।

प्रश्न २०—क्षपकश्रेणीमे कौन-कौन गुणस्थान होते हैं ?

उत्तर-- क्षपकश्रेणीमे ८ वा, ९वा, १०वा, १२वा, १३वा, १४वा ये ६ गुणस्थान होते है । इसके अनन्तर नियमसे मोक्ष प्राप्त होता है । क्षपकश्रेणी वाला नीचे कभी नही गिरता ।

प्रश्न २१—इस अपूर्वकरण गुणस्थानमे क्या विशेष कार्य होने लगते है ?

उत्तर– इस गुणस्थानमे— (१) प्रतिसमय अनन्तगुणी विशुद्धि होने लगती है, (२) कर्मोंकी स्थितिका घात होने लगता है, (३) नवीन स्थितिबन्ध कम हो जाते है, (४) कर्मों का बहुतसा अनुभाग नष्ट हो जाता है, (५) कर्मवर्गणावोकी असख्यातगुणी निर्जरा होने लगती है, (६) अनेक अशुभप्रकृतिया शुभमे बदल जाती हैं ।

प्रश्न २२—अनिवृत्तिकरण किसे कहते है ?

उत्तर—जहा विवक्षित एक समयवर्ती मुनियोके समान ही परिणाम हो और पूर्वोत्तरसमयवर्ती मुनियोके परिणाम विसदृश ही हो उसे अनिवृत्तिकरण कहते हे । इस अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमे चारित्रमोहनीयकी २० प्रकृतियोका ८ बारमे उपशम या क्षय हो जाता है । उपशमक अनिवृत्तिकरणके तो उपशम होता है और क्षपक अनिवृत्तिकरणके क्षय होता है ।

प्रश्न २३– चारित्रमोहनोयके उपशम या क्षयका क्रम क्या है ?

उत्तर—अनिवृत्तिकरण गुणस्थानके ९ भाग है, जिसमे–

(१) पहिले भागमे तो चारित्रमोहनोयकी किसी प्रकृतिका उपशम या क्षय नही होता, वहा नामकर्मादिकी १६ प्रकृतियोका उपशम या क्षय होता है ।

(२) दूसरे भागमे अप्रत्याख्यानावरण ४ व प्रत्याख्यानावरण ४, इन ८ प्रकृतियोका उपशम या क्षय होता है ।

(३) तीसरे भागमे नपुसकवेदका उपशम या क्षय होता है ।

(४) चौथे भागमे स्त्रीवेदका उपशम या क्षय होता है ।

(५) पाँचवे भागमें हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा----इन ६ नोकषायोका उपशम या क्षय होता है ।

(६) छठे भागमे पुरुषवेदका उपशम या क्षय हो जाता है ।

(७) सातवें भागमे सज्वलन क्रोधका उपशम या क्षय हो जाता है ।

(८) आठवें भागमे संज्वलन मानका उपशम या क्षय हो जाता है ।

(९) नवें भागमे सज्वलन मायाका उपशम या क्षय हो जाता है ।

इस प्रकार आठ बारमे २० चारित्रमोहनीय प्रकृतियोका उपशमक अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमे उपशम होता है और क्षपक अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमे क्षय हो जाता है ।

प्रश्न २४—सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान किसे कहते है ?

उत्तर-- जहा केवल संज्वलन सूक्ष्म लोभके उदयके कारण सूक्ष्म लोभ रह जाता है, उसके भी दूर करनेके लिये सूक्ष्मसाम्पराय सयम होता है, उसे सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थान कहते है । इस गुणस्थानके अन्तमे संज्वलन सूक्ष्मलोभका उपशमक सूक्ष्मसाम्परायके उपशम हो जाता है किन्तु क्षपक सूक्ष्मसाम्परायके क्षय हो जाता है ।

प्रश्न २५—उपशान्तकषाय गुणस्थान किसे कहते है ?

उत्तर– जहा चारित्रमोहनीयकी २१ प्रकृतियोके उपशान्त हो जानेसे यथाख्यातचारित्र हो जाता है उस अकषाय निर्मलपरिणमनको उपशान्तकपाय गुणस्थान कहते है ।

प्रश्न २६– उपशान्तकषाय गुणस्थानमे दर्शनमोहनीयको ३ व चारित्रमोहनीयकी ४ अनन्तानुबंधी क्रोध मान माया लोभ इन ४ प्रकृतियोकी क्या परिस्थिति होती है ?

उत्तर—द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि या क्षायिक सम्यग्दृष्टि ही उपशमश्रेणीमे चढता है सो द्वितीयोपशमसम्यक्त्व सातवे गुणस्थानमे हो जाता है । यहा इन सात प्रकृतियोंका उपशम कर दिया था, वही उपशम यहां पर है । क्षायिक सम्यग्दृष्टिने चौथेसे ७ वें तक किसी गुणस्थान मे इन सात प्रकृतियोका क्षय कर दिया था, सो सात प्रकृतियोका यहां सर्वथा अभाव है ।

प्रश्न २७—उपशान्तकषाय गुणस्थानसे किस प्रकार नीचेके गुणस्थानोमे आना है ?

उत्तर—द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टि उपशान्तकषाय तो क्रमशः १० वे, ९ वे, ८ वे, ७ वें व ६ वे मे तो आता ही है, यदि और गिरे तो पहिले गुणस्थान तक भी जा सकता है । क्षायिक सम्यग्दृष्टि उपशातकषाय क्रमश. १०वे, ९वे, ८वें, ७वें, ६वें मे तो आता ही है, यदि

गिरे तो चौथे गुणस्थान तक ही गिर सकता है, क्योंकि इसके क्षायिक सम्यक्त्व है। क्षायिक सम्यक्त्व कभी नष्ट नही होता।

उपशान्त कषाय गुणस्थान वालेका यदि मरण हो तो मरण समयमें ही एकदम चौथा गुणस्थान हो जाता है।

प्रश्न २८—उपशमश्रेणीके अन्य गुणस्थानोमे मरण होता है अथवा नही ?

उत्तर—उपशमश्रेणीके अन्य गुणस्थानोमे भी अर्थात् १०वें, ९वें, ८वें गुणस्थानमे भी मरण हो सकता है। यदि मरण हो तो उस गुणस्थानके अनन्तर ही मरण समयमे ही चौथा गुणस्थान हो जाता है।

प्रश्न २९—उपशान्तकषाय गुणस्थान कितने प्रकारका है ?

उत्तर—उपशान्तकषाय गुणस्थान एक ही प्रकारका है। इसमे उपशमक ही होते है।

प्रश्न ३०—क्षीणकषाय गुणस्थान किसे कहते हैं ?

उत्तर—चारित्रमोहनीयकी सर्व प्रकृतियोके क्षय हो जानेसे जहा यथाख्यात चारित्र हो जाता है, उस अकषाय निर्मल परिणामको क्षीणकषाय गुणस्थान कहते है।

प्रश्न ३१– क्षीणकषाय गुणस्थानमे दर्शनमोहकी तीन व अनन्तानुबंधीकी चार—इन सात प्रकृतियोकी क्या परिस्थिति है ?

उत्तर—क्षायिक सम्यग्दृष्टि ही क्षपकश्रेणी चढता है और क्षायिक सम्यक्त्व चौथे गुणस्थानसे सातवें गुणस्थान तक किसी भी गुणस्थानमे उत्पन्न हो जाता है वही इन सात प्रकृतियोका क्षय हो गया था। सो यहाँ भी ७ प्रकृतियोका अत्यन्त अभाव है।

प्रश्न ३२—क्षीणकषाय गुणस्थान कितने प्रकारका है ?

उत्तर—क्षीणकषाय गुणस्थान एक प्रकारका है। इसमे क्षपक ही होते है और सयोगकेवली, अयोगकेवली भी केवल क्षपक ही होते है। इस गुणस्थानके अन्त समयमे ज्ञानावरणकी ५, दर्शनावरणकी ६ (४ दर्शनावरणकी, निद्रा व प्रचला), अतरायकी ५– इस प्रकार १६ प्रकृतियोका क्षय हो जाता है।

प्रश्न ३३—इस गुणस्थानमे स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला—इन तीन दर्शनावरणोकी क्या परिस्थिति रहती है ?

उत्तर– इन तीन प्रकृतियोका तो क्षपकने अनिवृत्तिकरणके पहिले भागमे ही क्षय कर दिया था, सो वहीसे इनका अत्यन्त अभाव है।

प्रश्न ३४– सयोगकेवली किन्हे कहते है ?

उत्तर– चारो घातियाकर्मोंके क्षय हो जानेसे जहाँ केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्तसुख व अनन्तवीर्य प्रकट हो जाते है उन्हे केवली कहते है और इनके जब तक शरीर और योग

रहता है इन्हे सयोगकेवली कहते है। इनका दूसरा नाम अरहतपरमेष्ठी भी है।

प्रश्न ३५—अयोगकेवली किसे कहते है ?

उत्तर– अरहंतपरमेष्ठीके जब योग नष्ट हो जाता है तबसे जब तक ये शरीरसे मुक्त नही होते इन्हे अयोगकेवली कहते है। अयोगकेवलीका काल "अ इ उ ऋ लृ" इन पांच ह्रस्व अक्षरोके बोलनेमे जितना लगता है उतना ही है। इनके उपान्त्य समयमें ७२ और अन्तमे १३ व यदि तीर्थङ्कर नही है तो १२ प्रकृतियोका क्षय हो जाता है।

प्रश्न ३६-- चौदहवे गुणस्थानके बाद क्या स्थिति होती है ?

उत्तर– अयोगकेवलीके अनन्तर ही शरीरसे भी मुक्त होकर दूसरे समयमे लोकके अग्रभागमे जा विराजमान होते है। इन्हे सिद्धभगवान कहते है।

प्रश्न ३७-- यथाख्यात चारित्र और केवलज्ञान होनेके बाद तुरन्त मोक्ष क्यों नही होता ?

उत्तर—यद्यपि १३वें गुणस्थानके पहिले समयमे रत्नत्रयकी पूर्णता हो गई तथापि योगव्यापार १३वे गुणस्थानमे चारित्रमे कुछ मल उत्पन्न करता है अर्थात् परमयथाख्यात चारित्र नही होने देता है। जैसे– किसी पुरुषने चोरीका परित्याग कर दिया है तथापि यदि चोरका संसर्ग हो तो वहा दोष उत्पन्न करता है।

प्रश्न ३८– सयोगकेवलीके अन्तमें तो योगका भी अभाव हो जाता है, फिर १३वें गुणस्थानके बाद ही निर्वाण क्यो नही हो जाता है ?

उत्तर—तेरहवे गुणस्थानके बाद योगका अभाव होनेपर भी अन्तर्मुहूर्त काल तक अघातियाकर्मोका उदय चारित्रमल उत्पन्न करता है, अतः अघातिया कर्मोका उदयसत्त्व समाप्त होते हो शीघ्र मोक्ष होता है।

प्रश्न ३९– गुणस्थानोमे उत्तरोत्तर बढ़नेका व गुणस्थानातीत होनेका क्या उपाय है ?

उत्तर—सभी आत्मोन्नतियोंका व पूर्ण उन्नतिका उपाय एक ही है, उस उपायके आलम्बनकी हीनाधिकता हो, यह अन्य बात है। वह उपाय है अनादि अनन्त अहेतुक चैतन्य-स्वभावका आलंबन। इस ही चैतन्यस्वभावका अपर नाम है कारणपरमात्मा या कारणब्रह्म। हमारी भी उन्नति इस निज चैतन्य कारणपरमात्माकी भावना और अवलम्बनसे होगी।

प्रश्न ४०—क्या यह स्वभाव सिद्ध अवस्थामे भी है ?

उत्तर-- यह चैतन्यस्वभाव या कारणपरमात्मा अथवा कारणब्रह्म सिद्ध अवस्था अर्थात् कार्यब्रह्म ब्रह्मकी स्थितिमे भी है, किन्तु वहा कार्यब्रह्म होनेसे कारणब्रह्मकी अप्रधानता है। स्वभाव तो अनादि अनन्त होता है। इस ही स्वभावको कारण रूपसे उपादान करके केवलज्ञानोपयोगरूप परिणमते रहना होता रहता है।

प्रश्न ४१– मार्गणा किसे कहते है ?

उत्तर—जिन सदृश धर्मों द्वारा जीवोको खोजा जा सकता हो उन धर्मोंके द्वारा जीवो के खोजनेको मार्गणा कहते हैं।

प्रश्न ४२– मार्गणाके कितने प्रकार है ?

उत्तर—मार्गणाके १४ प्रकार है—(१) गतिमार्गणा, (२) इन्द्रियजातिमार्गणा, (३) कायमार्गणा, (४) योगमार्गणा, (५) वेदमार्गणा, (६) कषायमार्गणा, (७) ज्ञानमार्गणा, (८) सयममार्गणा, (९) दर्शनमार्गणा, (१०) लेश्यामार्गणा, (११) भव्यत्वमार्गणा, (१२) सम्यक्त्वमार्गणा, (१३) सज्ञित्वमार्गणा और (१४) आहारकमार्गणा।

प्रश्न ४३—गतिमार्गणा किसे कहते है ?

उत्तर– गतिकी अपेक्षासे जीवोका विज्ञान करना गतिमार्गणा है। इस मार्गणासे जीव ५ प्रकारसे उपलब्ध होते है—१– नारकी, २– तिर्यंच, ३– मनुष्य, ४– देव, ५– गतिरहित।

प्रश्न ४४– इन्द्रिय जाति मार्गणा किसे कहते है ?

उत्तर—इन्द्रिय जातिकी अपेक्षासे जीवोको खोजना इन्द्रिय जाति मार्गणा या इन्द्रियमार्गणा है। इस मार्गणासे जीव ६ प्रकारसे उपलब्ध होते हैं—(१) एकेन्द्रिय, (२) द्वीन्द्रिय, (३) त्रीन्द्रिय, (४) चतुरिन्द्रिय, (५) पञ्चेन्द्रिय और (६) इन्द्रियरहित।

प्रश्न ४५—कायमार्गणा किसे कहते है ?

उत्तर– काय (शरीर) की प्रधानतासे जीवोका परिचय पाना कायमार्गणा है। कायमार्गणासे जीव ७ तरहसे ज्ञात होते है—(१) पृथ्वीकायिक, (२) जलकायिक, (३) अग्निकायिक, (३) वायुकायिक, (५) वनस्पतिकायिक, (६) त्रसकायिक और (७) कायरहित।

प्रश्न ४६– जो जीव विग्रह गतिमे गमन कर रहे है उनके केवल तैजस और कार्माण ही शरीर है, वे क्या कायरहितमे अन्तर्गत है ?

उत्तर—जो जीव जिस कायमे उत्पन्न होनेके लिये विग्रहगतिसे गमन कर रहा है उसके उस काय सम्बधी नामकर्म प्रकृतियोका उदय होनेमे तथा १, २ या ३ समयमे ही उस कायको अवश्य प्राप्त करनेसे उस ही कायवान्मे गर्भित है वे कायरहितमे अन्तर्गत नही होते।

प्रश्न ४७– योगमार्गणा किसे कहते हैं ?

उत्तर– काय वचन व मन प्रयत्नके निमित्तसे आत्मप्रदेशोके परिस्पन्द होनेको योग कहते है। योगकी अपेक्षा जीवोका परिचय करना योगमार्गणा है। योगमार्गणाकी अपेक्षा जीव ६ प्रकारसे उपलब्ध होते है– (१) औदारिक काययोगी, (२) औदारिक मिश्रकाययोगी, (३) क्रियक काययोगी (४) वैक्रियक मिश्रकाययोगी, (५) आहारक काययोगी, (६) आहारकमि य योगी, (७) कार्माणकाययोगी, (८) सत्यवचनयोगी, (९) असत्यवचनयोगी,

(१०) उभयवचनयोगी, (११) अनुभयवचनयोगी, (१२) सत्यमनोयोगी, (१३) असत्यमनोयोगी, (१४) उभयमनोयोगी, (१५) अनुभयमनोयोगी और (१६) योगरहित ।

प्रश्न ४८— वेदमार्गणा किसे कहते है ?

उत्तर—मैथुनके सस्कार व अभिलाषाको वेद कहते है । वेदकी अपेक्षा जीवोको खोजना वेदमार्गणा है । वेदमार्गणासे जीव चार प्रकारके पाये जाते है— (१) पुवेदी, (२) स्त्रीवेदी, (३) नपुंसकवेदी, (४) अपगतवेदी ।

प्रश्न ४६—कपायमार्गणा किसे कहते है ?

उत्तर— कपायकी अपेक्षा जीवोकी खोज करना कषायमार्गणा है । कषायमार्गणासे जीव २६ प्रकारसे उपलब्ध होते है— (१) अनन्तानुबन्धी क्रोधी, (२) अन० मानी, (३) अन० मायावी, (४) अन० लोभी, (५) अप्रत्याख्यानावरण क्रोधी, (६) अप्र० मानी, (७) अप्र० मायावी, (८) अप्र० लोभी, (९) प्रत्याख्यानावरण क्रोधी, (१०) प्रत्याख्यानावरण मानी, (११) प्रत्याख्यानावरण मायावी, (१२) प्रत्याख्यानावरण लोभी, (१३) संज्वलन क्रोधी, (१४) सं० मानी, (१५) स० मायावी, (१६) सं० लोभी, (१७) हस्यवान्, (१८) रतिमान्, (१९) अरतिमान्, (२०) शोकवान्, (२१) भयवान्, (२२) जुगुप्सावान्, (२३) पु वेदी, (२४) स्त्रीवेदी, (२५) नपु सकवेदी, (२६) कषायरहित ।

प्रश्न ५०— ज्ञानमार्गणा किसे कहते है ?

उत्तर—ज्ञानकी अपेक्षा जीवोका परिचय पाना ज्ञानमार्गणा है । ज्ञानमार्गणासे जीव ८ प्रकारसे उपलब्ध होते है— (१) कुमतिज्ञानो, (२) कुश्रुतज्ञानी, (३) कुअवधिज्ञानी, (४) मतिज्ञानी, (५) श्रुतज्ञानी, (६) अवधिज्ञानी, (७) मनःपर्ययज्ञानी, (८) केवलज्ञानी ।

प्रश्न ५१—सयममार्गणा किसे कहते है ?

उत्तर— सयमको अपेक्षासे जीवोका ज्ञान करना संयममार्गणा है । इस मार्गणासे जीव ८ प्रकारसे ज्ञात होते है—(१) असयम, (२) सयमासयम, (३) सामायिकसंयम, (४) छेदोपस्थनासयम, (५) परिहारविशुद्धिसयम, (६) सूक्ष्मसाम्परायसंयम, (७) यथाख्यातसयम, (८) असयम-सयमा-संयम-सयम इन तीनोसे रहित ।

प्रश्न ५२— दर्शनमार्गणा किसे कहते है ?

उत्तर—दर्शनकी अपेक्षासे जीवोका परिचय पाना दर्शनमार्गणा है । दर्शनमार्गणासे जीव ४ प्रकारके उपलब्ध होते है— (१) चक्षुर्दर्शनी, (२) अचक्षुर्दर्शनी, (३) अवधिदर्शनी, (४) केवलदर्शनी ।

प्रश्न ५३— लेश्यामार्गणा किसे कहते हैं ?

उत्तर—कपायोसे अनुरञ्जित योगप्रवृत्तिको लेश्या कहते हैं । लेश्याकी अपेक्षासे

जीवोंको खोजना लेश्यामार्गणा है। लेश्यामार्गणाकी अपेक्षामे जीव ७ प्रकारके उपलब्ध होते हैं– (१) कृष्णलेश्यावान्, (२) नीललेश्यावान्, (३) कापोतलेश्यावान्, (४) पीतलेश्यावान्, (५) पद्मलेश्यावान्, (६) शुक्ललेश्यावान् और (७) लेश्यारहित।

प्रश्न ५४—भव्यत्वमार्गणा किसे कहते है?

उत्तर-- जो रत्नत्रयके पानेके योग्य होवें वे भव्य हैं और भव्यत्वकी दृष्टिसे जीवोको खोजना भव्यत्वमार्गणा है। इस मार्गणासे जीव ३ प्रकारके पाये जाते हैं—(१) भव्य, (२) अभव्य और (३) अनुभय (सिद्ध)।

प्रश्न ५५—सम्यक्त्वमार्गणा किसे कहते है?

उत्तर—सम्यक्त्वकी दृष्टिसे जीवोका परिचय पाना सम्यक्त्वमार्गणा है। इस मार्गणा से जीव ६ तरहके उपलब्ध होते हैं—(१) मिथ्यादृष्टि, (२) सासादनसम्यक्त्ववान्, (३) सम्यग्मिथ्यादृष्टि, (४) उपशमसम्यग्दृष्टि, (५) वेदकसम्यग्दृष्टि और (६) क्षायिकसम्यग्दृष्टि।

प्रश्न ५६—सज्ञित्वमार्गणा किसे कहते है?

उत्तर—सज्ञापनेकी अपेक्षासे जीवोको खोजना सज्ञित्वमार्गणा है। इस मार्गणासे जीव ३ तरहके पाये जाते है– (१) सज्ञी, (२) असज्ञी और (३) अनुभय (न सज्ञी, न असंज्ञी)।

प्रश्न ५७—आहारकमार्गणा किसे कहते है?

उत्तर—जो जीव नोकर्मवर्गणावोको ग्रहण करता है वह आहारक है व आहारकपनेकी दृष्टिसे जीवोका परिचय पाना आहारकमार्गणा है। इस मार्गणासे जीव दो तरहके पाये जाते है– (१) आहारक और (२) अनाहारक।

प्रश्न ५८—इन सब भेदोका सक्षिप्त विवरण क्या है?

उत्तर– विस्तारभयसे यहाँ विवरण नही करते। एतदर्थ गुणस्थानदर्पण व जीवस्थान चर्चा देखिये।

गुणस्थानदर्पणमे सर्वगुणस्थान व अतीतगुणस्थानका अनेक प्रकारसे विवरण है।

जीवस्थान चर्चामे—मार्गणावोका विशेष विवरण है तथा किस गुणस्थानमे व किस मार्गणाके भेदमे गुणस्थान मार्गणायें बध, उदय, सत्त्व, भाव, आस्रव आदि कितने-कितने होते है, यह विवरण सामान्यसे, पर्याप्तनानायें, पर्याप्त एक जीवमे, पर्याप्त एक जीवके एक समयमे, अपर्याप्तनानायें, अपर्याप्त एक जीवमे, अपर्याप्त एक जीवके एक समयमे इतने-इतने प्रकारसे किया गया है।

प्रश्न ५९– इन मार्गणा स्थानोमे कौनसा स्थान निर्मल एव उपादेय है?

उत्तर– इन मार्गणावोमे अन्तिम भेद वाला स्थान कर्मोंके क्षयसे प्रकट होनेके कारण निर्मल और उपादेय है।

प्रश्न ६०—अनाहारक तो छहों कायके जीवोमे हो जाता है, वह कैसे उपादेय है ?

उत्तर— इस उपादेय-अनाहारकत्वमे ससारी अनाहारकोका ग्रहण नही करना, किन्तु सिद्ध भगवानका ग्रहण करना । सिद्धप्रभुके नोकर्मवर्गणावोका कभी भी ग्रहण नही होता ।

प्रश्न ६१— अन्य सर्व मार्गणास्थान क्यो हेय है ?

उत्तर-- ससारी जीवोके उक्त सब प्रकार कर्मोका उदय, उपशम, क्षयोपशम उदीरणादिका निमित्त पाकर होते है, वे स्वाभाविक भाव नही है ।

प्रश्न ६२—क्षायिक भाव भी तो कर्मोके क्षयसे उत्पन्न होता है, वह कैसे स्वाभाविक भाव है ?

उत्तर—कर्मोंके क्षयको निमित्त पाकर होने वाला भाव यद्यपि इस निमित्तदृष्टिसे क्षयकालमे नैमित्तिक भाव है तथापि आगे सब समयोमें अनैमित्तिक भाव है, अतः स्वाभाविक भाव है तथा क्षयकालमे भी कर्मोंका अभाव होनारूप ही तो निमित्त कहा है, सो कर्मोंके अभाव से होनेके कारण स्वाभाविक भाव है ।

प्रश्न ६३— मार्गणास्थानोमे अन्तिम भेद द्वारा बताया गया निर्मल परिणमन कैसे प्रकट होता है ?

उत्तर— उन-उन समस्त मार्गणास्थानोसे विलक्षण शुद्ध चैतन्यस्वभावके अवलम्बनसे वह वह निर्मलपरिणमन उत्पन्न होता है । जैसे नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य, देव, गतिरहित (सिद्ध), पाँचों पर्यायोसे विलक्षण चैतन्यस्वभावके अवलम्बनसे गतिरहित परिणमन प्रकट होता है । एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय और इन्द्रियरहित—इन छहो पर्यायोसे विलक्षण सनातन चैतन्यस्वभावके अवलम्बनसे इन्द्रियरहित परिणमन प्रकट होता है । इत्यादि प्रकारसे सब मार्गणावोमे लगा लेना चाहिये ।

प्रश्न ६४-- क्या उन निर्मल पर्यायोके भिन्न-भिन्न साधन है ?

उत्तर— नही, एक सनातन चैतन्यस्वभावके अवलम्बनमे ही गतिमार्गणा भेदरहित इन्द्रियमार्गणा भेदरहित, कायमार्गणा भेदरहित आदि द्वारा विशेषित वह सर्वचैतन्यस्वभाव अन्तर्निहित है । वह एक ही है और है अनादि, अनन्त, अहेतुक, परमपारिणामिक भावमय कारणपरमात्मा, समयसार, शुद्धात्मतत्त्व आदि संकेतो द्वारा गम्य ।

प्रश्न ६५— शुद्धनयसे ये सभी जीव शुद्ध किस प्रकारसे है ?

उत्तर— शुद्धनय वस्तुके अखंड स्वभावको देखता है । कालगत, क्षेत्रगत, शक्तिगत भेदको यह नय विषय नही करता । इस शुद्धनयका अपर नाम परमशुद्धनिश्चयनय है । शुद्धनय की दृष्टिमे मात्र चैतन्यस्वभाव है । इस दृष्टिसे सभी जीव स्वभावसे शुद्ध है ।

प्रश्न ६६—यह शुद्ध पारिणामिक भाव तो शाश्वत है ही, उसका करना ही क्या रह

जाता है ?

उत्तर—इस शाश्वत शुद्ध पारिणामिक भावका ध्यान करना कर्तव्य हो जाता है। यह शुद्ध स्वभाव तो शाश्वत है, ध्येयरूप है।

इस प्रकार ससारस्थ अधिकारका विवरण करके सिद्ध और विस्रसोदूर्ध्वगति– इन दो अधिकारोका एक गाथामे विवरण करते है—

णिक्कम्मा अट्ठगुणा किंचूणा चरमदेह दोसिद्धा।
लोयग्गठिदा णिच्चा उप्पादवयेहिं संजुत्ता ॥१४॥

अन्वय—सिद्धा णिक्कम्मा, अट्ठगुणा चरमदेहो किंचूणा, लोयग्गठिदा, णिच्चा, उप्पाद-वयेहिं सजुत्ता।

अर्थ—सिद्धभगवान अष्टकर्मोंसे रहित है, अष्टगुणोसे सहित है, अन्तिम शरीरसे कुछ कम है तथा ऊर्ध्वगमन स्वभावसे लोकके अग्रभागमे स्थित हैं, नित्य है और उत्पादव्ययकरि सयुक्त हैं।

प्रश्न १—सिद्ध शब्दका क्या अर्थ है ?

उत्तर— सिद्ध्ययति इति सिद्ध। जो पूर्णविकासको प्राप्त हो गया उसे सिद्ध कहते है।

प्रश्न २—जीवका विकास क्यो रुका हुआ है ?

उत्तर—अपने विभाव परिणामोके कारण जीवका विकास रुका हुआ है।

प्रश्न ३— जीवके विभावपरिणाम क्यो हो जाते है ?

उत्तर— कर्मोंके उदयका निमित्त पाकर जीवके मलिन सस्कारके कारण जीवके विभावपरिणाम हो जाते है। ये विभावपरिणाम, दु:खरूप है।

प्रश्न ४—कर्म कितने प्रकारके होते हैं ?

उत्तर— कर्म तो असख्यातों प्रकारके है, किन्तु उनके फल देनेकी प्रकृतिकी जाति बना कर भेद करनेसे कर्म ८ प्रकारके है— (१) ज्ञानावरण, (२) दर्शनावरण, (३) वेदनीय, (४) मोहनीय, (५) आयु, (६) नाम, (७) गोत्र और (८) अन्तराय।

प्रश्न ५—ज्ञानावरणकर्म किसे कहते है ?

उत्तर— जिनमे ज्ञानको प्रकट न होने देनेके निमित्त होनेकी प्रकृति हो उन कर्मवर्गणाओको ज्ञानावरणकर्म कहते हैं।

प्रश्न ६— दर्शनावरण कर्म किसे कहते है ?

उत्तर— जिन कार्माणवर्गणावोमे अन्तर्मुख चैतन्य प्रकाशको प्रकट न होने देनेके निमित्त होनेकी प्रकृति हो उन्हे दर्शनावरणकर्म कहते है।

प्रश्न ७—वेदनीयकर्म किसे कहते है ?

उत्तर—जिन कर्मवर्गणावोमे जीवके सुख दुःख होनेके निमित्त होनेकी प्रकृति हो उन्हे वेदनीयकर्म कहते है ।

प्रश्न ८-- मोहनीयकर्म किसे कहते है ?

उत्तर—जिन कर्मवर्गणावोमे जीवके सम्यक्त्व और चारित्र गुणके विकृत होनेमें निमित्त होनेकी प्रकृति हो उन्हें मोहनीयकर्म कहते है ।

प्रश्न ९-- आयुकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर— जिन कर्मवर्गणाओमे जीवको नये भवमे ले जानेमे व शरीरमें रुके रहनेमें निमित्त होनेकी प्रकृति हो उन्हे आयुकर्म कहते है ।

प्रश्न १०-- नामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर— जिन कर्मवर्गणावोमे शरीरकी रचना होनेके निमित्त होनेकी प्रकृति हो उन्हें नामकर्म कहते है ।

प्रश्न ११ —गोत्रकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर-- जिस कर्मके उदयसे जीव उच्च नीच कुलमे उत्पन्न हो व रहे उसे गोत्रकर्म कहते है ।

प्रश्न १२— अन्तरायकर्म किसे कहते है ?

उत्तर-- जिसके उदयसे दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्यमे विघ्न आवे उसे अंतरायकर्म कहते है ।

प्रश्न १३-- कर्म किस उपायसे नष्ट होते है ?

उत्तर-- निज शुद्धात्माके अनुभवके बलसे कर्म स्वयं अकर्म हो जाते है । कर्मका अकर्मस्वरूप होना ही कर्मका नाश है ।

प्रश्न १४—कर्मोके नाशका क्या क्रम है ?

उत्तर—पहिले मोहनीयकर्मका क्षय होता है, पश्चात् ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय— इन तीनका एक साथ क्षय होता है । पश्चात् शेषके ४ कर्मोका एक साथ क्षय होता है । आठो कर्मोका क्षय हो जानेपर आत्मा सिद्ध परमात्मा कहलाता है । सिद्धभगवान आठो कर्मोसे रहित है ।

प्रश्न १५—सिद्धभगवानके गुण कितने है ?

उत्तर— विशेष भेदनयसे सिद्धभगवानमें गतिरहितता, इन्द्रियरहितता, गुणस्थानातीतता, अनन्त ज्ञान, अनन्तआनन्द आदि अनन्त गुण है ।

प्रश्न १६— अभेदनयसे सिद्धभगवानमे कितने गुण है ?

उत्तर— साक्षात् अभेदनयसे "शुद्धचैतन्य" एक गुण है । विवक्षित अभेदनयसे सिद्धप्रभु

मे अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन ये दो गुण है अथवा अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख व अनन्तवीर्य ये चार गुण है।

प्रश्न १७– मध्यमपद्धतिसे सिद्धभगवानमे कितने गुण है ?

उत्तर—सिद्धभगवानमे ८ गुण है—[१] परमसम्यक्त्व, [२] केवलज्ञान, [३] केवलदर्शन, [४] अनन्तवीर्य, [५] अनन्तसुख, [६] अवगाहनत्व, [७] सूक्ष्मत्व और [८] अगुरुलघुत्व।

प्रश्न १८– परमसम्यक्त्व किसे कहते है ?

उत्तर– समस्त द्रव्य, गुण, पर्यायोके विषयमे विपरीत अभिप्रायरहित सम्यक्त्वरूप परिणमनको परमसम्यक्त्व कहा है। इस सम्यक्त्वमे चारित्रमोहजनित दोषका भी सम्बध न होनेसे तथा उपशम, क्षय, क्षयोपशमादि निमित्त न रहनेसे एव केवलज्ञानका साथ होनेसे परमसम्यक्त्व नाम कहा है। इसे परमावगाढ सम्यक्त्व भी कहते हैं।

प्रश्न १९-- परमसम्यक्त्व कैसे प्रकट हुआ ?

उत्तर-- शुद्धात्म रुचिस्वरूप निश्चयसम्यक्त्वकी पहिले भावना व परिणति हुई, जिसके फलमे यह परमसम्यक्त्व प्रकट हुआ।

प्रश्न २०-- केवलज्ञान किसे कहते है ?

उत्तर—लोकालोकवर्ती समस्त पदार्थोंको समस्त पर्यायो सहित एक साथ जानने वाले ज्ञानको केवलज्ञान कहते है।

प्रश्न २१—केवलज्ञान कैसे प्रकट हुआ है ?

उत्तर—अविकार अखण्ड स्वके सवेदनकी स्थिरताके फलस्वरूप यह केवलज्ञान प्रकट हुआ।

प्रश्न २२—केवलदर्शन किसे कहते है ?

उत्तर—लोकालोकवर्ती समस्त पदार्थोंमे व्यापक सामान्य आत्माके प्रतिभास करने वाले चैतन्य प्रकाशको केवलदर्शन कहते हैं।

प्रश्न २३—केवलदर्शन कैसे प्रकट हुआ ?

उत्तर—निर्विकल्प निज शुद्धात्मतत्त्वके अवलोकनके फलस्वरूप यह केवलदर्शन प्रकट हुआ।

प्रश्न २४—अनन्तवीर्य किसे कहते है ?

उत्तर– अनन्त पदार्थोंके ज्ञान आदि समस्त गुणविकासका अनन्त सामर्थ्य प्रकट होने को अनन्तवीर्य कहते हैं।

प्रश्न २५—अनन्तवीर्य कैसे प्रकट हुआ ?

उत्तर—अखण्डशक्तिमय निज कारणसमयसारके ध्यानमें निज सामर्थ्यका उपयोग किया और स्वरूपसे विचलित करनेका कोई अन्तरङ्ग या बहिरङ्ग कारण उपस्थित हुआ तो उस समय परमधैर्यका अवलम्बन लिया व स्वरूपसे चलित नही हुए। इसके फलस्वरूप यह अनन्तवीर्य प्रकट हुआ।

प्रश्न २६—अनन्तसुख किसे कहते है ?

उत्तर-- आकुलताके अत्यन्त अभाव होनेको अनन्तसुख कहते है। इसका अपर नाम अव्याबाध भी है।

प्रश्न २७— अनन्तसुख कैसे प्रकट हुआ ?

उत्तर—निज सहजशुद्ध आत्मतत्त्वके सवेदनसे प्रकट हुये आनन्दानुभवके फलस्वरूप यह अनन्तसुख प्रकट हुआ।

प्रश्न २८—अवगाहनत्व किसे कहते है ?

उत्तर— एक सिद्धके क्षेत्रमे अनन्तसिद्धोका भी अवगाहन हो जावे, इस सामर्थ्यको अवगाहनत्व कहते है।

प्रश्न २९— यह अवगाहनत्व कैसे प्रकट हुआ ?

उत्तर—अमूर्त निराबाध निज चैतन्यस्वभावकी पहिले भावना, उपासना की जिसके फल स्वरूप यह अवगाहनत्व प्रकट हुआ।

प्रश्न ३०—सूक्ष्मत्व किसे कहते है ?

उत्तर—केवलज्ञान द्वारा ही गम्य अमूर्त प्रदेशात्मक होनेको सूक्ष्मत्व कहते है।

प्रश्न ३१— यह सूक्ष्मत्व कैसे प्रकट हुआ ?

उत्तर-- द्रव्यकर्म, नोकर्म और भावकर्मोंसे रहित निज शुद्धात्मतत्त्वके श्रद्धान, ज्ञान, आचरणसे यह सूक्ष्मत्व प्रकट हुआ।

प्रश्न ३२-- अगुरुलघुत्व किसे कहते है ?

उत्तर--जिससे अन्य न कोई गुरु हो और इस सिद्धावस्थामे रहने वाले अनन्त जीवों से कोई न लघु हो ऐसी साम्य अवस्थाके प्राप्त होनेको अगुरुलघुत्व कहते है अथवा न ऐसे भारी हो जायें कि लोहपिण्डवत् नीचे पतन हो जाय और न ऐसे लघु हो जायें कि आकके तूलकी तरह भ्रमण ही होता रहे, ऐसे विकासको अगुरुलघुत्व कहते है।

प्रश्न ३३— यह अगुरुलघुत्व कैसे प्रकट हुआ ?

उत्तर— सर्व जीवोमे एकस्वरूप निज चैतन्य सामान्यस्वरूपकी अभेद उपासना की, उसके फलस्वरूप यह अगुरुलघुत्व प्रकट हुआ।

प्रश्न ३४— ये आठो गुण त्रैकालिक तो नही है, ये किसी समयसे ही प्रकट हुये,

फिर इन्हे गुण क्यो बताया ?

उत्तर-- ये आठो किसी समयसे ही प्रकट हुये अतः पर्यायें है । यहाँ गुण शब्दका अर्थ है विशेषता । सिद्धोकी विशेषता इन ८ विकासो द्वारा बताई है ।

प्रश्न ३५-- सिद्धभगवान चरमशरीरसे कुछ ऊन क्यो होते हैं ?

उत्तर—इसके दो कारण है—(१) शरीरके अग्रनख, केश और ऊपरी सूक्ष्म त्वचामे आत्मप्रदेश नही होते है, सो शरीरसे मुक्त होनेपर पूर्व शरीरसे, जिसमे नख, केश, त्वचा भी थे, कुछ कम अवगाहना है । (२) सयोगकेवलीके अन्तिम समयमे शरीर व अङ्गोपाङ्ग नामकर्मके उदयकी व्युच्छित्ति हो जाती है । इस कारण अयोगकेवलीके प्रथम समयमे ही नासिकाछिद्र आदि समाप्त हो जाते है । इसलिये किञ्चित् ऊनपना हो जाता है । यही ऊनपना सिद्धभगवानके प्रदेशावगाहनामे है ।

प्रश्न ३६— शरीरका आवरण समाप्त होनेपर आत्मप्रदेश फैलकर लोकप्रमाण क्यो नही हो जाते ?

उत्तर-- आत्मप्रदेशोका विस्तार आत्माका स्वभाव नही है, विस्तार शरीर नामकर्मके आधीन है । शरीर नामकर्मके अभावसे विस्तारका भी अभाव है ।

प्रश्न ३७— जैसे दीपकके आवरणका अभाव होनेसे दीपकका प्रकाश एकदम फैल जाता है, क्या इसी तरह आत्मप्रदेश भी फैल सकते है ?

उत्तर-- दीपक तो पहिले भी निरावरण हो सकता है, पीछे आवरण आ सकता है, अतः दीपका आवरण न होनेपर दीप प्रकाश फैल सकता है, किन्तु आत्मा पहिले शरीररहित हो पश्चात् शरीरबद्ध हो, ऐसा नही है, अतः शरीरका आवरण हटनेपर भी आत्मा शरीरप्रमाण रहता है ।

प्रश्न ३८— जो दीपक पहिलेसे आवरणके भीतर जला हो उसे फिर बाहर निकाल दिया जाय तो जैसे वह फैल जाता इस तरह आत्मा क्यो नही फैलता ?

उत्तर— दीपक तो निरावरण भी रह सकता यह आत्मा तो अनादिसे शरीरमे ही रहा, अतः दृष्टान्त विषम है । और दूसरी बात यह है कि लोकमे रूढि ऐसी है जो कहते है कि दीपकका प्रकाश फैल गया । वास्तवमे दीप-प्रकाश दीप-शिखाके बाहर नही है ।

प्रश्न ३९— तो वह प्रकाश किसका है जो सारे कमरेमे फैला है ?

उत्तर— जिस पदार्थपर प्रकाश है वह उस ही पदार्थका प्रकाशपरिणमन है । हाँ वह प्रकाशपरिणमन दीपकको निमित्त पाकर हुआ है ।

प्रश्न ४०— तब दीपकके सामनेके बहुत दूरके पदार्थ क्यो नही प्रकाशपरिणमनको प्राप्त करते ?

उत्तर— यह परिणमने वाले पदार्थकी योग्यता है कि यह कितने दूरवर्ती और कितने तेजोमय पदार्थको निमित्त पाकर प्रकाशरूप परिणमे। पदार्थ अपनी योग्यताके अनुसार प्रकाशपरिणत होते है। तभी तो काच विशेष प्रकाशरूप परिणमता है, दीवार आदि साधारण प्रकाशपरिणत होते है।

प्रश्न ४१—शरीरसे मुक्त होनेपर आत्माका अवस्थान कहाँ रहता है?

उत्तर—शरीरसे मुक्त होनेपर इस परमात्माका अवस्थान लोकके शिखरपर हो जाता है।

प्रश्न ४२— जहाँ शरीरसे मुक्त हुए वही अवस्थान क्यो नही रहता?

उत्तर—आत्माका ऊर्ध्वगमनस्वभाव होनेसे आत्मा देहमुक्त होते ही एक समयमे सबसे ऊपर चला जाता है।

प्रश्न ४३— सिद्धप्रभु और ऊपर चलते ही क्यो नही जाते?

उत्तर— गमनक्रियाके निमित्तभूत धर्मास्तिकायका लोकके अन्त तक ही सद्भाव है अतः वहाँ तक ही गमन है।

प्रश्न ४४—तब आत्माकी क्रिया क्या पराधीन नही हुई?

उत्तर— नही, आत्मा अपनी क्रियासे ही क्रियावान् होता है, किन्तु ऐसा ही सहज निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध है कि धर्मास्तिकायको निमित्त पाकर आत्मा अपनी स्वतन्त्र क्रियासे क्रियावान् हुआ।

प्रश्न ४५—सिद्धप्रभु सिद्धावस्थामे कब तक रहते है?

उत्तर—सिद्धपर्याय नित्य है अर्थात् सदैव अनन्तानन्त काल तक रहेगी। अतः सिद्ध नित्य हैं।

प्रश्न ४६—सिद्धपर्याय नित्य क्यो है पर्याय तो अनित्य होती है?

उत्तर—सिद्धपर्याय स्वाभाविक और अनैमित्तिक है इसलिये सदा रहती है। सूक्ष्मदृष्टि अथवा वस्तुस्वभावसे प्रतिसमय नया नया परिणमन होता ही है, किन्तु वह अनैमित्तिक और स्वाभाविक होनेसे पूर्ण समान ही होता है। अतः सिद्धपर्यायको नित्य कहा।

प्रश्न ४७—नया-नया परिणमन सिद्धोंमे क्या होता है?

उत्तर— जैसे आधा घण्टा तक विजली जली तो वहाँ प्रतिक्षण नयी-नयी विजली हुई। लगातार होनेसे व समान प्रकाश होनेसे उसमे अन्तर मालूम नही होता। वैसे सिद्धोंके प्रतिसमयके परिणमनमे अन्तर नही होता। प्रतिसमय शक्तिका उपयोग तो हो ही रहा है।

प्रश्न ४८— प्रतिसमय उत्पाद व्यय होनेका कारण क्या है?

उत्तर— अगुरुलघु गुणके ६ वृद्धिस्थानोमे व ६ हानिस्थानोमे परिणमन होनेसे उत्पाद

व्यय होता रहता है।

प्रश्न ४९—क्या सिद्धभगवानमे स्थूलरूपसे भी कोई उत्पाद व्यय होता है ?

उत्तर—व्यञ्जनपर्यायकी अपेक्षासे स्थूल उत्पादव्यय भी है अर्थात् संसारपर्यायका तो विनाश हुआ और सिद्धपर्यायका उत्पाद हुआ। यहाँ जीवद्रव्य ध्रौव्यरूपसे रहा।

प्रश्न ५०— सिद्धप्रभुके स्वरूप जाननेसे हमे क्या शिक्षा लेनी चाहिये ?

उत्तर— अनन्त आनन्द आत्यन्तिक शुद्ध सिद्धपर्यायकी जिस स्वभावके साथ एकता हुई है वह स्वभाव मुझमे भी अनादिसिद्ध है। इस स्वभावकी भावना, उपासना और इसी स्वभावके अवलम्बनसे शुद्ध निर्मल सिद्धपर्याय प्रकट होती है। एतदर्थ निज सहजसिद्ध चैतन्यस्वभावमे अपनी वर्तमान ज्ञान पर्याय जोड़नी चाहिये।

॥ इस प्रकार जीवतत्त्वके प्ररूपणमें प्रथम अधिकार समाप्त हुआ ॥
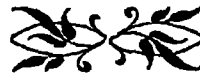
द्वितीय अधिकार

अज्जीवो पुणरोग्रो पुग्गल धम्मो अधम्म आयास ।
कालो पुग्गल मुत्तो रूवादिगुणो अमुत्ति सेसादु ॥१५॥

अन्वय—पुणापुग्गल धम्मो अधम्म आयासं कालो अज्जीवोरोवो पुग्गल रूवादिगुणो मुत्तो दुसेसा अमुत्ति ।

अर्थ– और फिर पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और कालद्रव्य—इन पाँचोको अजीव जानना चाहिये। उनमे से पुद्गलद्रव्य तो रूपादि गुण वाला है, इसलिये मूर्तिक है और शेषके धर्म, अधर्म, आकाश और काल— ये चार द्रव्य अमूर्तिक है ।

प्रश्न १– परम उपादेय शुद्ध जीवद्रव्यके वर्णनके बाद अजीवोके वर्णनका क्या प्रयोजन है ?

उत्तर-- जीवतत्त्व उपादेय है और अजीवतत्त्व हेय है । हेय तत्त्वको जाने बिना उसे कैसे छोडा जाय और अजीवतत्त्व छोडे बिना जीवतत्त्व कैसे उपादेय बनेगा ? इस कारण अजीवतत्त्वका वर्णन किया ।

प्रश्न २-- तब तो अजीवतत्त्वका पहिले वर्णन करना था ?

उत्तर—जीवतत्त्व प्रधान है, इसलिये जीवतत्त्वका पहिले वर्णन किया अथवा अजीव उसे कहते है, जो जीव नही । सो अजीवका स्वरूप जाननेके लिए जीवके स्वरूपका वर्णन पहिले आवश्यक ही है ।

प्रश्न ३– अजीव किसे कहते है ?

उत्तर– जिसमे जीवत्व अर्थात् चेतना न हो उसे अजीव कहते है । इन अजीवद्रव्यों मे किसी भी प्रकारकी चेतना नही है ।

प्रश्न ४– चेतना कितने प्रकारकी होती है ?

उत्तर– चेतना शक्तिकी अपेक्षा तो एक ही प्रकारकी है, विकासकी अपेक्षा तीन प्रकार की है—(१) कर्मफलचेतना, (२) कर्मचेतना और (३) ज्ञानचेतना ।

प्रश्न ५– कर्मफलचेतना किसे कहते है ?

उत्तर– ज्ञानके अतिरिक्त अन्य भावोमे व पदार्थोमें मै इसे भोगता हू, ऐसा सवेदन करना कर्मफलचेतना है । इसमे अव्यक्त सुख दुःखका अनुभव भी अन्तर्निहित है ।

प्रश्न ६– कर्मफलचेतना किन जीवोके होती है ?

उत्तर– कर्मफलचेतना एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असज्ञी पञ्चेन्द्रियमें

होती है और सज्ञी पञ्चेन्द्रियमे तीसरे गुणस्थान तकके सज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीवोमे होती है। इसके आगे १२वें गुणस्थान तक गौणरूपसे माना है।

प्रश्न ७—कर्मचेतना किसे कहते है ?

उत्तर—ज्ञानके अतिरिक्त अन्य भावोमे व पदार्थोमे मैं इसे करता हू, ऐसा सवेदन करना कर्मचेतना है।

प्रश्न ८— कर्मचेतना किन जीवोके होती है ?

उत्तर— कर्मचेतना द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असज्ञी पञ्चेन्द्रियमे व तीसरे गुणस्थान तक सज्ञी पञ्चेन्द्रियोमे कर्मचेतना होती है। (एकेन्द्रिय जीवोमे क्रियाकी मुख्यता न होनेसे कर्मचेतना गौणरूपसे कही है चौथे गुणस्थानसे १२वे गुणस्थान तकके जीवोमे अशमात्र भी विपरीत श्रद्धान न होनेसे मात्र रागद्वेष परिणतिके कारण कर्मचेतना गौणरूपसे मानी है।)

प्रश्न ६—ज्ञानचेतना किसे कहते है ?

उत्तर— अपनेको शुद्ध ज्ञानमात्र सचेतन करना ज्ञानचेतना है।

प्रश्न १०— ज्ञानचेतना किनके होती है ?

उत्तर—ज्ञानचेतना चौथे गुणस्थानसे लेकर १४वें गुणस्थान तकके सब जीवोमे और सिद्धोमे होती है। १३वे, १४वें गुणस्थानवर्ती जीवोके व सिद्धोके ज्ञानोपयोगका पूर्ण शुद्ध परिणमन होनेसे मुख्यरूपसे ज्ञानचेतना है।

प्रश्न ११— पुद्गल किसे कहते है ?

उत्तर—जिसमे पूरन और गलनका स्वभाव हो उसे पुद्गल कहते हैं। अनेक परमाणुवोका मिलकर स्कन्ध हो जाना और बिखरकर खण्ड-खण्ड हो जाना वह बात पुद्गलमे ही पाई जाती है।

प्रश्न १२-- एक पुद्गल-पदार्थ बिखर क्यो जाता है ?

उत्तर—जो स्कध है वह एक पुद्गल पदार्थ नही है। उसमे जो एक-एक करके अनेक परमाणु है जिनका कि दूसरा खण्ड कभी नही हो सकता, ऐसे अखण्ड और सूक्ष्म है वे एक-एक पुद्गल द्रव्य है।

प्रश्न १३— स्कन्ध क्या द्रव्य नही है ?

उत्तर—स्कन्ध समानजातीय द्रव्यपर्याय है (अर्थात् पुद्गल-द्रव्यजातिके ही अनेक परमाणुवोका व्यञ्जनपर्याय है। निश्चयसे वहाँ भी जितने परमाणु है उतने ही उनके अपने-अपने मे परिणमन है।)

प्रश्न १४— पुद्गल कितने प्रकारके होते है ?

उत्तर— सक्षेपसे तो पुद्गल २ प्रकारके होते हैं— (१) अणु याने परमाणु और

(२) स्कन्ध ।

प्रश्न १५– विस्तारसे पुद्गल कितने प्रकारके कहे गये है ?

उत्तर– न सक्षेप न अतिविस्तारसे पुद्गल २३ प्रकारके कहे गये हैं– (१) अणु (२) संख्याताणुवर्गणा, (३) असख्याताणुवर्गणा, (४) अनन्ताणुवर्गणा, (५) ग्राह्याहारवर्गणा (६) ग्राह्यभाषावर्गणा, (७) ग्राह्यमनोवर्गणा, (८) ग्राह्यतैजसवर्गणा, (९) कार्माणवर्गणा (१०) अग्राह्याहारवर्गणा, (११) अग्राह्यभाषावर्गणा, (१२) अग्राह्यमनोवर्गणा, (१३) अग्राह्य तैजसवर्गणा, (१४) ध्रुववर्गणा, (१५) सान्तरनिरन्तरवर्गणा, (१६) सान्तरनिरन्तरशून्यवर्गणा (१७) प्रत्येकशरीरवर्गणा, (१८) ध्रुवशून्यवर्गणा, (१९) वादर निगोदवर्गणा, (२०) वादर निगोदशून्यवर्गणा, (२१) सूक्ष्मनिगोदवर्गणा, (२२) नभोवर्गणा, (२३) महास्कन्धवर्गणा ।

प्रश्न १६– इन २३ प्रकारके पुद्गलोका संक्षिप्त विभाग क्या है ?

उत्तर– इनमे अणु तो शुद्ध पुद्गल द्रव्य है शेषके २२ स्कन्ध है । उन बाईस स्कन्धो मे संख्याताणुवर्गणा असख्याताणुवर्गणा व अनन्ताणुवर्गणायें ३ सामान्य है, संख्याकी अपेक्षासे है । ग्राह्याहारवर्गणा, ग्राह्यभाषावर्गणा, ग्राह्यमनोवर्गणा, ग्राह्यतैजसवर्गणा और कार्मणवर्गणा ये ५ जीव द्वारा ग्राह्य है ? शेषके १४ को उनके नामपरसे उनका प्रयोजन जान लेना चाहिये ।

प्रश्न १७– धर्मद्रव्यका क्या स्वरूप है ?

उत्तर—धर्मद्रव्य आदि शेष ४ अजीवद्रव्योका स्वरूप अलगसे गाथावोंमे आगे कहा जावेगा इस कारण वहाँ ही इस सबका विवरण होगा ।

प्रश्न १८– इन सब द्रव्योका आकार क्या है ?

उत्तर—इन द्रव्योका आकार अपने अपने प्रदेशोरूप है । मूर्त आकार केवल पुद्गल द्रव्यका ही है ।

प्रश्न १९– पुद्गलद्रव्य मूर्त क्यो है ?

उत्तर—पुद्गलमे रूप रस, गन्ध और स्पर्श ये चार गुण और इनके परिणमन पाये जाते है, इसलिये पुद्गलद्रव्य मूर्त है । रूप, रस, गन्ध और स्पर्श इन चारोके एकत्वको मूर्ति कहते है ।

प्रश्न २०– धर्म, अधर्म, आकाश और काल अमूर्त क्यो है ?

उत्तर– धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये चारो द्रव्य रूप, रस, गन्ध और स्पर्शसे रहित है अतः ये अमूर्त है ।

प्रश्न २१– परमाणुका स्कन्धसे बन्ध क्यो हो जाता है ?

उत्तर– एक परमाणुका स्कन्धसे बन्ध नही होता किन्तु स्कन्धका स्कन्धके साथ

विशिष्ट सम्बन्ध हो जाता है ।

प्रश्न २२– परमाणुका परमाणुसे बन्ध क्यो हो जाता है ?

उत्तर– परमाणुका परमाणुके साथ स्निग्ध रूक्ष गुणके परिणमनके कारण बन्ध हो जाता है । दो अधिक अविभागप्रतिच्छेद (डिग्री) वाले स्निग्ध या रूक्ष परमाणुके साथ उससे २ कम अविभागप्रतिच्छेद वाले स्निग्ध या रूक्ष किसी भी परमाणुका बन्ध हो जाता है । किन्तु एक अविभागप्रतिच्छेद वाले स्निग्ध या रूक्ष किसी भी परमाणुका बन्ध नही होता । जैसे कि जघन्य राग वाले मुनिके रागका बन्ध नही होता ।

प्रश्न २३—परमाणु शुद्ध होते या अशुद्ध ?

उत्तर– परमाणु केवल एक द्रव्य रह गया इस अपेक्षासे तो परमाणु शुद्ध है । जिस परमाणुका बन्ध न हो ऐसी शुद्धताकी अपेक्षा जघन्य अर्थात् एक अविभागप्रतिच्छेद मात्र स्निग्ध, रूक्ष परमाणु शुद्ध है अनेक अविभागप्रतिच्छेद वाला स्निग्ध, रूक्ष परमाणु अशुद्ध है ।

प्रश्न २४– जघन्यगुण वाले परमाणुका फिर कभी बन्ध होता है या नही ?

उत्तर—जघन्यगुण वाले परमाणुमे जब स्वय अविभागप्रतिच्छेदकी वृद्धि हो जाती है तब बन्धयोग्य होता है ।

प्रश्न २५—दो परमाणुवोका बन्ध होनेपर वे किस रूप परिणम जाते है ?

उत्तर– कम गुण वाला परमाणु अधिक गुण वाले परमाणुकी तरह परिणम जाता है । जैसे १५ डिग्रीके रूक्ष परमाणुका १७ डिग्रीके स्निग्ध परमाणुके साथ बन्ध हुआ तो रूक्ष परमाणु भी स्निग्धपरमाणुके बन्धका निमित्त पाकर रूक्ष परिणमनका व्यय करता हुआ स्निग्ध गुणरूप परिणम जाता है ।

२६-- इस वर्णनसे हमे क्या ध्यान करना चाहिये ?

उत्तर– जैसे जघन्य गुण वाला स्निग्धत्व या रूक्षत्व परमाणुके बन्धके लिये समर्थ नही होता उसी प्रकार जघन्यगुण वाला राग जीवके बन्धके लिये समर्थ नही होता और उस रागके नष्ट होते ही अनन्त चतुष्टयकी शुद्धता हो जाती है । यह सब निज शुद्धात्मभावनाका फल है । अतः रागरहित निजशुद्ध चैतन्यस्वभावकी उपासना करना चाहिये ।

अब पुद्गल द्रव्यकी द्रव्यपर्यायोका वर्णन करते है—

सद्दो बधो सुहुमो थूलो सठाण भेद तम छाया ।
उज्जोदादवसहिया पुग्गलदव्वस्स पज्जाया ॥१६॥

अन्वय– सद्दो, बधो, सुहमो, थूलो, सठाण, भेदतमछाया, उज्जोदादवसहिया पुग्गल-दव्वस्स पज्जाया ।

अर्थ-- शब्द, बन्ध, सूक्ष्म, स्थूल, सस्थान, भेद, अन्धकार, छाया, उद्योत, आताप ये

अथवा इन सहित पुद्गलद्रव्यके पर्याय है।

प्रश्न १-- पर्याय किसे कहते है ?

उत्तर-- गुणोकी अवस्थाओंको पर्याय कहते है।

प्रश्न २--पर्याय कितने प्रकारके होते है ?

उत्तर-- पर्याय दो प्रकारके होते है--(१) अर्थपर्याय, (२) व्यञ्जनपर्याय। व्यञ्जन = स्थूल

प्रश्न ३-- अर्थपर्याय किसे कहते है ?

उत्तर-- अगुरुलघु गुणके निमित्तसे द्रव्यमें होने वाली षड्गुण हानि वृद्धि रूप, (अनंत भाग वृद्धि, असंख्यात भाग वृद्धि, सख्यात भाग वृद्धि, संख्यात गुण वृद्धि, असंख्यात गुण वृद्धि, अनन्त गुण वृद्धि, अनन्त भाग हानि, असंख्यात भाग हानि, संख्यान भाग हानि, संख्यात गुण हानि, असंख्यात गुण हानि, अनन्त गुण हानि रूप) अन्तः परिणमनको अर्थपर्याय कहते है। यह अर्थपर्याय सूक्ष्म है व वचनके अगोचर है।

प्रश्न ४-- व्यञ्जनपर्याय किसे कहते है ?

उत्तर-- गुणोंकी व्यक्त अवस्थाको व्यञ्जनपर्याय कहते है।

प्रश्न ५-- व्यञ्जनपर्यायके कितने भेद हैं ?

उत्तर-- व्यञ्जनपर्यायके २ भेद है—(१) गुणव्यंजन पर्याय, (२) द्रव्यव्यंजन पर्याय।

प्रश्न ६-- अर्थपर्याय किसे कहते है ?

उत्तर-- वस्तुके प्रदेशवत्त्वगुणके अतिरिक्त अन्य समस्त गुणोके परिणमनको अर्थपर्याय कहते है।

प्रश्न ७-- गुणव्यजन पर्यायके कितने भेद है ?

उत्तर—गुणव्यंजन पर्यायके २ भेद है—(१) स्वभाव गुणव्यजन पर्याय, (२) विभाव गुणव्यंजन पर्याय।

प्रश्न ८—स्वभाव गुणव्यंजन पर्याय किसे कहते है ?

उत्तर-- परनिमित्त या सयोगके विना गुणोके शुद्ध परिणमनको स्वभाव व्यजनपर्याय कहते है। शुद्ध परिणमन सम व एक स्वरूप होता है।

प्रश्न ९—विभाव गुणव्यजन पर्याय किसे कहते हैं ?

उत्तर-- पर सयोग व निमित्तको पाकर होने वाले गुणोके विकृत परिणमनको विभाव गुणव्यंजनपर्याय कहते है। विभाव परिणमन विषम व नाना प्रकारका होता है।

प्रश्न १०—द्रव्यव्यञ्जन पर्याय किसे कहते है ?

उत्तर-- प्रदेशवत्त्व गुणके परिणमन व अनेक द्रव्योके सयोगसे होने वाले प्रदेश परिणमनको द्रव्यव्यञ्जन पर्याय कहते है।

प्रश्न ११—द्रव्यव्यञ्जन पर्यायके कितने भेद है ?

उत्तर—द्रव्यव्यञ्जन पर्यायके २ भेद है– (१) स्वभाव द्रव्यव्यञ्जन पर्याय, (२) विभाव द्रव्यव्यञ्जन पर्याय।

प्रश्न १२– स्वभाव द्रव्यव्यन्जन पर्याय किसे कहते है ?

उत्तर– परद्रव्यके सम्बन्धसे रहित केवल एक ही द्रव्यके प्रदेशपरिणमनको स्वभाव द्रव्यव्यञ्जन पर्याय कहते है।

प्रश्न १३– विभाव द्रव्यव्यन्जन पर्याय किसे कहते है ?

उत्तर—पर द्रव्यके निमित्तसे व सम्बन्ध सहित प्रदेशोके परिणमनको विभाव द्रव्य-व्यञ्जन पर्याय कहते है।

प्रश्न १४– पुद्गल द्रव्यमे गुणव्यजनपर्याय क्या क्या होते हैं ?

उत्तर– पाँच प्रकारका रूप, पाच प्रकारका रस, दो प्रकारका गध, ४ प्रकारका स्पर्श ये पुद्गल द्रव्यकी गुणव्यञ्जन पर्याय है।

प्रश्न १५– कौनसे चार प्रकारका स्पर्श गुणव्यन्जनपर्याय नही है ?

उत्तर-- गुरु, लघु, कोमल, कठोर, ये चार गुणव्यञ्जनपर्याय नही किन्तु द्रव्यपर्याय हैं।

प्रश्न १६-- गुरु, लघु, कोमल, कठोर ये चार व्यञ्जनपर्याय क्यो नही ?

उत्तर-- यदि ये गुणव्यञ्जन पर्याय होती तो परमाणु अवस्थामे ये रहना चाहिये थे, किन्तु परमाणुमे ये चार स्पर्श होते नही है अत. स्कधके याने द्रव्यव्यञ्जनपर्यायके साथ इनका सम्बन्ध होनेसे ये द्रव्य पर्याय ही है।

प्रश्न १७– इस गाथामे कहे गये पर्याय कौनसे पर्याय है ?

उत्तर—ये सब विभाव द्रव्यव्यन्जन पर्याय है।

प्रश्न १८– शब्द किसे कहते है ?

उत्तर—भाषावर्गणाके स्कन्धोके सयोग वियोगके कारण जो ध्वनिरूप परिणमन है उसे शब्द कहते है।

प्रश्न १९– शब्द कितने प्रकारके होते है ?

उत्तर—शब्द दो प्रकारके होते है-- (१) भाषात्मक और (२) अभाषात्मक।

प्रश्न २०—भाषात्मक शब्द किसे कहते है ?

उत्तर– त्रस जीवोके योगके कारण होने वाली ध्वनिको भाषात्मक शब्द कहते है।

प्रश्न २१– भाषात्मक शब्द कितने प्रकारके है ?

उत्तर—भाषात्मक शब्द दो प्रकारके है-- (१) अक्षरात्मक और (२) अनक्षरात्मक।

प्रश्न २२– अक्षरात्मक भाषा कितने प्रकारकी होती है ?

उत्तर— संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, मागधी, पाली, हिन्दी, उर्दू, इंगलिश, जर्मनी, फ्रान्च, बगाली, गुजराती, तेलगू, कनाडी, मद्रासी, पजाबी, अरबी और मराठी आदि अनेक प्रकारकी अक्षरात्मक भाषा होती है। यह आर्य म्लेच्छ मनुष्य आदिके होती है। इस भाषासे व्यवहारकी प्रवृत्ति होती है।

प्रश्न २३– अनक्षरात्मक भाषा किनके होती है ?

उत्तर– द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय व सज्ञी पञ्चेन्द्रियतिर्यंचोके अनक्षरात्मक भाषा होती है। सर्वज्ञदेवकी दिव्यध्वनि भी अनक्षरात्मक भाषा कहलाती है।

प्रश्न २४– ये भाषात्मक शब्द तो जीवोके शब्द है इनको पुद्गल द्रव्यकी पर्याय क्यो कहा ?

उत्तर– यद्यपि भाषात्मक शब्दकी उत्पत्ति जीवके संयोगसे है, जीवने जो पहिले शब्दादि पञ्चेन्द्रिय विषयोके रागवश सुस्वर या दुःस्वर प्रकृतिका बन्ध किया था उसके उदयके निमित्तसे है, तथापि निश्चयसे भाषावर्गणा नामक पुद्गल स्कन्धके ही परिणमन है, अतः भाषात्मक शब्द पुद्गल द्रव्यके पर्याय कहे गये है।

प्रश्न २५—इन शब्दोके वर्तमान पर्यायके समय जीव किस प्रकार निमित्त होता है ?

उत्तर—जीवके इच्छा उत्पन्न होती है कि मै इस प्रकार बोलूं। इच्छाके निमित्तसे आत्माके प्रदेशोका योग होता है। उस योगके निमित्तसे एकक्षेत्रावगाहस्थित शरीरका वात (वायु) चलता है। शरीरवायु चलनेके निमित्तसे ओठ, जिह्वा, कण्ठ, तालका तदनरूप हलन चलन होता है उसके निमित्तसे भाषावर्गणाका शब्दरूप परिणमन होता है।

प्रश्न २६—दिव्यध्वनिके शब्दमे आत्मा किस प्रकार निमित्त होता है ?

उत्तर—पूर्वकालमे सम्यग्दृष्टि आत्माने जगतके जीवोके प्रति परमकरूणारूप भाव किये "इनका मोह किसी प्रकार छूटे सुमार्गपर लग जावे आदि", इस प्रकारकी भावनासे जो विशिष्ट पुण्यप्रकृति एव सुस्वर प्रकृतिका बध किया उसके उदयको निमित्त पाकर, भव्य जीवोके पुण्योदय होनेपर, योगके निमित्तसे अर्हंत परमेष्ठीके सर्वाङ्गसे भाषावर्गणावोका अनक्षरात्मक भाषारूप परिणमन होता है।

प्रश्न २७— अभाषात्मक शब्द कितने प्रकारके है ?

उत्तर—अभाषात्मक शब्द २ प्रकारके है—(१) प्रायोगिक, (२) वैस्रसिक।

प्रश्न २८—प्रायोगिक शब्द किसे कहते है ?

उत्तर—यथा योग्य दो पौद्गलिक स्कधोके प्रयोग सम्बन्ध होनेपर जो शब्द उत्पन्न होते है उन्हे प्रायोगिक शब्द कहते है।

प्रश्न २९—प्रायोगिक शब्द कितने प्रकारके होते है ?

उत्तर—प्रायोगिक शब्द चार प्रकारके होते है—(१) तत, (२) वितत, (३) घन और (४) सुषिर ।

प्रश्न ३०– तत शब्द किसे कहते है ?

उत्तर—वीणा, सितार आदिके तारोसे उत्पन्न होने वाले शब्दको तत शब्द कहते हैं।

प्रश्न ३१-- वितत शब्द किसे कहते है ?

उत्तर—ढोल, नगारे आदिके चर्मसे उत्पन्न होने वाले शब्दको वितत शब्द कहते है ।

प्रश्न ३२– घन शब्द किसे कहते है ?

उत्तर—कासेके घण्टे आदिके प्रयोगसे उत्पन्न होने वाले शब्दको घन शब्द कहते हैं ।

प्रश्न ३३– सुषिर शब्द किसे कहते है ?

उत्तर– बशी, तुरी आदिको फूककर बजानेसे उत्पन्न हुए शब्दको सुषिर शब्द कहते है ।

प्रश्न ३४—मनुष्यादिके व्यापारसे उत्पन्न होने वाले इन शब्दोको केवल पुद्गलके पर्याय क्यो कहे जा रहे है ?

उत्तर—मनुष्यादिका व्यापार तो प्रकट जुदा है, निमित्तमात्र है। उक्त सभी शब्द केवल पुद्गलके ही पर्याय है ।

प्रश्न ३५—वैस्रसिक शब्द किसे कहते है ?

उत्तर-- विस्रसा अर्थात् स्वभावसे याने किसी दूसरेके प्रयोग बिना जो शब्द उत्पन्न होते है उन्हे वैस्रसिक शब्द कहते है । जैसे मेघगर्जनाके शब्द आदि ।

प्रश्न ३६— बन्ध किसे कहते है ?

उत्तर—दो या अनेक पदार्थोके परस्पर बन्ध हो जानेको बन्ध कहते है । जो स्कन्ध दिखते है उनमे बन्ध पर्याय है वह पौद्गलिक बन्ध है । कर्म और शरीरका बन्ध भी पौद्गलिक है ।

प्रश्न ३७—सूक्ष्म किसे कहते है ?

उत्तर—अल्पपरिमाणको सूक्ष्म कहते है । यह सूक्ष्म दो प्रकारका होता है—(१) साक्षात् सूक्ष्म और (२) अपेक्षाकृत सूक्ष्म ।

प्रश्न ३८—साक्षात् सूक्ष्म किसे कहते है ?

उत्तर—जिससे सूक्ष्म अन्य कोई न हो अर्थात् जिसकी सूक्ष्मता किसीकी अपेक्षा रखकर न बनी हो । जैसे—परमाणु ।

प्रश्न ३९—अपेक्षाकृत सूक्ष्म किसे कहते है ?

उत्तर—जो सूक्ष्मता किसीकी अपेक्षा रखकर प्रतीत हो । जैसे आमसे आवला

सूक्ष्म है।

प्रश्न ४०– स्थूल किसे कहते है ?

उत्तर– बड़े परिमाण वालेको स्थूल कहते है। यह भी २ प्रकारका है– (१) उत्कृष्ट स्थूल और (२) अपेक्षाकृत स्थूल।

प्रश्न ४१– उत्कृष्ट स्थूल कौन है ?

उत्तर—समस्त लोकरूप महास्कन्ध सर्वोत्कृष्ट स्थूल है।

प्रश्न ४२—अपेक्षाकृत स्थूल किसे कहते है ?

उत्तर–जो स्थूलता किसीकी अपेक्षा रखकर प्रतीत हो। जैसे आंवलेसे आम स्थूल है।

प्रश्न ४३-- सूक्ष्म और स्थूल पुद्गल द्रव्य विभाव व्यञ्जनपर्याय क्यों माने गये ?

उत्तर—सूक्ष्म और स्थूल पुद्गल द्रव्यके किसी गुणके परिणमन नही है, किन्तु अनेक प्रदेशों (परमाणुवो) के सम्बन्धसे व उनके वियोगसे सूक्ष्मता स्थूलता होती है, अतएव ये विभावव्यंजन पर्याय है।

प्रश्न ४४– सस्थान किसे कहते है ? आकार

उत्तर—मूर्त पदार्थके आकारको सस्थान कहते है। समचतुरस्रसंस्थान, न्यग्रोधसस्थान, स्वातिसंस्थान, कुब्जकसस्थान, वामनसस्थान, हुडकसस्थान– ये भी पुद्गलद्रव्यकी विभाव व्यजनपर्याय है और शरीरके अतिरिक्त गोल त्रिकोण आदि अन्य स्कन्धोके सस्थान भी पुद्गल द्रव्यके विभावव्यजनपर्याय है तथा अन्य अव्यक्त सस्थान भी पुद्गलके विभावव्यजनपर्यायें है।

प्रश्न ४५—समचतुरस्रादि सस्थान तो जीवके है उन्हे पुद्गलका कैसे कहते ?

उत्तर—ये संस्थान शरीरके आकार है शरीर पौद्गलिक है चैतन्यभावसे भिन्न है इसलिये वे भी वास्तवमे पुद्गलके विभावव्यञ्जन पर्याय है।

प्रश्न ४६—भेद किसे कहते है ?

उत्तर—संयुक्त पदार्थके खण्ड होनेको भेद कहते है।

प्रश्न ४७– भेद कितने प्रकारका होता है ?

उत्तर– घनखण्ड, द्रवखण्ड आदि अनेक प्रकारका भेद होता है। जैसे गेहूका चूर्ण, घी का हिस्सा आदि।

प्रश्न ४८—तम किसे कहते है ?

उत्तर—देखनेमे बाधा डालने वाले अन्धकारको तम कहते है।

प्रश्न ४६—तम तो प्रकाशके अभावको कहते है, वह पुद्गलपर्याय कैसे है ?

उत्तर—प्रकाशको अन्धकारका अभाव बताकर प्रकाशका भी तो लोप किया जा सकता। दृष्टिका साधक और रोधक होनेसे एकको सद्भावरूप और एकको अभावरूप कहना

ठीक नही। दोनो ही सद्भावरूप है। जैसे प्रकाश स्कन्धके प्रदेशोकी अवस्था है वैसे अन्धकार भी स्कन्धके प्रदेशोकी अवस्था है।

प्रश्न ५०—छाया किसे कहते है ?

उत्तर—किसी पदार्थके निमित्तसे प्रकाशयुक्त अथवा स्कन्ध पदार्थपर प्रतिविम्ब होने को छाया कहते है। जैसे वृक्षकी पृथ्वीपर छाया, दर्पणमे मनुष्यका प्रतिबिम्ब जलमे चन्द्रमाका प्रतिबिम्ब आदि।

प्रश्न ५१—ये प्रतिविम्ब वृक्ष, मनुष्य और चन्द्रके है, अतः उन्हीके पर्याय होना चाहिये ?

उत्तर—वृक्ष, मनुष्य, चन्द्र तो निमित्त मात्र है, ये प्रतिबिम्ब तो पृथ्वी दर्पण जलके पर्याय हैं, क्योकि जो जिसके प्रदेशमे परिणमता है वह उसकी ही पर्याय होती है।

प्रश्न ५२—उद्योत किसे कहते है ?

उत्तर—अधिक उजाला उत्पन्न नही करने वाले विशिष्ट प्रकाशको उद्योत कहते हैं।

प्रश्न ५३—यह उद्योत किन पदार्थोमे होता है ?

उत्तर—चन्द्रविमानमे, विशिष्ट रत्नोमे जुगुनू आदि तिर्यंच जीवोके शरीरमे उद्योत होता है। यह उद्योत भी रूप, रस, गन्ध और स्पर्शगुणका परिणमन नही है किन्तु पुद्गल द्रव्यकी द्रव्यपर्याय है।

प्रश्न ५४—आतप किसे कहते है ?

उत्तर—जो मूलमे तो शीतल हो, किन्तु अन्य पदार्थोके उष्णता उत्पन्न होनेमे निमित्त हो उसे आतप कहते है।

प्रश्न ५५—आतप किन पदार्थोमे होता है ?

उत्तर—सूर्यविमानमे, सूर्यकान्त आदि मणियोमे यह आतप होता है। आतप जीवके कार्योमे से केवल पृथ्वीकायमे ही होता है। आतप भी रूप, रस, गन्ध और स्पर्शका परिणमन ही नही है किन्तु पुद्गलकी द्रव्यपर्याय है।

प्रश्न ५६—गाथोक्त १० पर्यायोके अतिरिक्त पुद्गलकी अन्य भी द्रव्यपर्यायें होती है या नही ?

उत्तर—ये १० पर्याये तो मुख्यतासे बताई है इनके अतिरिक्त और भी द्रव्यपर्यायें है। इनकी पहिचान मुख्य यह है कि जो रूप, रस, गन्ध, स्पर्श गुणका परिणमन तो न हो और स्कन्ध प्रदेशोमे परिणमन पाया जावे उन्हे पुद्गलकी द्रव्यपर्यायें जानना चाहिये। जैसे—रबडका प्रसार, दूधसे दही होना, गाडीको गति, मुट्ठीका बधना आदि।

प्रश्न ५७—गुरु, लघु, कोमल, कठोर ये गुणपर्याय है या द्रव्य पर्याय है ?

उत्तर— वास्तवमे तो ये द्रव्यपर्यायें है किन्तु स्पर्शन इन्द्रियके विषय होनेसे इन्हे स्पर्शगुणके पर्यायरूप उपचारसे माना है ।

प्रश्न ५८—प्रकाश भी चक्षुरिन्द्रियका विषय होनेसे रूप गुणका पर्याय माना जाना चाहिये ?

उत्तर— प्रकाशरूप गुण ही काला, पीला, नीला, सफेद इन पाँच पर्यायोसे भिन्न है । प्रकाश निमित्तके सद्भावको पाकर बनता और नष्ट होता है किन्तु रूपकी पर्यायें इस तरह न बनती न नष्ट होती है । अतः प्रकाश द्रव्यपर्याय ही है ।

प्रश्न ५९— स्कन्ध होनेपर क्या परमाणुकी स्वभावव्यजन पर्यायका बिल्कुल अभाव हो जाता है ?

उत्तर— शुद्धनयसे याने स्वभावदृष्टिसे स्कन्धावस्थामें भी परमाणुके अन्तःस्वभावव्यंजनपर्याय है, किन्तु स्निग्धत्व रूक्षत्व विभावके कारण स्वास्थ्यभाव (अपनेमे ही रहे ऐसे भाव) से भ्रष्ट होकर परमाणु विभावव्यजनपर्याय रूप हो जाते है । जैसे शुद्ध (स्वभाव) दृष्टिसे संसारावस्थामे भी अन्तर्जीवके स्वभावव्यंजनपर्याय (सिद्धस्वरूप) है, किन्तु रागद्वेष विभावके कारण स्वास्थ्यभावसे भ्रष्ट होकर मनुष्य, तिर्यञ्च आदि विभावव्यञ्जन पर्यायरूप हो रहा है ।

प्रश्न ६०— इस गाथासे हमे किस शिक्षापर ध्यान ले जाना चाहिये ?

उत्तर— विभावव्यञ्जन पर्याय होनेपर भी उस पर्यायको गौण कर मात्र परमाणुपर लक्ष्य देकर वहां केवल शुद्धप्रदेशरूप परमाणुका ध्यान करना चाहिये और इसी प्रकार मनुष्यादि विभावव्यञ्जन पर्याय होनेपर भी उस पर्यायको गौण कर मात्र शुद्ध जीवास्तिकायपर लक्ष्य देकर वहां शुद्धजीवास्तिकायका ध्यान करना चाहिये ।

इस प्रकार पुद्गल द्रव्यका वर्णन करके अब धर्मद्रव्यका वर्णन किया जाता है—

गइपरिणयाण धम्मो पुग्गलजीवाण गमणसहयारी ।
तोय जह मच्छाण अच्छंता णेव सो णेई ॥१७॥

अन्वय— गइपरिणयाण पुग्गलजीवाण गमण सहयारी धम्मो । जह मच्छाणं तोय । सो अच्छता णेव णेई ।

अर्थ—गमनमे परिणत पुद्गल और जीवोके जो गमनमे सहकारी निमित्त है उसे धर्मद्रव्य कहते है । जैसे जल मछलीके गमनमे सहकारी है । धर्मद्रव्य ठहरने वाले जीव या पुद्गलोको कभी नही ले जाता है ।

प्रश्न १—गमनसे यहां क्या तात्पर्य है ?

उत्तर— एक क्षेत्रसे दूसरे क्षेत्रमे चले जाना, यही गमनका तात्पर्य है । थोड़ा हिलना, गोल चलना, यथा कथंचित् मुड़ना आदि सब क्रियायें गमनमे अन्तर्गत है ।

प्रश्न २— गमन क्रिया कितने द्रव्योमे होती है ?

उत्तर—गतिक्रिया केवल जीव और पुद्गल इन दो जातिके द्रव्योमे होती।

प्रश्न ३— धर्म, अधर्म, आकाश व कालमे गतिक्रिया क्यो नही होती है ?

उत्तर—जीव पुद्गलमे ही क्रियावती शक्ति है। धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य और कालद्रव्य—इन चार द्रव्योमे क्रियावती शक्ति नही है, अत. इनमे गति क्रिया नही हो सकती।

प्रश्न ४— धर्मद्रव्य स्वय निष्क्रिय है वह दूसरोकी गतिमे कैसे कारण होगा ?

उत्तर— जैसे जल स्वय न चलता हुआ भी मछलीके गमनमे सहकारी कारण है, वैसे धर्मद्रव्य भी स्वय निष्क्रिय होकर जीव पुद्गलके गमनमे सहकारी कारण है।

प्रश्न ५—धर्मद्रव्य अमूर्त है उसका तो किसीसे सयोग भी नही हो सकता, फिर यह दूसरोकी गतिमे कैसे कारण हो सकता है ?

उत्तर— जैसे सिद्धभगवान अमूर्त है तो भी वे "मै सिद्ध समान अनन्त गुण स्वरूप हू" इत्यादि भावनारूप सिद्धभक्ति करने वाले भव्य जीवोके सिद्धगतिमे सहकारी कारण है, वैसे धर्मद्रव्य अमूर्त है तथापि अपने उपादान कारणसे चलने वाले जीव व पुद्गलोके गमनमे सहकारी कारण है।

प्रश्न ६—धर्मद्रव्य गतिमे सहकारी कारण है इसका मर्म क्या है ?

उत्तर—कोई भी द्रव्य किसी भी अन्य द्रव्यकी परिणतिका कर्ता या प्रेरक नही होता। जो द्रव्य जिस योग्यता वाला है वह विशिष्ट निमित्तको पाकर स्वय अपने परिणमनसे परिणमता है। इसी न्यायसे गमन क्रियामे परिणत जीव, पुद्गल धर्मद्रव्यको निमित्तमात्र पाकर स्वय अपने उपादान कारणसे गतिक्रियारूप परिणम जाते है। धर्मद्रव्य किसीको प्रेरणा करके चलाता नही है। यही सहकारी कारणका भाव है।

प्रश्न ७—धर्मद्रव्य कितने हैं ?

उत्तर—धर्मद्रव्य एक ही है और उसका परिमाण समस्त लोकप्रमाण है।

प्रश्न ८—धर्मद्रव्यमे कितने गुण है ?

उत्तर— धर्मद्रव्यमे अस्तित्व, वस्तुत्व आदि अनेक सामान्य गुण है और अमूर्तत्व निष्क्रियत्व आदि अनेक साधारण गुण है। धर्मद्रव्यमे असाधारण गुण गतिहेतुत्व है।

प्रश्न ९— सामान्य गुण न माननेपर क्या हानि है ?

उत्तर— सामान्य गुण न माननेपर वस्तुकी सत्त्व मात्र ही सिद्ध नही होता।

प्रश्न १०—असाधारणगुण न माननेपर क्या हानि है ?

उत्तर— असाधारणगुण न माननेपर वस्तुकी अर्थक्रिया ही नही हो सकती अर्थात्

असाधारण गुण बिना वस्तु ही क्या रहेगी ?

प्रश्न ११– क्या सब द्रव्योंमे असाधारण गुण होते है ?

उत्तर-- सभी द्रव्योंमें एक असाधारण स्वभाव (गुण) होता है।

प्रश्न १२—जीवद्रव्यका असाधारण गुण कौन है ?

उत्तर—जीवद्रव्यका असाधारण गुण चैतन्य है। यह चैतन्य ज्ञान, दर्शन और आनन्द स्वरूप है।

प्रश्न १३– पुद्गल द्रव्यका असाधारण गुण क्या है ?

उत्तर– पुद्गलद्रव्यका असाधारण गुण मूर्तत्व है। यह मूर्तत्व, रूप, रस, गध, स्पर्शमय है।

प्रश्न १४—धर्मद्रव्यका असाधारण गुण क्या है ?

उत्तर—धर्मद्रव्यका असाधारण गुण गतिहेतुत्व है।

प्रश्न १५-- अधर्मद्रव्यका असाधारण गुण क्या है ?

उत्तर—अधर्मद्रव्यका असाधारण गुण स्थितिहेतुत्व है।

प्रश्न १६-- कालद्रव्यका असाधारण गुण क्या है ?

उत्तर– कालद्रव्यका असाधारण गुण परिणमनहेतुत्व है।

प्रश्न १७– आकाशद्रव्यका असाधारण गुण क्या है ?

उत्तर–आकाशद्रव्यका असाधारण गुण अवगाहनहेतुत्व है।

प्रश्न १८—धर्मद्रव्य परिणमनशील है या नही ?

उत्तर—धर्मद्रव्य परिणमनशील है, क्योकि यह एक सत् है। प्रत्येक सत् परिणमनशील होते है, (किन्तु धर्मद्रव्यका परिणमन केवल ज्ञानगम्य है। जैसे शुद्ध जीव (परमात्मा) का परिणमन केवल ज्ञानमय है। परिणमनशील होकर भी प्रत्येक द्रव्य नित्य ध्रुव होते है। यह धर्मद्रव्य भी नित्य ध्रुव है।)

प्रश्न १९—धर्मद्रव्य एक होकर सबके गमनमे सहकारी कारण कैसे हो सकता है ?

उत्तर—आकाशके एक प्रदेशसे दूसरे प्रदेशपर पहुचनेका नाम गति है। यह गति एक स्वरूप है, अतः एकस्वरूप गति कार्यमे एक धर्मद्रव्य कारण होता है।

प्रश्न २०—जिस स्थानका जीव पुद्गल चलता है क्या उस स्थानपर रहने वाले धर्मद्रव्यके प्रदेश गतिहेतु है या पूर्ण धर्मद्रव्य ?

उत्तर—पूर्ण धर्मद्रव्य गतिहेतु है। किसी भी द्रव्यकी यह परिस्थिति नही होती कि किसी द्रव्यकी क्रियामे किसी अन्य द्रव्यका कुछ भाग निमित्त कारण हो और कुछ न हो।

प्रश्न २१– धर्मद्रव्य एकप्रदेशी हो और वह कही भी स्थित हो वह एक ही सब

जीव पुद्गलोके गमनमे कारण क्यो न हो जाय ?

उत्तर—सभी साक्षात् निमित्तकारण एक क्षेत्रस्थित होते है। अतः धर्मद्रव्य लोक-लोकव्यापी ही जीव पुद्गलोके गमनमे कारण है।

प्रश्न २२—कुम्भकार तो भिन्न क्षेत्रमे रहकर भी घडेका निमित्त कारण है ?

उत्तर—कुम्भकार मिट्टीके परिणमनका साक्षात् निमित्तकारण नही है किन्तु आश्रयभूत निमित्तकारण है।

प्रश्न २३—साक्षात् निमित्तकारण किसे कहते है ?

उत्तर—अन्तररहित अन्वयव्यतिरेकी कारणको साक्षात् निमित्तकारण कहते है। जैसे– सब द्रव्योके परिणमन सामान्यका साक्षात् निमित्तकारण कालद्रव्य है, जीवके विभाव का निमित्तकारण धर्मद्रव्य है, जीव पुद्गलकी गतिका निमित्तकारण धर्मद्रव्य है, जीव पुद्गल की गतिनिवृत्तिका निमित्तकारण अधर्मद्रव्य है आदि।

प्रश्न २४– धर्मद्रव्य और धर्ममे क्या अन्तर है ?

उत्तर– धर्मद्रव्य तो एक स्वतन्त्र द्रव्य है जो गतिमे उदासीन निमित्त कारण है और धर्म आत्माके स्वभावको व आत्मस्वभावके अवलम्बनसे प्रकट होने वाली परिणतिको कहते है।

प्रश्न २५–कारण तो प्रेरक ही होते है, फिर धर्मद्रव्यको उदासीन निमित्त कारण क्यो कहा ?

उत्तर– कोई भी कार्य किसी अन्यकी प्रेरणासे नही होता, किन्तु परिणमने वाला उपादान कारण अपनी योग्यताके कारण अनुकूल निमित्तका सन्निधान पाकर स्वय परिणमता है।

प्रश्न २५—इस विषयका कोई दृष्टान्त है क्या ?

उत्तर– जैसे भव्य जीव निजशुद्धात्माकी अनुभूतिरूप निश्चय धर्मके कारण उत्तम संहनन, विशिष्ट तथा पुण्यरूप धर्मका सन्निधान रूप निमित्त कारण पाकर सिद्धगतिरूप परिणमते है। जैसे मत्स्यके चलनेमे जल उदासीन निमित्त कारण है। वैसे जीव पुद्गलोके चलने मे धर्मद्रव्य उदासीन निमित्त कारण है।

इस प्रकार धर्मद्रव्यका वर्णन करके अब इस गाथामे अधर्मद्रव्यका वर्णन करते है—

ठाण जुदाण अधम्मो पुग्गल जीवाण ठाणसहयारी।
छाया जह पहियाण गच्छंता णेव सो धरई ॥१८॥

अन्वय– ठाणजुदाण पुग्गल जीवाण ठाणसहयारी अधम्मो। जह पहियाण छाया। सो गच्छता णेव धरई।

अर्थ– ठहरते हुये पुद्गल और जीवोके ठहरनेमे सहकारी कारण अधर्मद्रव्य है। जैसे

मुसाफिरोंके ठहरनेमे छाया सहकारी कारण है। वह अधर्मद्रव्य गमन करते हुये जीव पुद्गलो को नही ठहराता है।

प्रश्न १-- ठहरनेसे यहाँ क्या तात्पर्य है ?

उत्तर— गमन करके ठहरना यहाँ ठहरनेका तात्पर्य है।

प्रश्न २-- इस प्रकारका ठहरना कितने द्रव्योमे होता ?

उत्तर—यह स्थिति केवल जीव और पुद्गल इन दो द्रव्योमे होती क्योकि गमनक्रिया भी इन ही दो द्रव्योमे पाई जाती है।

प्रश्न ३— अधर्मद्रव्य अमूर्त है वह स्थितिमे कैसे कारण बनता ?

उत्तर—जैसे सिद्धभगवान अमूर्त होकर भी "सिद्ध हू, शुद्ध हू, अनन्तज्ञानादिसम्पन्न हूं" इत्यादि सिद्धभक्तिमे ठहरते हुए भव्य जीवोके स्वस्थितिमे बहिरङ्ग सहकारी कारण होते है वैसे अमूर्त होकर भी अधर्मद्रव्य ठहरते हुए जीव, पुद्गलोके ठहरनेमे सहकारी कारण होता है।

प्रश्न ४— अधर्मद्रव्य अप्रेरक है, वह कैसे जाते हुये जीव पुद्गलोको ठहरा सकता ?

उत्तर—जैसे जाते हुये मुसाफिर वटछायाको निमित्त पाकर अपने ही भावसे और कारणसे ठहर जाते है वैसे जाते हुये जीव और पुद्गल अधर्मद्रव्यको निमित्त पाकर अपने ही उपादानकारणसे ठहर जाते है। छाया मुसाफिरोको जबरदस्ती ठहराता नही है। अधर्मद्रव्य भी किसीको जबरदस्ती ठहराता नही है।

प्रश्न ५—अधर्मद्रव्यकी अन्य विशेषताये क्या है ?

उत्तर-- अधर्मद्रव्यका असाधारण लक्षण स्थितिहेतुत्व है। शेष सभी विशेषतायें धर्म-द्रव्यकी तरह है अर्थात् अधर्मद्रव्य एक है, लोकव्यापी है, अनन्तगुणात्मक है, निष्क्रिय है, परिणमनशील है, नित्य है आदि।

प्रश्न ६—अधर्मद्रव्यमे और अधर्ममे क्या अन्तर है ?

उत्तर—अधर्मद्रव्य एक स्वतन्त्र द्रव्य है। जो जीव व पुद्गलके ठहरनेमे सहकारी उदासीन कारण है और अधर्म आत्मस्वभावसे अन्य भावोको आत्मा समझने व अनात्मामे उपयोग लगानेको कहते है।

प्रश्न ७—क्या अधर्मास्तिकाय बिना जीव, पुद्गल स्थित हो सकते है ?

उत्तर—नही, जैसे धर्मास्तिकाय बिना जीव, पुद्गल गति नही कर सकते वैसे अध-र्मास्तिकाय बिना जीव, पुद्गल स्थित नही हो सकते।

प्रश्न ८—यदि ऐसा है तो धर्म, अधर्मद्रव्य प्रेरक व मुख्य कारण माने जाने चाहियें ?

उत्तर—धर्म, अधर्मद्रव्य गति, स्थितिके प्रेरक नही है और न ये मुख्य कारण है,

क्योकि य यदि प्रेरक या मुख्य कारण हो जायें तो इन दोनोका कार्य मात्सर्यपूर्वक होना चाहिये तथा जो द्रव्य गति करे वह गति करे, जो ठहरे वह ठहरे ही आदि अनेक दोष आते है।

प्रश्न ९– उदासीन कारण माननेपर यह अव्यवस्था क्यो नही होती ?

उत्तर—जीव, पुद्गल निश्चयसे अपने परिणमनसे गति, स्थिति करते है, हाँ यह बात अवश्य है कि वे धर्म अधर्म द्रव्यको निमित्त पाकर गति स्थिति करते है, अतः दोष नही है।

प्रश्न १०– धर्म, अधर्मद्रव्य क्या उपादेय तत्त्व है या हेय तत्त्व ?

उत्तर—शुद्धात्मतत्त्वसे भिन्न होनेसे ये भी हेय तत्त्व है।

इस प्रकार अधर्मद्रव्यका वर्णन करके आकाशद्रव्यका वर्णन करते है–

अवगासदाणजोग्ग जीवादीण वियाण आयास।
जेण्ह लोगागास अल्लोगागासमिदि दुविह ॥१९॥

अन्वय —जीवादीण अवगासदाणजोग्ग आयासं वियाण, लोगागासं अलोगागास दुविहं इदि जेण्ह।

अर्थ-- जीवादि सर्वद्रव्योको अवकाश देनेमे जो समर्थ है उसे आकाश जानो। वह आकाश लोकाकाश और अलोकाकाश इस तरह २ प्रकारका है। वह सब जिनेन्द्रदेवका सिद्धान्त है।

प्रश्न १-- आकाश द्रव्य कितने है ?

उत्तर– आकाश एक अखण्ड द्रव्य है।

प्रश्न २-- अखण्ड आकाशके लोकाकाश व अलोकाकाश ये भेद कैसे हो सकते है ?

उत्तर– ये भेद उपचारसे है—जितने आकाशदेशमे सर्वद्रव्य रहते है उतनेको लोकाकाश कहते है और उससे बाहरके आकाशको अलोकाकाश कहते हैं। आकाशमे स्वय भेद नही है।

प्रश्न ३—आकाशमे कितने गुण है ?

उत्तर-- आकाशमे असाधारण गुण तो अवगाहनाहेतुत्व है, इसके अतिरिक्त अस्तित्वादि अनन्तगुण भी है। यह द्रव्य भी निष्क्रिय और सर्वव्यापी है। इसका कही भी अन्त नही है।

प्रश्न ४– यदि सब द्रव्य आकाशमे रहते है तो सब आकाशमात्र रह जायगा ?

उत्तर--निश्चयसे तो प्रत्येक द्रव्य अपने खुदके प्रदेशोमे रहता है। बाह्यसम्बन्ध दृष्टि से ये आकाशक्षेत्रमे ही पाये जाते हैं अत· व्यवहारसे सब द्रव्य आकाशमे रहते है ऐसा कहा

जाता है।

प्रश्न ५– इस व्यवहारका प्रयोजन क्या है ?

उत्तर--इस व्यवहारका प्रयोजन हेय, उपादेय वस्तुओके परिचयका व्यवहार चलाना है।

प्रश्न ६-- आकाशके वर्णनसे यह प्रयोजन कैसे सिद्ध होता है ?

उत्तर-- यदि आकाशमें वस्तुओके रहनेका वर्णन न चले तो मोक्ष कहाँ, स्वर्ग कहाँ, नरक कहाँ आदि सुगमतया कैसे समझाये जा सकते ? जैसे निश्चयनयसे सहजशुद्ध चैतन्यरससे परिपूर्ण निजप्रदेशोमें ही सिद्धप्रभु विराजते है, फिर भी व्यवहारनयसे सिद्धभगवान मोक्ष-शिलामें स्थित है, ऐसा समझाना कैसे बनेगा ?

प्रश्न ७-- मोक्षस्थान कहाँ है ?

उत्तर– निश्चयनयसे तो जिन प्रदेशोमे आत्मा कर्मरहित हुआ वही मोक्षस्थान है, व्यवहारनयसे कर्मरहित आत्माओके ऊर्ध्वगमन स्वभावके कारण लोकाग्रमें पहुच जानेसे लोकाग्रभाग मोक्षस्थान बताया गया।

प्रश्न ८-- मनुष्य कहाँ रहता है ?

उत्तर—मनुष्यपर्याय विजातीयपर्याय होनेसे अनन्त पुद्गलोके प्रदेशोका व आत्मप्रदेशो का बद्धस्पृष्ट समुदाय है। सो वहाँ निश्चयसे प्रत्येक परमाणु अपने-अपने प्रदेशमे है और आत्मा अपने प्रदेशमे है। व्यवहारनयसे मनुष्य ढाई द्वीपके भीतर जो जहाँ है वहाँ रहता है।

प्रश्न ९—यह कौनसा व्यवहार है ?

उत्तर—यह उपचरित असद्भूतव्यवहार है। पर्यायरूपसे वर्णन है, अतः व्यवहार है, सहजस्वभावमे ऐसा सद्भूत नही है, अतः असद्भूत है। दूसरेके नामसे उपचार किया है, अत: उपचरित है।

प्रश्न १०—आकाश जीव, पुद्गलोकी गति, स्थितिका भी कारण है, फिर केवल अवगाहनहेतुत्व ही आकाशमे क्यों कहा ?

उत्तर– आकाश गति स्थितिका कारण नही है, क्योकि यदि आकाश गति स्थितिका कारण हो जाता तो लोक अलोकका विभाजन नही रहता। जो गति करता वह असीम क्षेत्र तक गति ही करता रहता व लोकाकाशके बाहर कही स्थित भी हो जाता। इस प्रकार आकाशद्रव्यका सामान्य वर्णन करके उसका विशेष वर्णन करते है—

धम्मा धम्मा कालो पुग्गल जीवा य संति जावदिये।
आयासे सो लोगो तत्तो परदो अलोगुत्तो ॥२०॥

अन्वय—जावदिये आयासे धम्मा धम्मा कालो पुग्गल जीवा य संति सो लोगो त्तोत परदो अलोगुत्तो।

अर्थ— जितने आकाशमे धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, कालद्रव्य, पुद्गलद्रव्य और जीवद्रव्य है वह तो लोकाकाश है और उससे परे अलोकाकाश कहा है।

प्रश्न १—लोकाकाशका क्या आकार है?

उत्तर—सात पुरुष एकके पीछे एक इस प्रकार खडे हो और कमरपर हाथ रखे व पैर पसारे खडे हो। जो आकार उस समय वहाँ है वैसा आकार लोकाकाशका है।

प्रश्न २—लोकाकाशका परिमाण कितना है?

उत्तर—सर्वलोकाकाशका परिमाण ३४३ घनराजूप्रमाण है। जैसे कि उदाहरणमे उस सप्तपुरुषाकारका परिमाण करीब ३४३ घन विलस्त है।

प्रश्न ३—लोकाकाशके कितने भाग है?

उत्तर—लोकाकाशके ३ भाग है– (१) अधोलोक, (२) मध्यलोक, (३) ऊर्ध्वलोक।

प्रश्न ४—अधोलोकका परिमाण क्या है?

उत्तर— अधोलोकका परिमाण १९६ घनराजू है। जैसे दृष्टान्तमे कमरसे नीचे तक सब १९६ घन विलस्त है।

प्रश्न ५— मध्यलोकका परिमाण कितना है?

उत्तर— मध्यलोकका परिमाण १ वर्गराजू मात्र है।

प्रश्न ६— ऊर्ध्वलोकका परिमाण क्या है?

उत्तर— ऊर्ध्वलोकका परिमाण १४७ घनराजू है। जैसे दृष्टान्तमे कमरके ऊपर गर्दन तक १४७ घन विलस्त है।

प्रश्न ७— लोकाकाशमे समस्त प्रदेश कितने है?

उत्तर— लोकाकाशमे समस्त प्रदेश असख्यात है।

प्रश्न ८—लोकाकाशके असख्यात प्रदेशोमे अनन्तानन्त जीव, अनन्तानन्त पुद्गल, एक धर्मद्रव्य, एक अधर्मद्रव्य, असख्यात कालद्रव्य इस प्रकार अनन्तानन्त द्रव्य कैसे समा जाते हैं?

उत्तर— जैसे एक दीपके प्रकाशमे अनेक दीप प्रकाश समा जाते है वैसे आकाशमे व अन्य द्रव्योमे भी अनेक द्रव्य समा जानेकी योग्यता है, अत अनेक द्रव्योका लोकाकाशमे अवगाह हो जाता है।

प्रश्न ९— यदि आकाशमे ऐसी अवगाहनशक्ति न मानी जावे तो क्या हानि है?

उत्तर— यदि आकाशमे अवगाहनशक्ति न हो तो लोकाकाशके एक-एक प्रदेशपर एक-एक परमाणु ही ठहरेंगे अन्य परमाणु होगे ही नही, ऐसी स्थितिमे जीवके विभाव परिणाम नही हो सकते, क्योकि एक या सख्यात परमाणु विभावमे निमित्त नही होते।

प्रश्न १०– अलोकाकाशमें तो कालद्रव्य है नही, फिर अलोकाकाशका परिणमन कैसे हो जाता है ?

उत्तर– लोकाकाशमे स्थित कालद्रव्यके निमित्तसे समस्त आकाशका परिणमन हो जाता है ।

प्रश्न ११– लोकाकाशमें रहने वाले कालद्रव्यका निमित्त पाकर लोकाकाशका ही परिणमन होना चाहिये ?

उत्तर– आकाश एक अखण्ड द्रव्य है, इसलिये आकाशमे जो एक परिणमन होता वह पूरे आकाशमे होता है । जैसे एक कीलीपर चाक घूमता है तो निमित्तभूत कीली तो चाक के बीचके भागके क्षेत्रमे ही है सो कीलीपर जितना चाकभाग है केवल उतना ही भाग नही घूमता, किन्तु पूरा चाक घूमता है ।

प्रश्न १२– इस आकाशद्रव्यके परिज्ञानसे हमे क्या शिक्षा लेनी चाहिये ?

उत्तर– यद्यपि व्यवहारदृष्टिसे देखनेपर यह सत्य है कि मेरा (आत्माका) वास आकाशप्रदेशोंमे है तथापि निश्चयदृष्टिसे मेरा वास आत्मप्रदेशोंमें ही है । इसके २ हेतु हैं– (१) अनादिसे ही तो आत्मा है और अनादिसे ही आकाश है । ऐसा भी कभी नही हुआ कि आत्मा कही अन्यत्र था और फिर आकाशमे रखा गया । (२) आत्मा स्वयं सत् है, अपने गुण पर्यायरूप है, आकाश भी स्वय सत् है वह अपने गुणपर्यायरूप है, इस कारण कोई भी द्रव्य किसी भी द्रव्यका आधार नही है । अत मै आकाशद्रव्यसे दृष्टि हटाकर केवल निज आत्मतत्त्वको देखूं यह शिक्षा हमे ग्रहण करनी चाहिये ।

इस प्रकार आकाशद्रव्यका वर्णन करके अब कालद्रव्यका प्ररूपण करते है----

दव्वपरिवट्टरूवो जो सो कालो हवेइ ववहारो ।
परिणामादीलक्खो वट्टणलक्खो य परमट्ठो ॥२१॥

अन्वय– जो परिणामादीलक्खो दव्व परिवट्टरूवो सो ववहारो कालो हवेइ य वट्टणलक्खो परमट्ठो ।

अर्थ—जो परिणाम, आदि द्वारा जाना गया व द्रव्योके परिवर्तनसे जिसकी मुद्रा है वह तो व्यवहार काल है और जिसका वर्तना ही लक्षण है वह निश्चयकाल है ।

प्रश्न १– व्यवहारकाल किसे कहते है ?

उत्तर—व्यवहारमे घटा, दिन आदिका जो व्यवहार किया जाता है उसे व्यवहारकाल कहते है ।

प्रश्न २—व्यवहारकालके कितने भेद है ?

उत्तर– समय, आवली, सेकिंड, मिनट, घंटा, दिन, सप्ताह, पक्ष, मास, वर्ष आदि

अनेक भेद है।

प्रश्न ३– परिणाम आदि शब्दसे क्या क्या ग्रहण करना चाहिये ?

उत्तर– परिणाम, क्रिया, परत्व अपरत्वका ग्रहण करना चाहिये। व्यवहारकाल इन लक्षणोसे जाना जाता है।

प्रश्न ४– परिणाम किसे कहते है ?

उत्तर—द्रव्योके परिणमनोको परिणाम कहते है। द्रव्य एक अवस्थासे दूसरी अवस्था धारण करता है। इन परिणमनोसे व्यवहारकालका निश्चय होता है।

प्रश्न ५–क्रिया किसे कहते है ?

उत्तर– एक क्षेत्रसे दूसरे क्षेत्रपर पहुचने तथा दूधका खलबलाना आदि हलन चलनको क्रिया कहते है। इन दो स्वरूपोके कारण क्रिया दो प्रकारकी हो जाती है– (१) देशान्तर-चलनरूप, (२) परिस्पदरूप।

प्रश्न ६—परत्व किसे कहते है ?

उत्तर—जेठेपन या प्राचीनताको परत्व कहते है। जैसे अमुक बालक २ वर्ष जेठा है आदि।

प्रश्न ७—अपरत्व किसे कहते है ?

उत्तर– लहुरेपन या अर्वाचीनता याने नवीनताको अपरत्व कहते। जैसे अमुक बालक २ वर्ष लहुरा है याने छोटा है आदि।

प्रश्न ८—वर्तना किसे कहते है ?

उत्तर—पदार्थके परिणमनमे सहकारी कारण होनेको वर्तना कहते हैं।

प्रश्न ९-- निश्चयकाल किसे कहते है ?

उत्तर—समय, मिनट आदि जिसकी पर्यायें होती है उस द्रव्यको निश्चयकाल कहते है। यह काल द्रव्य समस्त पदार्थोके परिणमनका सहकारी निमित्तकारण है, यही वर्तना काल द्रव्यका लक्षण है।

प्रश्न १०—क्या वर्तना व्यवहारकालका लक्षण नही है ?

उत्तर—वर्तना व्यवहारकालका भी लक्षण है, उस वर्तनाका अर्थ है एक समय मात्र का परिणमना। इससे समय नामका अनुपचरित व्यवहारकाल जाना जाता है।

प्रश्न ११—समयका कितना परिमाण है ?

उत्तर– एक परमाणु मद गतिसे एक प्रदेशसे दूसरे प्रदेशपर पहुचे उसमे जो काल व्यतीत होता है वह समय है। (अथवा नेत्रकी पलक गिरनेमे जितना काल लगता है वह असख्यात आवली प्रमाण है और एक आवलीमे असख्यात समय होते हैं सो आवलीके अस-

ख्यातवे भागमें से १ भागको समय कहते है ।

प्रश्न १२—पदार्थोंका परिणमन यदि कालद्रव्यके आधीन है तो परिणमन पदार्थोंका स्वभाव न ठहरेगा ?

उत्तर– पदार्थका परिणमना तो पदार्थका स्वभाव ही है इसीको द्रव्यत्व स्वभाव कहते है । कालद्रव्य तो परिणमते हुए पदार्थोंके परिणमनमें मात्र निमित्त कारण है ।

प्रश्न १३—यदि परमाणुको एक प्रदेशसे दूसरे प्रदेशपर पहुंचनेमे एक समय हो जाता है तब परमाणुको १४ राजूप्रमाण असख्यात प्रदेशोके उल्लंघनमे असख्यात समय लगते होगे ?

उत्तर– तीव्र गतिसे गमन करने वाला परमाणु एक समयमे १४ राजू गमन करता है । मन्द गतिसे गमनमे एक प्रदेशसे दूसरे प्रदेशपर पहुचना भी एक समयमे होता है । जैसे कोई पुरुष मन्दी चालसे २०० मील २० दिनमे जाता है वही विद्या सिद्ध होनेपर तीव्र गति से २०० मील १ दिनमें भी जा सकता है तो यह टाइम कही २० दिनका थोडे ही कहलावेगा इसी प्रकार परमाणु मन्द गति एक प्रदेश तक १ समयमे जाता है और तीव्र गतिसे असख्यात प्रदेश सीधा (१४ राजू) एक समयमे जाता है ।

प्रश्न १४– समय तो सत्य है किन्तु निश्चयकालद्रव्य कुछ प्रतीत नही होता ?

उत्तर—यदि समय ही समय मानते तो समय तो ध्रुव है नही, वह उत्पन्न होता और दूसरे क्षण नष्ट होता अतः समय पर्याय सिद्ध हुई । अब यह समय नामक पर्याय किस द्रव्यकी है । जिस द्रव्यकी है उसीका नाम कालद्रव्य कहा गया है ।

प्रश्न १५– कालद्रव्य तो अन्य सब पदार्थोंकी परिणतिका निमित्त कारण है– कालद्रव्यकी परिणतिका कौन निमित्त कारण है ?

उत्तर– कालद्रव्यकी परिणतिका निमित्त कारण वही कालद्रव्य है जेसे कि सब पदार्थोके अवगाहका कारण आकाश है और आकाशके अवगाहका कारण आकाश स्वयं है ।

प्रश्न १६—समयका उपादानकारण परमाणुका गमन है काल नही ?

उत्तर—समयका उपादानकारण यदि परमाणु है तो परमाणुके रूप, रसादि समयमें होना चाहिये सो तो है नही । इस कारण समयका उपादानकारण परमाणु नही है ।

प्रश्न १७– मिनटका उपादानकारण तो घडीके मिनट वाले कांटेका एक चक्कर लगाना तो प्रत्यक्ष दीखता ?

उत्तर– घड़ीका कांटा मिनटका कारण नही है, काटेकी वह क्रिया तो उतने समयका संकेत करने वाली है । यदि काटेकी पर्याय मिनट होता तो मिनटमे भी कांटेका रूप, रस आदि पाया जाना चाहिये, क्योंकि कार्य उपादानकारणके सदृश देखा जाता है ।

प्रश्न १८—समयादि व्यवहारकालके निमित्तकारण क्या क्या हो सकते है ?

उत्तर—परमाणुका मन्द गतिसे एक प्रदेशसे दूसरे प्रदेशपर जाना, नेत्रकी पलक उघाडना छिद्र वाले बर्तनसे जल या रेतका गिरना, सूर्यका उदय, अस्त होना आदि अनेक पुद्गलोके परिणमन व्यवहारकालके निमित्त कारण है।

प्रश्न १९—उक्त पुद्गल परिणमन क्या कारक कारण हैं या ज्ञापक कारण है ?

उत्तर— उक्त पुद्गल परिणमन समयादिके ज्ञापक कारण है, क्योकि वास्तवमे तो कालपरिणमनमे कालद्रव्य ही उपादानकारण है और कालद्रव्य ही निमित्त कारण है।

प्रश्न २०— इस तरह तो जीवादिके परिणमनमे कालद्रव्य भी ज्ञापक कारण होना चाहिये ?

उत्तर—काल परिणमन सदृश है तथा कालद्रव्यके ज्ञापकताकी कोई व्याप्ति भी नही बनती, अतः वह जीवादिपरिणमनका ज्ञापक कारण नही बन सकता।

प्रश्न २१—इस गाथासे हमे क्या ध्येय स्वीकार करना चाहिये ?

उत्तर—यद्यपि काललब्धिको निमित्त पाकर भी निजशुद्धात्माके सम्यक् श्रद्धान, ज्ञान आचरणरूप मोक्षमार्ग पाता है, किन्तु वहां आत्मा ही उपादानकारण और उपादेय मानना चाहिये, काल बाह्यतत्त्व होनेसे हेय ही है।

इस प्रकार कालद्रव्यका स्वरूप बताकर अब उनकी सख्या व स्थान बताते है—

लोयायास पदेसे इक्किक्के जे ठिया हु इक्केक्का।
रयणाण रासी इव ते कालाणू असखदव्वाणि ॥२२॥

अन्वय—इक्किक्के लोयायास पदेसे रयणाण रासी इव इक्का हु ठिया कालाणु ते असखदव्वाणि।

अर्थ—एक-एक लोकाकाशके प्रदेशपर रत्नोकी राशिके समान भिन्न-भिन्न एक-एक स्थित कालद्रव्य है और वे असख्यात है।

प्रश्न १— कालद्रव्यको कालाणु क्यो कहते है ?

उत्तर—कालद्रव्य एकप्रदेशी है अथवा परमाणु मात्रके प्रमाणका है, इसलिये इसे कालाणु कहते है।

प्रश्न २— अणु कितने तरहसे होते है ?

उत्तर— अणु चार प्रकारसे देखे जाते है— (१) द्रव्याणु, (२) क्षेत्राणु, (३) कालाणु और (४) भावाणु।

प्रश्न ३— द्रव्याणु किसे कहते है ?

उत्तर— जो द्रव्य याने पिण्डरूपसे अणु हो वह द्रव्याणु है। द्रव्याणु परमाणुको कहते

है। यह स्वतन्त्र द्रव्य है।

प्रश्न ४– क्षेत्राणु किसे कहते है ?

उत्तर– जो क्षेत्रमे अणु हो वह क्षेत्राणु है। क्षेत्राणु आकाशके एक प्रदेशको कहते है। यह स्वतन्त्र द्रव्य नही है, किन्तु आकाशद्रव्यका कल्पित देशांश है।

प्रश्न ५– कालाणु किसे कहते है ?

उत्तर– अणुप्रमाण कालद्रव्यको कालाणु कहते है। यह निश्चिय कालद्रव्य है। समयमे जो सबसे अणु हो उसे भी कालाणु कहते हैं यह समय नामकी पर्याय है।

प्रश्न ६– भावाणु किसे कहते है ?

उत्तर—जो भावरूपसे अणु हो, सूक्ष्म हो वह भावाणु है भावाणुसे तात्पर्य यहाँ चैतन्यसे है, अभेदविवक्षामे भावाणुसे जीवका भी ग्रहण होता है।

प्रश्न ७– कालद्रव्य एक ही माना जावे और उसके प्रदेश असख्यात मान लिये जावे तो धर्मद्रव्यकी तरह इसकी व्यवस्था हो जावे।

उत्तर– पदार्थोके परिणमन नाना प्रकारके होते है, उनके निमित्तभूत कालद्रव्य लोकाकाशके एक एक प्रदेशपर स्थित है। कालद्रव्य असख्यात ही है।

प्रश्न ८– क्या कालद्रव्य उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त है ?

उत्तर—कालद्रव्य उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त है। नवीन समयके पर्याय रूपसे तो उत्पाद होता है और पूर्व समय पर्यायके व्यय रूपसे व्यय होता है और उत्पाद व्ययके आधारभूत कालद्रव्यके रूपसे ध्रौव्य है।

प्रश्न ९– कालद्रव्य न मानकर केवल घडी घटा समयादि व्यवहारकाल ही माना जावे तो इसमे क्या आपत्ति है ?

उत्तर– व्यवहारकाल पर्याय है क्योकि वह व्यतिरेकी है और क्षणिक है। उस व्यवहार कालका आधारभूत कोई द्रव्य है ही। इस आधारभूत द्रव्यका नाम कालद्रव्य रखा है

प्रश्न १०—वास्तवमे तो कालद्रव्यका पर्याय समय ही है, समय समूहोमे कल्पना करके मिनट घण्टा आदि मान लिये, वे कैसे पर्याय हो सकते ?

उत्तर– वास्तवमे तो पर्याय समय ही है, अतः व्यवहारकाल भी वस्तुतः समय ही है तथापि वास्तविक समयोके समूह वाले मिनट घण्टा आदिका व्यवहार उपयोगी होनेसे उसे सबको भी व्यवहारकाल कहा है। इस प्रकार कालद्रव्यका वर्णन करके षड्द्रव्योमे से जो जो अस्तिकाय हैं उनका वर्णन किया जाता है–

एव छब्भेयमिद जीवाजीवप्पभेददो दव्वं।
उत्त कालविजुत्त णायव्वा पच अत्थिकाया दु ॥२३॥

अन्वय— एवं जीवाजीवप्पभेददो दव्व छब्भेय उत्त, दु कालविजुत्त पच अत्थिकाया णायव्वा ।

अर्थ— इस प्रकार एक जीव और ५ अजीवोके भेदसे यह सब द्रव्य ६ प्रकार वाला कहा गया है, परन्तु कालद्रव्यको छोड़कर शेष ५ द्रव्य अस्तिकाय जानना चाहिये ।

प्रश्न १— द्रव्य वास्तवमे क्या ६ ही होते है ?

उत्तर—द्रव्य तो वास्तवमे अनन्तानन्त है क्योकि स्वरूपसत्त्व सबका भिन्न-भिन्न ही है । इसका प्रमाण स्पष्ट है कि प्रत्येक पदार्थका चतुष्टय अपने आपमे है । एक द्रव्यका चतुष्टय अन्य द्रव्यमे नही पहुचता । फिर भी जो जो द्रव्य असाधारणगुणसे भी पूर्ण समान है उनकी एक-एक जाति मानकर द्रव्यको ६ प्रकारकी कहा है ।

प्रश्न २—चतुष्टयसे तात्पर्य क्या है ?

उत्तर—द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव इन चारको यहाँ चतुष्टय शब्दसे कहा गया है ।

प्रश्न ३—द्रव्य किसे कहते है ?

उत्तर—जो स्वय परिपूर्ण सत् है, एक पिण्ड है उसे द्रव्य कहते है । अथवा क्षेत्र-काल भावको एक समुदायमे द्रव्य कहते हैं ।

प्रश्न ४—क्षेत्र किसे कहते है ?

उत्तर—वस्तुके प्रदेशोको क्षेत्र कहते है । प्रत्येक वस्तुका कोई आकार होता है वह क्षेत्रसे ही होता है । इसका अपरनाम देशांश भी है ।

प्रश्न ५—काल किसे कहते है ?

उत्तर—परिणमन याने पर्यायको काल कहते है । प्रत्येक वस्तु किसी न किसी पर्याय (हालत) मे होती है । पर्यायका अपरनाम गुणांश भी है ।

प्रश्न ६—भाव किसे कहते है ?

उत्तर—पदार्थके स्वभावको भाव कहते है । शक्ति, गुण, शील, धर्म, ये इसके पर्यायवाची नाम है ।

प्रश्न ७—कोई पदार्थ किसी अन्यके चतुष्टयरूप नही है इसका स्पष्ट भाव क्या ?

उत्तर— एक पदार्थ दूसरे पदार्थके द्रव्यरूप नही है अर्थात् प्रत्येक पदार्थका स्वरूप-सत्त्व जुदा जुदा है । प्रदेश भी जुदे जुदे है यह क्षेत्रकी भिन्नता है । कोई पदार्थ किसी अन्य पदार्थकी परिणतिसे नही परिणमता यह कालकी भिन्नता है । कोई पदार्थ किसी अन्य पदार्थके गुणरूप नही होता है यह भावकी भिन्नता है । इस तरह अनेकान्तात्मक वस्तुमे रहने वाले अनेक धर्म स्याद्वादसे सिद्ध हो जाते है ।

प्रश्न ८— अनेकान्त किसे कहते है ?

उत्तर—जिसमे अनेक अन्त याने धर्म हो उसे अनेकान्त कहते है। इस सिद्धान्तका नाम भी अनेकान्त है। इसको प्रकट करनेकी पद्धति स्याद्वाद है।

प्रश्न ६– स्याद्वाद किसे कहते है ?

उत्तर– अनेकान्तात्मक वस्तुके धर्मोको स्यात् अर्थात् अपेक्षासे वाद याने कहना स्याद्वाद है। स्याद्वादका दूसरा नाम अपेक्षावाद भी है।

प्रश्न १०– सप्रतिपक्ष एक धर्मको स्याद्वाद कितने प्रकारसे कह सकता है ?

उत्तर– सप्रतिपक्ष एक धर्मको स्याद्वाद सात प्रकारसे कह सकता है। उस धर्मके विषयमे अस्ति, नास्ति, अवक्तव्य, अस्ति अवक्तव्य, नास्ति अवक्तव्य, अस्ति नास्ति, अस्ति नास्ति अवक्तव्य। इसे नयसप्तभङ्गी कहते है।

प्रश्न ११– इन सातो भङ्गोका क्या भाव है ?

उत्तर—इन भङ्गोको एक धर्मका आश्रय करके घटावें। जैसे नित्य धर्मका प्रकरण बनाकर देखा तो वस्तु स्यात् नित्य है, वस्तु स्यात् नित्य नही (अनित्य) है, वस्तु स्यात् अवक्तव्य है, वस्तु स्यात् नित्य अवक्तव्य है, वस्तु स्यात् अनित्य अवक्तव्य है, वस्तु स्यात् नित्य और अनित्य है, वस्तु स्यात् नित्य अनित्य अवक्तव्य है।

प्रश्न १२– इन भङ्गोकी अपेक्षाये क्या-क्या है ?

उत्तर—वस्तु द्रव्यदृष्टिसे नित्य है, पर्यायदृष्टिसे अनित्य है, परमार्थसे युगपद्दृष्टिसे अवक्तव्य है, द्रव्य व युगपद्दृष्टिसे नित्य अवक्तव्य है, पर्याय व युगपद्दृष्टिसे अनित्य अवक्तव्य है, द्रव्य व पर्यायदृष्टिसे नित्य अनित्य है, द्रव्य व पर्यायदृष्टि एवं युगपद्दृष्टिसे नित्य अनित्य अवक्तव्य है।

प्रश्न १३– स्यात् शब्दका अर्थ क्या "शायद" नही होता ?

उत्तर—स्यात् शब्दका अर्थ "शायद होता ही नही, स्यात् शब्द अपेक्षा अर्थमे निपातित है।

प्रश्न १४– अस्तिकाय ५ ही क्यो होते हैं ?

उत्तर—अस्तिकाय सम्बन्धी सब विवरण आगे २४वी गाथामे किया जा रहा है, उससे जानना चाहिये।

इस प्रकार द्रव्यजाति और अस्तिकाय जातिकी संख्या बताकर अब अस्तिकायका निरुक्त्यर्थ सहित विवरण करते है—

संति जदो तेणेदे अत्थित्ति भणंति जिणवरा जम्हा।
काया इव वहुदेसा तम्हा काया य अत्थिकाया य ॥२४॥

अन्वय—जदो एदे संति तेण अत्थित्ति जिणवरा भणंति, जम्हा काया इव वहुदेसा

तम्हा काया, य अत्थिकाया ।

अर्थ– जिस कारण ये पूर्वोक्त पाच द्रव्य जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश है याने विद्यमान है उस कारण इन्हे "अस्ति" ऐसा जिनेन्द्रदेव प्रकट करते है और जिस कारण से ये कायके समान बहुत प्रदेश वाले है, इस कारण इन्हे काय कहते है। ये पाँचो पदार्थ अस्ति और काय है, इसलिये इन्हे अस्तिकाय कहते है ।

प्रश्न १– सत्का क्या लक्षण है ?

उत्तर– उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त सत् जो उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य करि युक्त हो उसे सत् कहते है । उक्त पाँचो पदार्थ उत्पादव्ययध्रौव्य युक्त हैं, इसी कारण 'अस्ति' सज्ञा उनकी युक्त है ।

प्रश्न २—उत्पाद किसे कहते है ?

उत्तर—नवीन पर्याय (वर्तमान पर्याय) के होनेको उत्पाद कहते है ।

प्रश्न ३– व्यय किसे कहते है ?

उत्तर– पूर्वपर्यायके अभाव होनेको व्यय कहते है ?

प्रश्न ४– जो है उसका नाश तो नही होता, फिर पूर्व पर्यायका अभाव कैसे हो गया ?

उत्तर—पर्याय सत् नही है, किन्तु सत् द्रव्यकी एक हालत है । पूर्वपर्यायके व्ययका तात्पर्य यह है कि द्रव्य पूर्व क्षणमे एक हालत (परिणमन) मे था अब वह वर्तमानमे अन्य परिणमनरूप परिणम गया । द्रव्यका परिणमन स्वभाव है । वर्तमान परिणमन पूर्व परिणमन नही है, अतः पूर्वपर्यायका व्यय हुआ ।

प्रश्न ५– ध्रौव्य किसे कहते है ?

उत्तर– अनादिसे अनन्तकाल तक पर्यायोसे परिणमते रहने याने बने रहनेको ध्रौव्य कहते है ।

प्रश्न ६– काल भी तो सत् है उसे "अस्ति" मे क्यो ग्रहण नही किया ?

उत्तर– यहा अस्तिकायका प्रकरण है, केवल 'अस्ति' का नही है । कालद्रव्य 'अस्ति' तो है, किन्तु काय नही है, अतः पाचो द्रव्योसे अस्तिकाय बनानेमे "अस्ति" घटाया है ।

प्रश्न ७– उत्पादव्ययध्रौव्य भिन्न समयमे होते है या एक ही साथ ?

उत्तर– ये तीनो एक ही साथ याने एक ही समयमे होते है, क्योकि वर्तमान परिणमन है उसे ही नवीन पर्यायकी दृष्टिसे उत्पाद कहते है और उसे ही पूर्वपर्यायका व्यय कहते है और ध्रौव्य तो सदा रहनेका नाम है ही । अनन्त पर्यायोमे जो एक सामान्य चला ही जाता है उस एक सामान्य स्वभावका ध्रौव्य निरन्तर है ।

प्रश्न ८– काय शब्दका निरुक्त्यर्थ क्या है ?

उत्तर—'चीयते इति कायः' जो सगृहीत हो उसे काय कहते है।

प्रश्न ९– क्या द्रव्योके प्रदेश सगृहीत हुए है ?

उत्तर—द्रव्योके प्रदेश संगृहीत नही हुए है, अनादिसे द्रव्य सहज स्वप्रदेशमय है। किन्तु संगृहीत आहारवर्गणाओके पुञ्जरूप काय याने शरीरकी तरह द्रव्योमे भी बहुप्रदेश है, अतः इन पाँचो द्रव्योको भी काय कहते है।

प्रश्न १०-- क्या शुद्ध द्रव्यमे भी बहुप्रदेशीपना रहता है ?

उत्तर—धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य व आकाशद्रव्य—ये तीन अस्तिकाय तो सदा शुद्ध ही रहते है और बहुप्रदेशी है। पुद्गलस्कन्धमे से किसी पुद्गलद्रव्यके शुद्ध होनेपर भी याने केवल परमाणु रह जानेपर भी शक्तिकी अपेक्षा बहुप्रदेशीपना है। जीव द्रव्यके शुद्ध होनेपर याने द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म इन सबसे मुक्त होनेपर भी वह बहुप्रदेशी रहता है।

प्रश्न ११-- अशुद्ध द्रव्यके शुद्ध हो जानेपर सत्ता कैसे रहती ?

उत्तर– पुद्गल स्कन्धमे से पुद्गल परमाणुके शुद्ध होनेपर भी और संसारी जीवके संसारसे मुक्त होनेपर भी सत्ता रहती है, क्योकि उनमे उत्पादव्ययध्रौव्य निरतर रहता ही है।

प्रश्न १२– परमाणुमे उत्पाद व्यय ध्रौव्य कैसे है ?

उत्तर—स्कन्ध रूपकी विभावव्यञ्जन पर्यायका व्यय शुद्ध परमाणुरूप स्वभावव्यञ्जन पर्यायका उत्पाद शुद्ध परमाणुमे है और द्रव्यत्व अथवा प्रदेश वही है सो ध्रौव्य है, इस तरह शुद्धपरमाणुमे उत्पादव्ययध्रौव्य है। यह व्यञ्जनपर्यायकी अपेक्षा उत्पादव्ययध्रौव्य हुआ।

प्रश्न १३—शुद्ध परमाणुमे अर्थ पर्यायकी अपेक्षा उत्पादव्ययध्रौव्य कैसे है ?

उत्तर—शुद्ध परमाणुमे वर्तमान रूप, रसादि गुणोकी पर्यायका उत्पाद व पूर्वकी रूप, रसादि पर्यायका व्यय और परमाणु वही है सो ध्रौव्य इस प्रकार उत्पाद व्यय ध्रौव्य है।

प्रश्न १४—शुद्ध जीवमे उत्पाद व्यय ध्रौव्य कैसे है ?

उत्तर—मनुष्यगतिरूप विभावव्यञ्जन पर्यायका व्यय व सिद्धपर्यायरूप स्वभाव व्यञ्जनपर्यायका उत्पाद और जीव प्रदेश वही है अथवा द्रव्यत्व वही है सो ध्रौव्य इस प्रकार शुद्ध जीवमे उत्पाद व्यय ध्रौव्य है। यह व्यञ्जनपर्यायकी अपेक्षा उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य है।

प्रश्न १५– अर्थपर्यायकी अपेक्षा शुद्ध जीवमे उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य कैसे है ?

उत्तर– परमसमाधिरूप कारणसमयसारका व्यय और अनन्तज्ञान, दर्शन, आनन्द विकास रूप कार्यसमयसारका उत्पाद व जीवद्रव्य वही है सो यही है ध्रौव्य, इस प्रकार शुद्ध जीवमे उत्पाद व्यय ध्रौव्य है।

प्रश्न १६-- यह तो मुक्त होनेके समयका उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य है, क्या मुक्त होनेपर भविष्यत्कालोमे भी उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य सिद्ध जीवोमे होता है ?

उत्तर-- वर्तमान केवलज्ञान आदि शुद्ध विकासका उत्पाद व पूर्वक्षणीय केवलज्ञान आदि शुद्ध विकासका व्यय व द्रव्य वही, इस प्रकार उत्पाद व्यय ध्रौव्य रहता है । सिद्ध जीवो मे शुद्ध विकासरूप शुद्ध परिणमन ही प्रतिसमय नव नव होता रहता है ।

प्रश्न १७-- किस द्रव्यमे कितने प्रदेश है ?

उत्तर-- प्रदेशोकी सख्याका वर्णन आगेकी गाथामे किया जा रहा है, सो उस गाथा से जानना चाहिये ।

अब किस द्रव्यके कितने प्रदेश है, यह वर्णन करते है—

होंति असखा जीवे धम्माधम्मे अणत आयासे ।
मुत्ते तिविह पदेसा कालस्सेगो ण तेण सो काओ ॥२५॥

अन्वय—जीवे धम्माधम्मे असखा, आयासे अणत, मुत्ते तिविह पदेसा होंति । कालस्सेगो तेण सो काओ णत्थि ।

अर्थ-- जीवद्रव्य, धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्यमे असख्यात प्रदेश है, आकाशमे अनन्त प्रदेश है और मूर्त (पुद्गल) द्रव्यमे सख्यात, असख्यात व अनन्त ऐसे तीनो प्रकारके प्रदेश होते है । काल द्रव्यके एक ही प्रदेश है इस कारण यह अस्तिकाय नही है ।

प्रश्न १-- जीव, धर्म, अधर्मद्रव्यमे बराबरके असख्यात प्रदेश है या कम अधिक ?

उत्तर-- इन तीनो द्रव्योमे बराबरके प्रमाणके प्रदेश है, कम या अधिक नही । यहाँ जीवसे एक जीव ग्रहण करना चाहिये । प्रत्येक जीवमे असख्यात प्रदेश होते है ।

प्रश्न २-- ये असंख्यात प्रदेश ऊनी सख्याके है या पूरी सख्याके ?

उत्तर—ये असख्यात पूरी सख्यापर पूरे होते है २--४--६ आदि सख्याको जिनमे २ का भाग जाकर नीचे कुछ शेष न बचे ऐसी परिमाणको पूरो सख्या वाला परिमाण कहते है ।

प्रश्न ३-- जीवद्रव्यमे असख्यात प्रदेश कैसे विदित हो सकते हैं ?

उत्तर-- जीवद्रव्य लोकपूरक समुद्धातमे पूरा फैल पाता है । इस समुद्धातमे जीव लोक के सब प्रदेशोमे ही रहता वहाँ लोकके एक-एक प्रदेशपर जीवका एक-एक प्रदेश है और लोक के प्रदेश असख्यात हैं, यो जीव द्रव्य भी असख्यात प्रदेशी है । निश्चयनयसे जीव अखण्ड प्रदेशी है । उसमे प्रदेश सख्याका विभाग व्यवहारनयसे किया है ।

प्रश्न ४-- धर्मद्रव्य व अधर्मद्रव्यमे असख्यात प्रदेश क्यो होते है ?

उत्तर-- धर्मद्रव्य व अधर्मद्रव्य केवल लोकाकाशमे सबमे व्याप्त हैं, अत ये दोनो द्रव्य

भी असख्यात प्रदेश वाले है।

प्रश्न ५—आकाशमे अनन्त प्रदेश क्यो है ?

उत्तर—आकाश निःसीम है इसका कही भी अन्त नही, अतः आकाशके अनन्त प्रदेश निर्बाध सिद्ध है।

प्रश्न ६ पुद्गलमें तीन प्रकारके परिमाणके प्रदेश क्यो है ?

उत्तर--पुद्गल स्कन्ध कोई सख्यात परमाणुवोका है कोई असंख्यात परमाणुवोका है, कोई अनन्त परमाणुवोका है, अत पुद्गलको तीन प्रकारके परिमाण वाले प्रदेशयुक्त कहा है। इसके प्रदेश परिमाण, पूर्वोक्त तीन द्रव्योकी तरह आकाश क्षेत्र घेरनेकी अपेक्षासे नही लगाना चाहिये।

प्रश्न ७— पुद्गलके प्रदेश आकाशक्षेत्रकी अपेक्षासे क्यो नही ?

उत्तर—यदि आकाश क्षेत्र घेरनेकी अपेक्षासे पुद्गल प्रदेश माने जावे तो केवल असंख्यात प्रदेशी ही पुद्गल स्कन्ध समा सकते है अन्य कोई स्कन्ध भी नही होगे। सो ऐसा प्रत्यक्षविरुद्ध है और ऐसा माननेपर जीव द्रव्य अशुद्ध भी सिद्ध नही हो सकता।

प्रश्न ८— पुद्गल स्कन्ध तो पर्याय है वास्तविक पुद्गल द्रव्यमे कितने प्रदेश है ?

उत्तर—वास्तवमे पुद्गलद्रव्य परमाणुका नाम है उसमे प्रदेश एक ही होता है, किन्तु उसमे स्कधरूपसे परिणति हो जानेका सामर्थ्य है अतः वह प्रदेशी माना है। यह तीन प्रकारसे प्रदेशपरिमाण पुद्गल स्कन्धोका कहा है।

प्रश्न ९—जीवद्रव्य जब लोकभरमे फैले तभी क्या असख्यात प्रदेशमे रहता है, अन्य समय क्या कम क्षेत्रमे रहता है ?

उत्तर—जीवद्रव्य सदा असख्यात प्रदेशोमे रहता है। छोटी अवगाहनाके देहमे भी हो तो वह देह भी आकाशके असख्यात प्रदेशोमे विस्तृत होता है। सारा लोक भी असंख्यात प्रदेश वाला है और छोटी देहावगाहना जितने क्षेत्रको घेरता है वह भी असख्यात प्रदेश प्रमाण है। असख्यात असख्यात प्रकारके होते है।

प्रश्न १०— कालद्रव्यके एक प्रदेशमात्रपनेकी सिद्धि कैसे है ?

उत्तर—यदि कालद्रव्य एक प्रदेशमात्र न हो तो समय पर्यायकी उत्पत्ति नही हो सकती। एक द्रव्याणु याने परमाणु एक कालाणुसे दूसरे कालाणुपर मन्दगतिसे गमन करे वहा समय पर्यायकी प्रसिद्धि है। यदि कालद्रव्य बहुप्रदेशी होता तो एक समयकी निष्पत्ति नही होती।

अब एक प्रदेशी होनेपर भी पुद्गल परमाणुके अस्तिकायपना सिद्ध करते है—

एयपदेसोवि अणू णाणाखधप्पदेसदो होदि ।
बहुदेसो उवयारा तेण य काओ भणंति सव्वण्हू ।।२६।।

अन्वय— एयपदेसोवि अणू णाणाखधप्पदेसदो बहुदेसो उवयारा होदि, तेण य सव्वण्हू उवयारा काओ भणंति ।

अर्थ— एक प्रदेश वाला होनेपर भी अनेक स्कन्धोके प्रदेशोकी दृष्टिसे बहुप्रदेशी उपचारसे होता है और इस ही कारण सर्वज्ञ देव परमाणुको उपचारसे अस्तिकाय कहते है ।

प्रश्न १—परमाणुका आकार क्या है ?

उत्तर—परमाणु एक प्रदेशमात्र है, अत उसका व्यक्त आकार तो नही है, अव्यक्त आकार है । वह आकार षट्कोण है । इसी कारण सब ओरसे परमाणुवोका बन्ध होनेपर स्कन्धमे छिद्र या अन्तर नही होता ।

प्रश्न २—परमाणु कितने प्रकारका है ?

उत्तर—परमाणु व्यञ्जन पर्यायसे तो एक ही प्रकारका है किन्तु गुणपर्यायकी अपेक्षा २०० प्रकारके होते है ।

प्रश्न ३—परमाणु २०० प्रकारके किस तरह होते है ?

उत्तर—परमाणुमे रूपकी पाँच पर्यायोमे से कोई एक, रसकी पाच पर्यायोमे से कोई एक, गन्धकी दो पर्यायोमे से कोई एक, स्पर्शकी ४ पर्यायोमे से २ याने स्निग्ध रूक्षमे एक व शीत उष्णमे एक । इस प्रकार ५ × ५ × २ × ४ = २०० प्रकार हो जाते ।

प्रश्न ४—परमाणु शुद्ध होकर फिर अशुद्ध (स्कन्ध रूपमे) क्यो हो जाता है ?

उत्तर— परमाणुके अशुद्ध होनेका कारण स्निग्ध रूक्ष परिणमन है । शुद्ध होने पर अर्थात् केवल एक परमाणु रह जानेपर भी स्निग्ध या रूक्ष परिणमन रहता ही है, अतः स्निग्ध या रूक्ष परिणमन रूप कारणके होनेसे स्कन्ध रूप कार्यका होना याने अशुद्ध होना युक्त हो जाता है ।

प्रश्न ५— शुद्ध जीव फिर अशुद्ध क्यो नही होता है ?

उत्तर—जीवके अशुद्ध होनेका कारण रागद्वेष है । यह रागद्वेष चारित्र गुणका विकार है । जीवके शुद्ध होनेपर रागद्वेषका अत्यन्त अभाव (क्षय) हो जाता है और चारित्र गुणका स्वभावरूप स्वच्छ परिणमन हो जाता है । इस तरह अशुद्ध होनेके कारणभूत राग द्वेषके न पाये जानेमे शुद्ध जीव फिर अशुद्ध नही हो सकता ।

प्रश्न ६—किस व्यवहारनयसे परमाणुको अस्तिकाय कहा गया है ?

उत्तर—अनुपचरित अशुद्ध सद्भूत शक्तिरूप व्यवहारनयसे परमाणुको अस्तिकाय कहा जाता है, क्योकि परमाणु अशुद्ध स्कन्धरूप होनेकी अनुपचरित शक्ति रखता है ।

प्रश्न ७— द्वचरणुक, त्र्यणुक आदि स्कन्ध आकाशके कितने प्रदेशोमे रहते है ?

उत्तर-- एक, दो प्रादि स्कन्ध प्रदेशो आदिमे कितने भी कममे रह सकते है । इसका कारण परमाणुवोका परमाणुमे अप्रतिघात शक्तिका होना है ।

प्रश्न ८— परमाणु कैसे उत्पन्न होता है ?

उत्तर-- परमाणु मनुष्य आदि किसीके चेष्टासे उत्पन्न नही होता है । वह तो स्वयं स्कन्धसे अलग होकर परमाणु रह जाता है । परमाणुकी उत्पत्ति भेदसे ही होती है अर्थात्, स्कन्धसे अलग होनेसे ही होती है ।

प्रश्न ९— स्कन्ध कैसे बनता है ?

उत्तर—स्कन्ध भेदसे भी बनता है और सघात अर्थात् मेलसे भी बनता है । कुछ स्कधाशोका भेद होनेसे और कुछ स्कधाशोका संघात होनेसे अर्थात् भेदसघातसे भी बनता है ।

प्रश्न १०—स्कन्ध भी भेदसे बनता है तो क्या परमाणु और इस स्कन्धके बननेका एक ही उपाय है ?

उत्तर— परमाणु बननेका भेद तो अन्तिम भेद है, परन्तु स्कन्ध बननेका भेद अन्तिम नही अर्थात् वहाँ अनेक परमाणुवोके स्कन्धका भेद होनेपर भी अनेक परमाणुवोका स्कन्ध रहता है । जैसे ५०० परमाणुवोके स्कन्धका ऐसा भाग हो जाय कि एक स्कन्धांश ३०० परमाणुओका रह जाय व दूसरा स्कन्ध २०० परमाणुवोका रह जाय, इत्यादि ।

प्रश्न ११— इस परमाणुको जानकर हमे क्या शिक्षा लेनी चाहिये ?

उत्तर—जैसे एक परमाणु निरुपद्रव है उसके साथ अन्य परमाणुओका सयोग बध होनेसे उसे नाना स्थितियोमे गुजरना पडता है । इसी तरह मै भी एक रहू तो निरुपद्रव हू । परद्रव्यके सयोग, बन्ध उपयोगसे ही अनेक योनियोमे गुजरना पडता है । अतः उपद्रवसे निवृत्त होनेके लिये अपने एकत्वका ध्यान करना चाहिये ।

अब प्रदेशका लक्षण बताते है—

जावदियं आयासं अविभागी पुग्गलाणुवट्टद्ध ।
तं खु पदेस जाणे सव्वाणुट्ठाणदाणरिह ॥२७॥

अन्वय—जावदियं आयास अविभागी पुग्गलाणुवट्टद्ध खु त सव्वाणुट्ठाणदाणरिह पदेसं जाणे ।

अर्थ—जितना आकाश अविभागी पुद्गल परमाणुके द्वारा अवष्टब्ध याने रोका जाता है, घेरा जाता है निश्चयसे उसे सब परमाणुवोको स्थान देनेमे समर्थ प्रदेश जानो ।

प्रश्न १— अखण्ड आकाशमे प्रदेशविभाग करना कैसे बन सकता है ?

उत्तर—अखण्ड आकाशका भाव यह है कि यह एक द्रव्य है, है नि सीम विस्तृत ।

परन्तु यह बताओ कि एक पुरुषके दोनो हाथके अवस्थानका क्षेत्र भिन्न है या वही एक है। एक तो है नही, प्रत्यक्ष ही मालूम होता। भिन्न है, तो यही तात्पर्य हुआ कि अविभागी आकाश द्रव्यमे विभागकल्पना बन गई।

प्रश्न २—आकाशके छोटेसे क्षेत्रपर कितने द्रव्य रह सकते है ?

उत्तर— अगुलके असख्यातवे भाग क्षेत्रपर अनन्त तो जीव और उससे अनन्तानन्त गुणे पुद्गल व असख्यात कालद्रव्य रह जाते है। धर्म, अधर्म तो लोकव्यापी है ही।

प्रश्न ३—आकाशके एक प्रदेशपर कितने द्रव्य रह सकते है ?

उत्तर—आकाशके एक प्रदेशपर अनन्त परमाणुके पुञ्जरूप सूक्ष्मस्कन्ध व अनन्त परमाणु ठहर सकते है।

प्रश्न ४— फिर पुद्गलके एक परमाणुसे ही प्रदेशका भाव क्यो बताया ?

उत्तर—सूक्ष्मस्कन्ध परमाणुमात्र प्रदेशमे अवगाह करे प्रदेशमे आ जाय, इस कारण कितना भी सूक्ष्मस्कन्ध हो उससे प्रदेशका भाव निर्दोष नही होता। एक परमाणु एक प्रदेशसे अधिक स्थान कभी घेर ही नही सकता। अत अविभागी पुद्गलाणुसे ही प्रदेशका भाव बताया गया।

प्रश्न ५—पुद्गलाणुके साथ अविभागी विशेषण क्यो दिया ?

उत्तर— यद्यपि पुद्गलाणु अविभागी ही याने अविभाज्य ही होता है तथापि सूक्ष्म-स्कन्धोको भी अणु शब्दसे कहनेका व्यवहार लोकमे पाया जाता है। अत. अविभागी विशेषण पुद्गलाणुके साथ यहाँ लगाया है।

प्रश्न ६— आकाशमे अनन्त प्रदेश तो है, किन्तु वे पूरी सख्यामे हैं या ऊनी सख्यामे ?

उत्तर— आकाशके प्रदेश पूरी सख्यामे है।

प्रश्न ७— अलोकाकाशमे तो पुद्गल है ही नही तब तो वहा प्रदेश न होना चाहिये ?

उत्तर—लोकाकाशमे भी पुद्गल परमाणु है इस कारण प्रदेश हो, ऐसी बात नही है। पुद्गल परमाणुसे तो प्रदेशका भाव बताया है। अलोकाकाशमे पुद्गल परमाणु नही है तब भी प्रदेश विभागकी कल्पना यहाकी तरह हो जाती है।

प्रश्न ८—अखण्डप्रदेशीको अनन्तप्रदेशी माननेमे तो विरोध आता है ?

उत्तर—आकाशक्षेत्रकी अभेददृष्टिसे जाननेपर वह अखण्डप्रदेशी है और भेददृष्टिसे जाननेपर वह अनन्तप्रदेशी है।

प्रश्न ९—आकाशके किस भागमे लोकाकाश है ?

उत्तर—आकाशके ठीक मध्यभागमे लोकाकाश है, सारे आकाशमें यह एक ही ब्रह्माड है, इसलिये आकाशके मध्यमे ही ब्रह्माण्ड (लोकाकाश) सिद्ध होता है। इस लोकाकाशके सर्व

ओर अनन्त प्रदेशोमे आकाश ही आकाश है ।

प्रश्न १०-- आकाशमे अनत प्रदेश हैं, यह कैसे जाना जाय ?

उत्तर—आकाशके समस्त प्रदेशोसे भी अनन्तगुणे अविभागप्रतिच्छेद वाले केवलज्ञान मे यह जाना गया और दिव्यध्वनिसे प्रकट हुआ । अतः अनत प्रदेश है, यह नि.सदेह प्रतीतिमे लाना चाहिये ।

प्रश्न ११—आकाशके अनन्त प्रदेशोमे कोई युक्ति भी है ?

उत्तर—कल्पना करो कि किसी जगह आकाशका अन्त आ गया तो वहाँ कोई ठोस चीज आ गई कि पोल है । यदि ठोस चीज आ गई तो उसके बाद पोल ही होगी । यदि पोल है तो पोलसे तो आकाश सकेतित किया जाता है । आकाशका कही भी अत नही आ सकता । इसलिये आकाशके अनन्त प्रदेश युक्तिसिद्ध भी हो जाते है ।

प्रश्न १२– प्रदेशका क्या आकार है ?

उत्तर—वस्तुतः तो प्रदेश ही क्या समस्त आकाश निराकार है, फिर जिस दृष्टिसे प्रदेश जाना गया उस दृष्टिसे विचारनेपर प्रदेश परमाणुके आकार वाला सिद्ध होता है । परमाणु यद्यपि निरवयव है तथापि उसमे अन्य परमाणुवोके सयोगसे स्कन्धत्व हो सकता है, अत अवयव है । परमाणु षट्कोण है । ऊपर नीचे व चारो दिशावोमे सयुक्त परमाणुवोका छिद्ररहित श्लेष होता है । उस परमाणुके सदृश आकाश प्रदेश भी षट्कोण है ।

इति श्री पूज्य मुनिवर नेमिचन्द्र सैद्धान्तिदेव द्वारा विरचित द्रव्यसग्रहकी २७ गाथावों मे चार अधिकारो द्वारा षट्द्रव्य पञ्च अस्तिकायका वर्णन करने वाले प्रथम व द्वितीय अधिकार समाप्त हुए ।

इसकी प्रश्नोत्तरी टीका प्रोफेसर श्री लक्ष्मीचन्द्र जी एम एस-सी. जबलपुर निवासी के (जिनसे मैने इङ्गलिशका अध्ययन किया) धार्मिक मननके हेतु हुई ।

—मनोहर वर्णी "सहजानन्द"

तृतीय अधिकार

आस्रवबंधणसंवरणिज्जरमोक्खो सपुण्णपावा जे ।
जीवाजीवविसेसा तेवि समासेण पभणामो ॥२८॥

अन्वय—जीवाजीवविसेसा जे सपुण्णपावा आसवबंधणसंवरणिज्जरमोक्खो तेवि समासेण पभणामो ।

अर्थ—जीव और अजीवके विशेष (भेद) जो पुण्य, पाप, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा मोक्ष है उनको भी संक्षेपसे कहते है—

प्रश्न १-- ये आस्रवादिक जीव अजीवके क्या द्रव्यार्थिक दृष्टिसे भेद है ?

उत्तर— ये आस्रवादिक जीव और अजीवके पर्याय है । इसी कारण ये सातो दो-दो प्रकारके हो जाते है—(१) जीवपुण्य, (२) अजीवपुण्य । (१) जीवपाप, (२) अजीवपाप । (१) जीवास्रव, (२) अजीवास्रव । (१) जीवबंध, (२) अजीवबंध । (१) जीवसंवर, (२) अजीवसंवर । (१) जीवनिर्जरा, (२) अजीवनिर्जरा । (१) जीवमोक्ष, (२) अजीवमोक्ष ।

प्रश्न २— इनका स्वरूप क्या है ?

उत्तर—इन सब विशेषोका स्वरूप विशेषरूपसे आगे गाथावोमे कहा जायगा । इनका सामान्यस्वरूप यहाँ जान लेना चाहिये ।

प्रश्न ३—पुण्य किसे कहते है ?

उत्तर—शुभ आस्रवको पुण्य कहते है ।

प्रश्न ४— पाप किसे कहते है ?

उत्तर—अशुभ आस्रवको पाप कहते है ।

प्रश्न ५— आस्रव किसे कहते है ?

उत्तर—बाह्य तत्त्वके आनेको आस्रव कहते है ।

प्रश्न ६—बन्ध किसे कहते है ?

उत्तर— बंधनेको बन्ध कहते है ।

प्रश्न ७—संवर किसे कहते है ?

उत्तर— बाह्य तत्त्वका आना रुक जाना संवर है ।

प्रश्न ८— निर्जरा किसे कहते है ?

उत्तर—बाह्य तत्त्वके झड़ जानेको निर्जरा कहते है ।

प्रश्न ९—मोक्ष किसे कहते है ?

उत्तर– बाह्य तत्त्वके बिल्कुल छूट जानेको मोक्ष कहते है।

प्रश्न १०– क्या जीवविशेष और अजीवविशेष बिल्कुल स्वतन्त्र है ?

उत्तर– ये जीवके विशेष अजीवके विशेषके निमित्तसे हैं और ये अजीवके विशेष जीव के विशेषके निमित्तसे है।

अब उक्त विशेषोमे से जीवास्रव और अजीवास्रवका स्वरूप कहते है:—

आसवदि जेण कम्म परिणामेणप्पणो स विण्णेओ।
भावासवो जिणुत्तो कम्मासवण परो होदि ॥२६॥

अन्वय– अप्पणो जेण परिणामेण कम्म आसवदि स जिणुत्तो भावासवो विण्णेयो, कम्मासवणं परो होदि।

अर्थ– आत्माके जिस परिणामसे कर्म आता है वह जिनेन्द्रदेवके द्वारा कहा हुआ भावास्रव जानना चाहिये और जो कर्मोंका आना है उसे द्रव्यास्रव जानना चाहिये।

प्रश्न १– किन परिणामोसे कर्म आते है ?

उत्तर– शुद्ध आत्मतत्त्वके आश्रयके विपरीत जो भी परिणाम है वे पुद्गल कर्मोंके आस्रवके निमित्त कारण है।

प्रश्न २—वे विपरीत परिणाम कौन है जिनके निमित्तसे कर्मोंका आस्रव होता है ?

उत्तर– पाँच इन्द्रियोके विषय भोगनेके परिणाम क्रोध, मान, माया, मात्सर्य, लोभ, परवस्तुको अपना माननेका भाव, परपदार्थोंके जाननेका लक्ष्य आदि विपरीत परिणाम है।

प्रश्न ३—जीवास्रव किसे कहते है ?

उत्तर– भावास्रव जीवास्रवका ही अपर नाम है। जिन भावोका नाम भावास्रव है वे जीवके ही परिणमन है, अतः वे जीवास्रव कहलाते है अर्थात् आत्माके जिन परिणामोसे कर्म आते है उन्हें भावास्रव या जीवास्रव कहते है।

प्रश्न ४– आत्मामे भावास्रव क्यो होते है ?

उत्तर– पूर्वबद्ध कर्मोंके उदयको निमित्त पाकर आत्मामे भावास्रव होते है।

प्रश्न ५– भावास्रव और द्रव्यास्रवमे कारण कौन है और कार्य कौन है ?

उत्तर– वर्तमान भावास्रव नवीन द्रव्यास्रवका कारण है, नवीन द्रव्यास्रवका वर्तमान भावास्रवका कार्य है।

प्रश्न ६—वर्तमान भावास्रवका कारण कौन है ?

उत्तर– वर्तमान भावास्रवका परम्पराकारण पूर्वका द्रव्यास्रव है।

प्रश्न ७– एक द्रव्यका दूसरे द्रव्यके साथ कार्यकारण भाव कैसे हो सकता है ?

उत्तर—जीवास्रव (भावास्रव) जीवका परिणमन है। अजीवास्रव (द्रव्यास्रव) अजीव

का परिणमन है, इस कारण इन दोनोमे निश्चयसे कार्यकारण भाव नही है, किन्तु निमित्त-दृष्टिका कार्यकारण भाव है।

प्रश्न ८—द्रव्यास्रव किसे कहते है ?

उत्तर—अकर्मत्वरूप कार्माणवर्गणावोको कर्मस्वरूप होनेको द्रव्यास्रव कहते है ?

प्रश्न ९—अजीवास्रव किसे कहते है ?

उत्तर—द्रव्यास्रवका ही अपर नाम अजीवास्रव है। द्रव्यास्रव अजीव कार्माणवर्गणाओ का परिणमन है, अत· यह अजीवास्रव है।

प्रश्न १०— भावास्रवके स्वरूपमे कहे हुए "कम्म आसवदि" से द्रव्यास्रवका स्वरूप जान लिया जाता है, फिर द्रव्यास्रवका स्वरूप पृथक् क्यो कहा है ?

उत्तर— यत् तत् शब्दसे जिसका ग्रहण हो उसीका वर्णन होता है। यहा "कम्म आसवदि" शब्द भावास्रवकी सामर्थ्य बतानेको कहा।

प्रश्न ११— भावास्रव और द्रव्यास्रवके लक्षण जाननेसे लाभ क्या है ?

उत्तर— यदि भूतार्थनयसे भावास्रव व द्रव्यास्रवको समझा जाय तो सम्यग्दर्शनका लाभ होता है।

प्रश्न १२—भूतार्थनयसे ये आस्रव कैसे जाने जाते है ?

उत्तर— इस तत्त्वको अगली गाथाके प्रश्नोत्तरोमे कहा जायगा, जिस अगली गाथामे भावास्रव व द्रव्यास्रवका स्वरूप बताया है।

अब भावास्रवका स्वरूप विशेपतासे कहते है—

मिच्छत्ताविरदिपमादजोगकोधावओऽथ विण्णेया।
पण पण पणादस तिय चहु कमसो भेद हु पुव्वस्स ॥३०॥

अन्वय—अथ पुव्वस मिच्छत्ताविरदिपमादजोगकोधादओ विण्णेया। हु कमसो पण पण पणादस तिय चहु भेदा।

अर्थ—अब पूर्वके याने भावास्रवके मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, योग और कषाय, ये विशेष जानने चाहिये और उनके क्रमसे ५, ५, १५, ३ और ४ भेद भी जानने चाहिये।

प्रश्न १—मिथ्यात्वादिक भावास्रवके भेद है या पर्याय ?

उत्तर—भावास्रव स्वय पर्यायि है। मिथ्यात्वादिक भावास्रवके प्रकार (भेद) है। भावास्रव कितने तरहके होते है, इसका इसमे उत्तर है।

प्रश्न २—मिथ्यात्व किसे कहते है ?

उत्तर— निज शुद्ध आत्मतत्त्वके प्रतिकूल अभिप्राय होने व अन्य शुद्ध द्रव्योके प्रति-कूल अभिप्राय होनेको मिथ्यात्व कहते है।

प्रश्न ३– मिथ्यात्वके ५ भेद कौन-कौनसे हैं ?

उत्तर—मिथ्यात्वके ५ भेद ये है—(१) एकान्तमिथ्यात्व, (२) विपरीतमिथ्यात्व, (३) सशयमिथ्यात्व, (४) विनयमिथ्यात्व और (५) अज्ञानमिथ्यात्व ।

प्रश्न ४– एकान्तमिथ्यात्व किसे कहते है ?

उत्तर– अनन्तधर्मात्मक वस्तुमे एक ही धर्म माननेके हठ या अभिप्रायको एकान्त-मिथ्यात्व कहते है ।

प्रश्न ५—विपरीतमिथ्यात्व किसे कहते है ?

उत्तर– वस्तुस्वरूपके बिलकुल विरुद्ध तत्त्वरूप वस्तुको मानना विपरीतमिथ्यात्व है ।

प्रश्न ६—सशयमिथ्यात्व किसे कहते है ?

उत्तर—वस्तुस्वरूपमे "यह इस भाँति है अथवा इस भाँति" इत्यादि रूपसे संशय करनेको सशयमिथ्यात्व कहते है ।

प्रश्न ७—विनयमिथ्यात्व किसे कहते है ?

उत्तर– देव-कुदेव, शास्त्र-कुशास्त्र, गुरु-कुगुरु आदिका विचार किये बिना सबको समान भावसे मानना, विनय करना विनयमिथ्यात्व है ।

प्रश्न ८– अज्ञानमिथ्यात्व किसे कहते है ?

उत्तर—वस्तुस्वरूपका कुछ भी ज्ञान नही होना, हित-अहितका विवेक न होना अज्ञानमिथ्यात्व है ।

प्रश्न ९– अविरति किसे कहते है ?

उत्तर– निज शुद्ध आत्मतत्त्वके आश्रयसे उत्पन्न होने वाले सहज आनन्दकी रति न होने व पापकार्योंमे प्रवृत्त होनेको या पापकार्योंसे विरत न होनेको अविरति कहते हैं ।

प्रश्न १०– अविरतिके कितने भेद है ?

उत्तर—अविरतिके सामान्यतया ५ भेद है और विशेषता १२ भेद है ।

प्रश्न ११– अविरतिके ५ भेद कौन-कौनसे है ?

उत्तर– हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रहेच्छा– ये ५ अविरतिके भेद हैं ।

प्रश्न १२– हिसा किसे कहते है ?

उत्तर– कषायके द्वारा अपने व परके प्राणोके घात करनेको हिसा कहते हैं ।

प्रश्न १३– परके घातमे अपनी हिसा तो नही होती होगी ?

उत्तर—कषायवश दूसरोके घात करनेमे अपनी हिसा तो सुनिश्चित ही है । दूसरोके घातका उद्यम भी किया जावे और उससे परजीवका चाहे घात न भी हो तो भी निजहिंसा तो ही हो जाती है ।

प्रश्न १४– मरणमे अतिरिक्त भी कोई हिंसा है ?

उत्तर– निज हिंसा तो वास्तवमे कषायोका होना है, इससे अपने चैतन्य प्राणका घात होता है। पर हिंसा चित्त दुखाना, सक्लेश कराना आदि भी है।

प्रश्न १५—हिसाके कितने भेद है ?

उत्तर– हिसाके ४ भेद है– (१) सकल्पी हिंसा, (२) उद्यमी हिंसा, (३) आरम्भी हिंसा, (४) विरोधी हिंसा।

प्रश्न १६—सकल्पी हिसा किसे कहते है ?

उत्तर– इरादतन किसी जीवके घात करनेको संकल्पी हिंसा कहते है।

प्रश्न १७– उद्यमी हिंसा किसे कहते है ?

उत्तर– सावधानी सहित व्यापार करते हुये भी जो हिंसा होती है वह उद्यमी हिंसा है।

प्रश्न १८– आरम्भी हिंसा किसे कहते है ?

उत्तर– रसोई आदि गृहके आरम्भोको सावधानीसे यत्नाचारपूर्वक करते हुये भी जो हिंसा हो जाती है उसे आरम्भी हिसा कहते है।

प्रश्न १९-- विरोधी हिंसा किसे कहते है ?

उत्तर– किसी आक्रामक मनुष्य या तिर्यञ्चके द्वारा धन, जन, शील आदिके नाशका प्रसङ्ग आनेपर रक्षाके लिये उसके साथ प्रत्याक्रमण करनेपर जो हिसा हो जाती है उसे विरोधी हिंसा कहते है।

प्रश्न २०– सुना है कि गृहस्थके केवल सकल्पी हिसाकी हिसा लगती है, शेष तीन हिंसायें नही लगती ?

उत्तर– हिंसा तो जो करेगा उसे सभी लगती है, किन्तु गृहस्थ अभी सकल्पी हिंसाका ही त्याग कर पाया है, शेष हिंसावोका त्याग नही कर सका है।

प्रश्न २१– झूठ किसे कहते है ?

उत्तर—कषायवश असत्यसभाषण करनेको झूठ कहते है।

प्रश्न २२– चोरी किसे कहते है ?

उत्तर– कषायवश दूसरोकी चीज छुपकर अथवा ज्यादती करके हर लेनेको चोरी कहते है।

प्रश्न २३—कुशील किसे कहते है ?

उत्तर—ब्रह्मचर्यके घात करनेको कुशील कहते हैं।

प्रश्न २४—निज स्त्रीके सिवाय शेष अन्य परस्त्री, वेश्यारमणके त्याग करनेको तो

शील कहते होगे ?

उत्तर— वस्तुतः तो निजस्त्रीसेवन भी कुशील है, किन्तु परस्त्री, वेश्या आदि अन्य सब कुशीलोके त्याग हो जानेसे स्वस्त्रीरमण होकर भी उस जीवके शील कहनेका व्यवहार है।

प्रश्न २५—परिग्रहेच्छा किसे कहते है ?

उत्तर—बाह्य अर्थोकी इच्छा करनेको याने मूर्च्छाको परिग्रहेच्छा कहते है।

प्रश्न २६-- परिग्रह कितने प्रकारके है ?

उत्तर—परिग्रह दो प्रकारके है—(१) आभ्यतर और (२) बाह्य।

प्रश्न २७—आभ्यन्तरपरिग्रह किसे कहते है ?

उत्तर—जो आत्माका ही परिणमन हो, किन्तु स्वभावरूप न हो, विकृत हो उसे आभ्यतरपरिग्रह कहते है।

प्रश्न २८—आभ्यन्तरपरिग्रह कितने प्रकारके है ?

उत्तर-- आभ्यन्तरपरिग्रह १४ प्रकारके है— (१) मोह, (२) क्रोध, (३) मान, (४) माया, (५) लोभ, (६) हास्य, (७) रति (८) अरति, (९) शोक, (१०) भय, (११) जुगुप्सा, (१२) पुरुषवेद, (१३) स्त्रीवेद, (१४) नपुसकवेद।

प्रश्न २९-- बाह्यपरिग्रहकी कितनी जातियां है ?

उत्तर— बाह्यपरिग्रहकी दस जातियां है— (१) क्षेत्र याने खेत, (२) वास्तु याने मकान, (३) हिरण्य याने चांदी, (४) सुवर्ण याने सोना, (५) धन— गाय, भैंस आदि पशु। (६) धान्य याने अन्न, (७) दासी याने नौकरानी, (८) दास याने नौकर, (९) कुप्य याने वस्त्रादि, (१०) भाण्ड याने बर्तन।

प्रश्न ३०-- आभ्यन्तरपरिग्रहकी इच्छा क्या होती है ?

उत्तर-- कषायमे रुचना, कषायमे बसना आदि आभ्यंतर परिग्रहेच्छा है।

प्रश्न ३१-- अविरतिके १२ भेद कौनसे है ?

उत्तर-- कायअविरति ६ और विषयअविरति ६, इस प्रकार अविरतिके १२ भेद है।

प्रश्न ३२— कायअविरतिके भेद कौनसे है ?

उत्तर— पृथ्वीकायअविरति, जलकायअविरति, अग्निकायअविरति, वायुकायअविरति, वनस्पतिकायअविरति और त्रसकायअविरति— ये ६ भेद कायअविरतिके है।

प्रश्न ३३— पृथ्वीकायअविरति किसे कहते है ?

उत्तर— पृथ्वीकायिक जीवोकी विराधनाका त्याग न करना और खोदना, कूटना, फोडना, दाबना आदि प्रवृत्तियोसे उनकी विराधना करनेको पृथ्वीकायअविरति कहते है।

प्रश्न ३४— जलकायअविरति किसे कहते है ?

उत्तर-- जलकायिक जीवोकी विराधनाका त्याग न करना और विलोरना, तपाना, गिराना, हिलाना आदि प्रवृत्तियोसे उनकी विराधना करनेको जलकायअविरति कहते है ।

प्रश्न ३५-- अग्निकायअविरति किसे कहते है ?

उत्तर-- अग्निकायिक जीवोकी विराधनाका त्याग न करना और बुझाना, खुदेरना, बन्द करना आदि प्रवृत्तियोसे उनकी विराधना करनेको अग्निकायअविरति कहते है ।

प्रश्न ३६-- वायुकायअविरति किसे कहते है ?

उत्तर -- वायुकायिक जीवोकी विराधनाका त्याग न करना और पखा चलाना, रबड आदिमे बन्द करना आदि प्रवृत्तियोसे उनकी विराधना करनेको वायुकायिकअविरति कहते है ।

प्रश्न ३७---वनस्पतिकायिक अविरति किसे कहते है ?

उत्तर-- वनस्पतिकायिक जीवोकी विराधनाका त्याग न करना और छेदना, काटना, पकाना, सुखाना आदि प्रवृत्तियोसे उनकी विराधना करनेको वनस्पतिकायअविरति कहते है ।

प्रश्न ३८---त्रसकायअविरति किसे कहते है ?

उत्तर-- द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय जीवोकी विराधनाका त्याग न करना और पीटना, दलना, मलना, मारना, चित्त दुखाना आदि प्रवृत्तियोसे उनको विराधना करना, सो त्रसकायअविरति है ।

प्रश्न ३९-- विषयअविरतिके भेद कौन-कौन है ?

उत्तर-- स्पर्शनेन्द्रियविषय अविरति, रसनेन्द्रियविषय अविरति, घ्राणेन्द्रियविषय अविरति, चक्षुरिन्द्रियविषय अविरति, श्रोत्रेन्द्रियविषय अविरति और मनोविषय अविरति-- ये ६ भेद विषय अविरतिके है ।

प्रश्न ४०-- स्पर्शनेन्द्रिय विषयविरति किसे कहते है ?

उत्तर-- स्पर्शनेन्द्रियके विषयोसे विरक्त नही होने और शीतस्पर्शन, उष्णस्पर्शन, कोमलस्पर्शन, मैथुन आदि क्रियाओसे स्पर्शनेन्द्रियके बिषयमे प्रवृत्ति करनेको स्पर्शनेन्द्रियविषय अविरति कहते है ।

प्रश्न ४१---रसनेन्द्रिय विषयाविरति किसे कहते है ?

उत्तर -- रसनाइन्द्रियके विषयोसे विरक्त न होने व मधुर नाना व्यञ्जन रसोके भक्षण पानकी प्रवृत्ति करनेको रसनेन्द्रियविषय अविरति कहते है ।

प्रश्न ४२-- घ्राणेन्द्रियविषय अविरति किसे कहते है ?

उत्तर-- घ्राणेन्द्रिय (नासिका) के विषयोसे विरक्त न होने व सुहावने सुगन्धित पुष्प, इत्तर आदिके सूघनेको घ्राणेन्द्रियविषय अविरति कहते है ।

प्रश्न ४३-- चक्षुरिन्द्रियविषय अविरति किसे कहते है ?

उत्तर—चक्षुरिन्द्रिय (नेत्र) के विषयोसे विरक्त न होने व सुन्दर रूप, खेल, नाटक आदि देखनेकी प्रवृत्ति करनेको चक्षुरिन्द्रिय विषयाविरति कहते है।

प्रश्न ४४– श्रोत्रेन्द्रियविषयाविरति किसे कहते है ?

उत्तर—श्रोत्रेन्द्रियके विषयोसे विरक्त न होने, सुहावने राग भरे शब्द, संगीत आदिके सुननेकी रतिको श्रोत्रेन्द्रिय विषयाविरति कहते है।

प्रश्न ४५– मनोविषय अविरति किसे कहते है ?

उत्तर—मनके विषयोसे विरक्त न होने व यश, कीर्ति, विषयचिन्तन आदि विषयोमे होनेको मनोविषय अविरति कहते है।

प्रश्न ४६– इन्द्रिय व मनके अनिष्ट विषयोमे अरति या द्वेष करनेको क्या अविरति नही कहते है ?

उत्तर—अनिष्ट विषयोमे द्वेष करनेको भी अविरति कहते हैं। यह द्वेष भी इष्ट विषयोमे रति होनेके कारण होता है, अत इसका भी अतर्भाव पूर्वोक्त लक्षणोमे हो जाता है।

प्रश्न ४७—प्रमाद किसे कहते है ?

उत्तर—शुद्धात्मानुभवसे चलित हो जाने व व्रतसाधनमे असावधानी करनेको प्रमाद कहते है।

प्रश्न ४८—प्रमादके कितने भेद है ?

उत्तर– प्रमादके मूल भेद १५ है— (१) स्त्रीकथा, (२) देशकथा, (३) भोजनकथा, (४) राजकथा ये चार विकथाये, (५) क्रोध, (६) मान, (७) माया, (८) लोभ ये चार कषाये, (९) स्पर्शनेन्द्रियवशता, (१०) रसनेन्द्रियवशता, (११) घ्राणेन्द्रियवशता, (१२) चक्षुरिन्द्रियवशता, (१३) श्रोत्रेन्द्रियवशता ये पाच इन्द्रियवशता तथा (१४) निद्रा व (१५) स्नेह।

प्रश्न ४९—स्त्रीकथा किसे कहते है ?

उत्तर– स्त्रीके सुन्दर रूप, कला, चातुर्य आदिकी रागभरी कथा करनेको स्त्रीकथा कहते है।

प्रश्न ५०– देशकथा किसे कहते है ?

उत्तर– देश विदेशोके स्थान, महल, चाल-चलन, नीति आदिकी बातें करनेको देशकथा कहते हैं।

प्रश्न ५१– भोजनकथा किसे कहते हैं ?

उत्तर—स्वादिष्ट भोजनका स्वाद, भोजन बनानेकी क्रिया, भोजनकी सामग्री आदि की चर्चा करनेको भोजनकथा कहते है।

प्रश्न ५२– राजकथा किसे कहते हैं ?

उत्तर– राजावोंके व्यवहार, वैभव आदिकी चर्चा करनेको राजकथा कहते है।

प्रश्न ५३– क्रोधप्रमाद किसे कहते है ?

उत्तर– क्रोधवश शुद्धात्मानुभवसे चलित होने व आवश्यक कर्तव्योमे शिथिलता करनेको क्रोधप्रमाद कहते है।

प्रश्न ५४-- मानप्रमाद किसे कहते है ?

उत्तर-- मानवश शुद्धात्मानुभवसे चलित होने व आवश्यक कर्तव्योमे शिथिल होनेको व दोप लगानेको मानप्रमाद कहते है।

प्रश्न ५५– मायाप्रमाद किसे कहते है ?

उत्तर-- मायावश शुद्धात्मानुभवसे चलित होने व आवश्यक कर्तव्योमे दोष लगानेको मायाप्रमाद कहते है।

प्रश्न ५६-- लोभप्रमाद किसे कहते है ?

उत्तर-- लोभकषायवश शुद्धात्मानुभवसे चलित होने व आवश्यक कर्तव्योमे दोप लगानेको लोभप्रमाद कहते है ?

प्रश्न ५७-- स्पर्शनेन्द्रियवशता किसे कहते है ?

उत्तर– स्पर्शनेन्द्रियके विपयोके चिन्तवन, प्रवर्तन आदिके आधीन होकर शुद्धात्मानुभवसे चलित होना स्पर्शनेन्द्रियवशता है।

प्रश्न ५८--रसनेन्द्रियवशता क्या है ?

उत्तर-- भोजनके स्वादमे रति करके शुद्धात्मानुभवसे चलित हो जाना, सो रसनेन्द्रियवशता है।

प्रश्न ५९-- घ्राणेन्द्रियवशता किसे कहते है ?

उत्तर-- अच्छे गन्ध वाले पदार्थोकी गन्धकी वाञ्छा व वृत्ति करके शुद्धात्मानुभवसे चलित हो जाना घ्राणेन्द्रियवशता है।

प्रश्न ६०-- चक्षुरिन्द्रियवशता किसे कहते है ?

उत्तर-- सुन्दर रूप, नाटक, कला आदिके देखनेमे रति करके शुद्धात्मानुभवसे चलित हो जानेको चक्षुरिन्द्रियवशता कहते है।

प्रश्न ६१—श्रोत्रेन्द्रियवशता किसे कहते है ?

उत्तर—रागोत्पादक शब्द, संगीत आदिके श्रवणमे रति करके शुद्धात्मानुभवसे चलित हो जानेको श्रोत्रेन्द्रियवशता कहते है।

प्रश्न ६२– निद्राप्रमाद किसे कहते है ?

उत्तर—निद्राके अशके भी वशीभूत होकर शुद्धात्मानुभवसे चलित हो जानेको निद्रा-

प्रमाद कहते है ।

प्रश्न ६३– स्नेहप्रमाद किसे कहते है ?

उत्तर-- किसी पदार्थ या प्राणीविषयक स्नेह करके शुद्ध स्वरूपानुभवसे चलित हो जानेको स्नेहप्रमाद कहते है ।

प्रश्न ६४– प्रमादके सयोगी भेद कितने है ?

उत्तर-- प्रमादके सयोगी भेद ८० होते है-- ४ विकथा, ४ कषाय, ५ इन्द्रियविषय— इनका परस्पर गुणा करनेसे ८० भेद हो जाते है । इन सब भेदोके साथ निद्रा व स्नेह लगाते जाना चाहिये ।

प्रश्न ६५– कषायके कितने भेद है ?

उत्तर—कषायके मूल भेद ४ है—(१) क्रोध, (२) मान, (३) माया, (४) लोभ ।

प्रश्न ६६—कषायके उत्तरभेद कितने है ?

उत्तर– कषायके उत्तरभेद २५ है—(१–४) अनन्तानुबधी क्रोध, मान, माया, लोभ, (५--८) अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ, (६--१२) प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ, (१३--१६) सज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ, (१७) हास्य, (१८) रति, (१६) अरति, (२०) शोक, (२१) भय, (२२) जुगुप्सा, (२३) पुरुषवेद, (२४) स्त्रीवेद और (२५) नपुँसकवेद ।

प्रश्न ६७– अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ किसे कहते है ?

उत्तर—जो क्रोध, मान, माया, लोभ मिथ्यात्वको बढावे उसे अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ कहते है ।

प्रश्न ६८– अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ किसे कहते है ?

उत्तर—जो क्रोध, मान, माया, लोभ देशसयमका घात करे याने देशसयमको प्रकट न होने दे उसे अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ कहते है ।

प्रश्न ६९– प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ किसे कहते है ?

उत्तर– जो क्रोध, मान, माया, लोभ सकलसयमका घात करे याने सकलसयमको प्रकट न होने दे उसे प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ कहते है ।

प्रश्न ७०—सज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ किसे कहते है ?

उत्तर—जो क्रोध, मान, माया, लोभ यथाख्यात चारित्र (कषायके अभावमे होने वाला चारित्र) को घाते याने यथाख्यात चारित्रको प्रकट न होने दे उसे सज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ कहते है ।

प्रश्न ७१– हास्य किसे कहते है ?

उत्तर– किसीकी किसी बातकी कमी देखकर हास्य मजाक करने व लौकिक सुख पाकर हंसनेको हास्य कहते है।

प्रश्न ७२—रति किसे कहते है ?

उत्तर—इष्ट विषय पाकर या सोचकर उसमे प्रीति करनेको रति कहते है।

प्रश्न ७३– अरति किसे कहते है ?

उत्तर– अनिष्ट विषयको पाकर या सोचकर उसमे अप्रीति करनेको अरति कहते है ?

प्रश्न ७४—शोक किसे कहते है ?

उत्तर—अनिष्ट प्रसङ्ग उपस्थित होनेपर या उसका चिन्तवन करनेपर रज रूप परिणाम होनेको शोक कहते है।

प्रश्न ७५—भय किसे कहते है ?

उत्तर—अपनी कल्पनानुसार जिसे अहित माना है उससे शङ्का करने या डरनेको भय कहते है।

प्रश्न ७६– जुगुप्सा किसे कहते है ?

उत्तर—अरुचिकर विषयोमे ग्लानि करनेको जुगुप्सा कहते है।

प्रश्न ७७– पुरुषवेद किसे कहते है ?

उत्तर—आत्मीय गुण, पुरुषार्थके विकासमे उत्साह व यत्न करनेको पुरुषवेद कहते है अथवा स्त्रीके साथ रमण करनेके अभिलाष परिणामको पुरुषवेद कहते है।

प्रश्न ७८– स्त्रीवेद किसे कहते है ?

उत्तर– मायाचारकी मुख्यता, पुरुषार्थमे निरुत्साह, भयशीलता आदिक परिणामको अथवा पुरुषके साथ रमण करनेके अभिलाष परिणामको स्त्रीवेद कहते है।

प्रश्न ७९—नपुंसकवेद किसे कहते है ?

उत्तर– कायरता व कर्तव्यमे निरुत्साह आदि परिणामको अथवा पुरुष व स्त्री दोनो के साथ रमण करनेके परिणामको नपुंसकवेद कहते है।

प्रश्न ८०—योग किसे कहते है ?

उत्तर–मन, वचन, कायके निमित्तसे आत्मप्रदेशके परिस्पद होनेके कारणभूत प्रयत्न को योग कहते है।

प्रश्न ८१—योगके कितने भेद है ?

उत्तर—योगके मूल भेद ३ है-- (१) मनोयोग, (२) वचनयोग, (३) काययोग। योगके उत्तर भेद १५ है– (१) सत्यमनोयोग, (२) असत्यमनोयोग, (३) उभयमनोयोग, (४) अनुभयमनोयोग, (५) सत्यवचनयोग, (६) असत्यवचनयोग, (७) उभयवचनयोग,

(८) अनुभयवचनयोग, (९) औदारिक काययोग, (१०) औदारिक मिश्रकाययोग, (११) वैक्रियककाययोग, (१२) वैक्रियकमिश्रकाययोग, (१३) आहारककाययोग, (१४) आहारकमिश्रकाययोग, (१५) कार्माणकाययोग ।

प्रश्न ८२-- सत्यमनोयोग किसे कहते है ?

उत्तर-- सत्यवचनके कारणभूत मनको सत्यमन कहते है और सत्यमनके निमित्तसे होने वाले योगको सत्यमनोयोग कहते है ।

प्रश्न ८३-- असत्यमनोयोग किसे कहते है ?

उत्तर—असत्यवचनके कारणभूत मनको असत्यमन कहते है और असत्य मनके निमित्तसे होने वाले योगको असत्यमनोयोग कहते है ।

प्रश्न ८४-- उभयमनोयोग किसे कहते है ?

उत्तर-- उभय (सत्य व असत्य मिले हुये) वचनके कारणभूत मनको उभयमन कहते है और उभयमनके निमित्तसे होने वाले योगको उभयमनयोग कहते है ।

प्रश्न ८५-- अनुभयमनोयोग किसे कहते है ?

उत्तर--अनुभय अर्थात् जो न सत्य है और न असत्य, ऐसे वचनके कारणभूत मनको अनुभयमन कहते है और अनुभयमनके निमित्तसे होने वाले योगको अनुभयमनोयोग कहते है ।

प्रश्न ८६-- सत्यवचनयोग किसे कहते हैं ?

उत्तर-- सत्यवचनके निमित्तसे होने वाले योगको सत्यवचनयोग कहते है ।

प्रश्न ८७—असत्यवचनयोग किसे कहते है ?

उत्तर-- असत्य वचनके निमित्तसे होने वाले योगको असत्यवचनयोग कहते है ।

प्रश्न ८८-- उभयवचनयोग किसे कहते है ?

उत्तर—सत्य व असत्य मिश्रित वचनके निमित्तसे होने वाले योगको उभयवचनयोग कहते है ।

प्रश्न ८९-- अनुभयवचनयोग किसे कहते है ?

उत्तर-- अनुभय (जो न सत्य है और न असत्य है) वचनके निमित्तसे होने वाले योगको अनुभयवचनयोग कहते है ।

प्रश्न ९०-- दिव्यध्वनिके शब्द किस वचनरूप है ?

उत्तर-- दिव्यध्वनिके शब्द अनुभयवचन है और ये ही शब्द श्रोतावोके कर्णमे प्रविष्ट होनेपर सत्यवचन कहलाते है ।

प्रश्न ९१-- द्वीन्द्रियादि असज्ञी जीवोके शब्द किस वचनरूप है?

उत्तर-- द्वीन्द्रियादि असंज्ञी जीवोके शब्द अनुभयवचनरूप है ।

प्रश्न ९२—सञ्ज्ञी जीवोकी कौनसी भाषा अनुभयवचन रूप है ?

उत्तर— प्रश्न, आज्ञा, निमन्त्रण आदिके शब्द अनुभयवचन कहलाते है।

प्रश्न ९३— औदारिक काययोग किसे कहते है ?

उत्तर— मनुष्य व तिर्यंचोके शरीरको औदारिक काय कहते हैं, उस कायके निमित्तसे होने वाले योगको औदारिक काययोग कहते है।

प्रश्न ९४-- औदारिक मिश्रकाययोग किसे कहते हैं ?

उत्तर— औदारिक मिश्रकायके निमित्त होने वाले योगको औदारिक मिश्रकाययोग कहते है।

प्रश्न ९५— औदारिक मिश्रकाय कब होता है ?

उत्तर— कोई जीव मरकर मनुष्य या तिर्यंचगतिमे जावे। वहाँ जन्मस्थानपर पहुचते ही यह जीव औदारिक वर्गणाओको शरीररूपसे ग्रहण करने लगता है, किन्तु जब तक शरीर पर्याप्ति (शरीर बनानेकी शक्ति) पूर्ण नही हो पाती है तब तक उस शरीरको औदारिक मिश्रकाय कहते है। इस अपर्याप्त अवस्थानमे कार्माणवर्गणा और औदारिक वर्गणा दोनोका सम्मिलित ग्रहण है।

प्रश्न ९६— वैक्रियककाययोग किसे कहते है ?

उत्तर—देव व नारकियोके शरीरको वैक्रियककाय कहते है, उसके निमित्तसे होने वाले योगको वैक्रियककाययोग कहते है।

प्रश्न ९७—वैक्रियकमिश्रकाययोग किसे कहते है ?

उत्तर— वैक्रियकमिश्रकायके निमित्तसे होने वाले योगको वैक्रियकमिश्रकाययोग कहते है।

प्रश्न ९८—वैक्रियकमिश्रकाय कब होता है ?

उत्तर—कोई मनुष्य या तिर्यञ्च मरकर देव या नरकगतिमे जावे। वहाँ जन्मस्थान पर पहुचते ही जीव वैक्रियक वर्गणाओको शरीर रूपसे ग्रहण करने लगता है। किन्तु जब तक शरीर पर्याप्ति (शरीर रचना होनेकी शक्ति) पूर्ण नही हो पाती तब तक इस शरीरको औदारिक मिश्रकाय कहते है। इस अपर्याप्ति अवस्थानमे कार्माणवर्गणा और वैक्रियकवर्गणा—इन दोनोका सम्मिलित ग्रहण है।

प्रश्न ९९—आहारककाययोग किसे कहते है ?

उत्तर— प्रमत्तविरत (छठे) गुणस्थानवर्ती आहारकऋद्धिधारी मुनिके जब कोई सूक्ष्म तत्त्वमे शका उत्पन्न होती है तब उनके मस्तकसे एक हाथका, धवल, पवित्र, अव्याघाती आहारक शरीर निकलता है। यह पुतला केवली या श्रुतकेवलीके दर्शन करके वापिस मस्तक

इसे आहारक समुद्घात कहते है।

मे समा जाता है। उस समय मुनिकी शका निवृत्त हो जाती है। इस आहारक शरीरके निमित्तसे जो योग होता है उसे आहारककाययोग कहते है।

प्रश्न १००– आहारकमिश्रकाययोग किसे कहते है ?

उत्तर—यह आहारकशरीर जब तक पूर्ण बन नही लेता तब तक आहारक मिश्र-काय कहलाता है। इस आहारकमिश्रकायके निमित्तसे होने वाले योगको आहारकमिश्रकाय-योग कहते है। इस अपर्याप्ति अवस्थानमे औदारिक वर्गणा व आहारकवर्गणा दोनोका सम्मि-लित ग्रहण है।

प्रश्न १०१—कार्माणकाययोग किसे कहते है ?

उत्तर—कोई जीव मरकर दूसरी गतिमे मोडे वाली विग्रहगतिसे जावे तो उसके उस रास्तेमे केवल कार्माणकायके निमित्तसे होता है तथा समुद्घातकेवलीके प्रतर और लोकपूरण समुद्घातमे केवल कार्माणकायके निमित्तसे योग होता है। उस योगको कार्माणकाययोग कहते है।

प्रश्न १०२-- इन सब आस्रवोके जाननेसे क्या लाभ है ?

उत्तर—ये सब आस्रव विभावरूप है, मैं मात्र चैतन्यस्वरूप हू। इस प्रकार अन्तर जाननेसे भेदविज्ञान होता है तथा भूतार्थनयसे आस्रवका जानना निश्चय सम्यक्त्वकी उत्पत्ति का कारण है।

प्रश्न १०३– भूतार्थनय किसे कहते है ?

उत्तर-- एकके गुणपर्यायोको उस ही एककी ओर झुकते हुए उस एकमे ही जाननेको भूतार्थनय कहते है।

प्रश्न १०४– भूतार्थनयसे आस्रवका जानना किस प्रकार है ?

उत्तर—ये सब आस्रव पर्याये हैं। किस द्रव्यकी है ? जीवद्रव्यकी। जीवद्रव्यके किस गुणकी है ? मिथ्यात्व तो सम्यक्त्व (श्रद्धा) गुणकी पर्यायें है और योग योगशक्तिकी पर्याये है, शेष सब चारित्रगुणकी पर्याये है। इस प्रकार द्रव्य, गुण, पर्यायोको यथार्थ जानकर एकत्वकी ओर उपयोग जावे, इस प्रकार जानना भूतार्थनयका जानना होता है। जैसे यह लोभ पर्याय चारित्रगुणकी है, इस बोधमे पर्यायदृष्टिसे गौण हो जाती है और गुणदृष्टि मुख्य हो जाती है पुनः चारित्रगुण जीवद्रव्यका है, इस बोधमे गुणदृष्टि गौण हो जाती है और द्रव्यदृष्टि मुख्य हो जाती है। पश्चात् द्रव्यदृष्टिमे विकल्पका अवकाश न होनेसे द्रव्यदृष्टि भी छूटकर केवल सहज आनन्दमय परिणमनका अनुभव रह जाता है। इस शुद्ध आत्मतत्त्वकी अनुभूतिको निश्चय सम्यक्त्व कहते है।

इस प्रकार भावास्रवके स्वरूपका विशेष रूपसे वर्णन करके अब द्रव्यास्रवके स्वरूपका

विशेष रूपसे वर्णन करते है—

णाणावरणादीण जोग्गं जं पुग्गलं समासवदि ।
दव्वासवो स णेओ अणेयभेओ जिणक्खादो ॥३१॥

अन्वय— णाणावरणादीण जोग्गं जं पुग्गलं समासवदि स दव्वासवो अणेयभेओ णेओ जिणक्खादो ।

अर्थ—ज्ञानावरणादि कर्मरूपसे परिणत होने योग्य जो पुद्गल आता है वह अनेक भेद वाला द्रव्यास्रव जानना चाहिये, ऐसा श्री जिनेन्द्रदेवने कहा है ।

प्रश्न १— कौनसे पुद्गल कर्मरूपमे परिणत होनेके योग्य होते है ?

उत्तर—कार्माणवर्गणा नामक स्कन्ध कर्मरूपसे परिणत होनेके योग्य होते हैं ।

प्रश्न २— कार्माणवर्गणायें कहाँ मौजूद रहती है ?

उत्तर—कार्माणवर्गणाये समस्त लोकमे ठसाठस व्याप्त है । लोकके एक-एक प्रदेशपर अनन्त कार्माणवर्गणाये है ।

प्रश्न ३—उन कार्माणवर्गणाओका कर्मरूप होनेसे पहिले भी जीवके साथ कोई सम्बध है या नही ?

उत्तर—कुछ कार्माणवर्गणाओका कर्मरूप होनेसे पहिले भी जीवके साथ एकक्षेत्राव-गाह सम्बन्ध रहता है, उन्हे विस्रसोपचय कहा जाता है । सभी ससारी जीवोके विस्रसोपचय बना रहता है ।

प्रश्न ४—क्या कुछ कार्माणवर्गणायें विस्रसोपचयसे अलग भी है ?

उत्तर— कुछ कार्माणवर्गणाये विस्रसोपचयसे अलग भी है । ये भी कभी विस्रसोपचय मे शामिल हो जाती है ।

प्रश्न ५—क्या विस्रसोपचय वाले स्कन्ध ही कर्मरूप परिणत होते है या अन्य कार्मा-णवर्गणायें भी कर्मरूप परिणत हो जाते है ?

उत्तर—विस्रसोपचयके कार्माण स्कन्ध ही कर्मरूप परिणत होते है । अन्य कार्माण-वर्गणाये भी विस्रसोपचयरूप बनकर कर्मरूप परिणत हो जाती है ।

प्रश्न ६— कर्म कितने प्रकारके है ?

उत्तर—कर्मके मूलमे २ प्रकार है—(१) घातियाकर्म और (२) अघातियाकर्म ।

प्रश्न ७—घातियाकर्म किसे कहते है ?

उत्तर—जो कर्म आत्माके ज्ञानादि अनुजीवी गुणोके घातनेमे निमित्त हो उन्हे घातियाकर्म कहते है ।

प्रश्न ८—अनुजीवी गुण किसे कहते है ?

उत्तर—भावात्मक गुणोको अनुजीवी गुण कहते है। इन गुणोके अविभागप्रतिच्छेद होते है। ये गुण कर्म या अधिक नाना प्रकारके स्थानोमे विकसित हो सकते है। जैसे ज्ञान, दर्शन, सम्यक्त्व, चारित्र, शक्ति।

प्रश्न ६—अघातियाकर्म किसे कहते है?

उत्तर—जो कर्म जीवके अनुजीवी गुणोका घात न करे और केवल प्रतिजीवी गुणोका विकास रुकनेमे निमित्त हो उन्हे अघातियाकर्म कहते है।

प्रश्न १०—प्रतिजीवी गुण किसे कहते है?

उत्तर—अभावात्मक धर्मोको प्रतिजीवी गुण कहते है। इन गुणोके अविभागप्रतिच्छेद नही होते। जैसे अगुरुलघुत्व, सूक्ष्मत्व, अवगाहना, अव्याबाध।

प्रश्न ११—घातियाकर्मके कितने भेद है?

उत्तर—घातियाकर्मके चार भेद है—(१) ज्ञानावरणकर्म, (२) दर्शनावरणकर्म, (३) मोहनीयकर्म और अन्तरायकर्म।

प्रश्न १२—ज्ञानावरणकर्म किसे कहते है?

उत्तर—जो कर्म आत्माके ज्ञानगुणको प्रकट न होने दे अर्थात् ज्ञानगुणके अविकासमे जो निमित्त हो उसे ज्ञानावरणकर्म कहते है।

प्रश्न १३—ज्ञानावरणकर्मके कितने प्रकार है?

उत्तर—ज्ञानावरणकर्मके ५ प्रकार है—(१) मतिज्ञानावरण, (२) श्रुतज्ञानावरण, (३) अवधिज्ञानावरण, (४) मनःपर्ययज्ञानावरण और (५) केवलज्ञानावरण।

प्रश्न १४—मतिज्ञानावरणकर्म किसे कहते है?

उत्तर—जिस कर्मके उदयको पाकर मतिज्ञान प्रकट न हो, उसे मतिज्ञानावरणकर्म कहते है।

प्रश्न १५—श्रुतज्ञानावरणकर्म किसे कहते है?

उत्तर—जो श्रुतज्ञानको प्रकट न होने दे उसे श्रुतज्ञानावरणकर्म कहते है।

प्रश्न १६—अवधिज्ञानावरणकर्म किसे कहते है?

उत्तर—जो अवधिज्ञानका आवरण करे उस कर्मको अवधिज्ञानावरणकर्म कहते है।

प्रश्न १७—मनःपर्ययज्ञानावरणकर्म किसे कहते है?

उत्तर—जो कर्म मनःपर्ययज्ञानको प्रकट न होने दे, उसे मनःपर्ययज्ञानावरणकर्म कहते है।

प्रश्न १८—केवलज्ञानावरणकर्म किसे कहते है?

उत्तर—जो कर्म केवलज्ञानको प्रकट न होने दे, उसे केवलज्ञानावरणकर्म कहते है।

प्रश्न १९– आत्मामे यदि केवलज्ञान आदि ज्ञान है तो उनका आवरण हो ही नही सकता और यदि नही है तो आवरण किसका हो ?

उत्तर– आत्मामे केवलज्ञान आदि शक्तिरूपसे है, कर्मके निमित्तसे वे प्रकट नही हो पाते, यही उनका आवरण है ।

प्रश्न २०– क्या ज्ञानावरणकर्म निश्चयसे ज्ञानका घात करते है ?

उत्तर– एक द्रव्य दूसरे द्रव्यका किसी प्रकारका परिणमन नही करता, अतः निश्चय से कर्म ज्ञानका घात नही करता, किन्तु ऐसा सहज ही निमित्तनैमित्तिक सम्बध है कि कर्मके उदय होनेपर आत्मज्ञानगुणका उचित विकास नही कर पाता । उदय भी ऐसी योग्यता वालो के होता है।

प्रश्न २१-- दर्शनावरणकर्म किसे कहते है ?

उत्तर-- जो आत्माके दर्शनगुणका विकास न होने दे, उसे दर्शनावरणकर्म कहते है ।

प्रश्न २२-- दर्शनावरणकर्मके कितने भेद है ?

उत्तर-- दर्शनावरणकर्मके ९ भेद है– (१) चक्षुर्दर्शनावरण, (२) अचक्षुर्दर्शनावरण, (३) अवधिदर्शनावरण, (४) केवलदर्शनावरण, (५) निद्रा, (६) निद्रानिद्रा, (७) प्रचला, (८) प्रचलाप्रचला, (९) स्त्यानगृद्धि ।

प्रश्न २३– चक्षुर्दर्शनावरणकर्म किसे कहते है ?

उत्तर-- जो कर्म चक्षुर्दर्शनको न होने दे उसे चक्षुर्दर्शनावरणकर्म कहते है ।

प्रश्न २४-- अचक्षुर्दर्शनावरणकर्म किसे कहते है ?

उत्तर-- जो कर्म अचक्षुर्दर्शन न होने दे उसे अचक्षुर्दर्शनावरणकर्म कहते है ।

प्रश्न २५—अवधिदर्शनावरणकर्म किसे कहते है ?

उत्तर—जो कर्म अवधिदर्शन न होने दे उसे अवधिदर्शनावरणकर्म कहते है ।

प्रश्न २६—केवलदर्शनावरणकर्म किसे कहते है ?

उत्तर—जो कर्म केवलदर्शनको प्रकट न होने दे उसे केवलदर्शनावरणकर्म कहते है ।

प्रश्न २७—निद्रादर्शनावरणकर्म किसे कहते है ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे साधारण नीद आवे, जहा दर्शन अथवा स्वसवेदन न हो सके उस कर्मको निद्रादर्शनावरणकर्म कहते है ।

प्रश्न २८—निद्रानिद्रादर्शनावरणकर्म किसे कहते है ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे गाढ निद्रा आवे, बीचमे जगकर भी पुन. सो जावे, जिससे दर्शन अथवा स्वसम्वेदन नही हो सकता उसे निद्रानिद्रादर्शनावरणकर्म कहते है ।

प्रश्न २९—प्रचलादर्शनावरणकर्म किसे कहते है ?

उत्तर— जिस कर्मके उदयसे अर्धनिद्रितसा सोवे, जिससे दर्शनगुणका उपयोग न हो सके उसे प्रचलादर्शनावरणकर्म कहते है।

प्रश्न ३०—प्रचलाप्रचलादर्शनावरणकर्म किसे कहते है?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे ऐसी निद्रा आवे जहाँ अङ्ग उपाङ्ग चलें, दाँत किटकिटाये, मुहमे लार बहे आदि जिससे दर्शनोपयोग न हो उसे प्रचलाप्रचलादर्शनावरणकर्म कहते है।

प्रश्न ३१— स्त्यानगृद्धिदर्शनावरणकर्म किसे कहते है?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे ऐसी निद्रा आवे कि निद्रामे ही उठकर कोई बडा काम कर आवे और जागनेपर यह मालूम भी न हो उसे स्त्यानगृद्धिदर्शनावरणनामकर्म कहते है। इसके उदयमे भी जीवको दर्शन अथवा स्वसवेदन नही हो पाता।

प्रश्न ३२— मोहनीयकर्म किसे कहते है?

उत्तर— जिस कर्मके उदयसे अन्य तत्त्वोमे मोहित हो जाय, अपने शुद्ध स्वरूपका भान न कर सके और न स्वरूपमे स्थिर हो सके उसे मोहनीयकर्म कहते है।

प्रश्न ३३—मोहनीयकर्मके कितने भेद है?

उत्तर— मोहनीयकर्मके मूलमे दो भेद है—(१) दर्शनमोहनीय, (२) चारित्रमोहनीय।

प्रश्न ३४—दर्शनमोहनीयके कितने भेद है?

उत्तर—दर्शनमोहनीयके तीन भेद है—(१) मिथ्यात्व, (२) सम्यग्मिथ्यात्व और (३) सम्यक्प्रकृति।

प्रश्न ३५—चारित्रमोहनीयके कितने भेद है?

उत्तर— चारित्रमोहनीयके २५ भेद है—१६ कषायवेदकमोहनीय और ९ नोकषायवेदकमोहनीय।

प्रश्न ३६— कषायवेदकमोहनीयकर्म १६ कौन-कौनसे है?

उत्तर—कषायवेदकमोहनीयकर्म १६ इस प्रकार है—(१) अनन्तानुबधीक्रोधवेदकमोहनीय, (२) अनन्तानुबधीमानवेदकमोहनीय, (३) अनन्तानुबधीमायावेदकमोहनीय, (४) अनन्तानुबधीलोभवेदकमोहनीय, (५) अप्रत्याख्यानावरणक्रोधवेदकमोहनीय, (६) अप्रत्याख्यानावरणमानवेदकमोहनीय, (७) अप्रत्याख्यानावरणमायावेदकमोहनीय, (८) अप्रत्याख्यानावरणलोभवेदकमोहनीय, (९) प्रत्याख्यानावरणक्रोधवेदकमोहनीय, (१०) प्रत्याख्यानावरणमानवेदकमोहनीय, (११) प्रत्याख्यानावरणमायावेदकमोहनीय, (१२) प्रत्याख्यानावरणलोभवेदकमोहनीय, (१३) सज्वलनक्रोधवेदकमोहनीय, (१४) सज्वलनमानवेदकमोहनीय, (१५) सज्वलनमायावेदकमोहनीय और (१६) सज्वलनलोभवेदकमोहनीयकर्म।

प्रश्न ३७– नोकषायवेदकमोहनीयकर्मके ९ प्रकार कौन-कौनसे हैं ?

उत्तर– नोकपायवेदकमोहनीयकर्म ९ इस प्रकार है– (१) हास्यवेदकमोहनीय, (२) रतिवेदकमोहनीय, (३) अरतिवेदकमोहनीय, (४) शोकवेदकमोहनीय, (५) भयवेदकमोहनीय, (६) जुगुप्सावेदकमोहनीय, (७) पुरुषवेदकमोहनीय, (८) स्त्रीवेदकमोहनीय और (९) नपुंसकवेदकमोहनीय ।

प्रश्न ३८— मिथ्यात्वमोहनीयकर्म किसे कहते है ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयको निमित्त पाकर आत्मा यथार्थ श्रद्धान न कर सके उसे मिथ्यात्वमोहनीयकर्म कहते है । इस कर्मके उदयसे जीव शुद्ध निजस्वरूपका प्रत्यय नही कर सकता व शरीर आदिमे आत्मबुद्धि करता है ।

प्रश्न ३९– सम्यग्मिथ्यात्वमोहनीयकर्म किसे कहते है ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे जीवके न तो केवलसम्यक्त्वरूप परिणाम हो और न केवल मिथ्यात्वरूप परिणाम हो, किन्तु मिले हुए हो उस कर्मको सम्यग्मिथ्यात्वमोहनीयकर्म कहते हैं ।

प्रश्न ४०– सम्यक्प्रकृतिमोहनीयकर्म किसे कहते है ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे आत्माके सम्यग्दर्शनमे चल, मलिन, अगाढ दोष उत्पन्न हो उसे सम्यक्प्रकृतिमोहनीयकर्म कहते है । इस कर्मके उदयमे सम्यग्दर्शनका घात नही होता। ये चल मलिन अगाढ दोप भी अत्यन्त सूक्ष्मरूप दोष है ।

प्रश्न ४१– अनन्तानुबन्धी क्रोधवेदकमोहनीयकर्म किसे कहते है ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे पाषाणरेखा सदृश दीर्घकाल तक न मिटने वाले ऐसे क्रोधका वेदन हो जिससे मिथ्यात्वभाव पुष्ट होता चला जावे उस कर्मको अनन्तानुबन्धी क्रोधवेदकमोहनीयकर्म कहते हैं ।

प्रश्न ४२– अनन्तानुबन्धी मानवेदकमोहनीयकर्म किसे कहते है ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे पाषाणकी कठोरता सदृश दीर्घकाल तक न नमने वाले मानका वेदन हो जिससे मिथ्यात्व पुष्ट होता रहे उसको अनन्तानुबन्धी मानवेदकमोहनीयकर्म कहते है ।

प्रश्न ४३– अनन्तानुबन्धी मायावेदकमोहनीयकर्म किसे कहते है ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे बासकी जडकी तरह अत्यन्त वक्र माया (छल कपट) का परिणमन हो जिससे मिथ्यात्व पुष्ट होता रहे उसको अनन्तानुबन्धी मायावेदकमोहनीयकर्म कहते है ।

प्रश्न ४४—अनन्तानुबन्धी लोभवेदकमोहनीयकर्म किसे कहते है ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे हिरमजीके रंगकी तरह दीर्घकाल तक न छूटने वाली

तृष्णाका वेदन हो जिससे मिथ्यात्व पुष्ट होता रहे उसे अनन्तानुबन्धी लोभवेदकमोहनीयकर्म कहते हैं।

प्रश्न ४५-- अनन्तानुबन्धी कषायका कितना काल है ?

उत्तर-- अनन्तानुबन्धी कषायके सस्कारकी अवधि नही है। यह कई भवो तक साथ जा सकता है, अनन्त भवो तक साथ जा सकता है।

प्रश्न ४६-- अनन्तानुबन्धी कषायका कार्य क्या है ?

उत्तर—सम्यक्त्व न होने देना और मिथ्यात्वको उत्पन्न करना, पुष्ट करना, दोनो अनन्तानुबन्धी कषायके कार्य है।

प्रश्न ४७—अनन्तानुबन्धी शब्दका निरुक्त्यर्थ क्या है ?

उत्तर—जो अनन्त भवो तक भी सम्बन्ध रखे उसे अनन्तानुवन्धी कहते है।

प्रश्न ४८-- अप्रत्याख्यानावरण क्रोधवेदकमोहनीयकर्म किसे कहते है ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे हलरेखासदृश (पृथ्वीमे हलके चलनेसे होने वाले गड्ढेकी तरह) कुछ बहुत काल तक न मिटने वाले क्रोधका वेदन हो जिससे सयमासयम प्रकट न हो सकता उसको अप्रत्याख्यानावरण क्रोधवेदकमोहनीयकर्म कहते है।

प्रश्न ४९-- अप्रत्याख्यानावरण मानवेदकमोहनीयकर्म किसे कहते है ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे हड्डीकी तरह कुछ कठिनतासे मुडने वाले मानका वेदन हो जिससे सयमासयम प्रकट नही हो सकता उसको अप्रत्याख्यानावरण मानवेदकमोहनीयकर्म कहते है।

प्रश्न ५०—अप्रत्याख्यानावरण मायावेदकमोहनीयकर्म किसे कहते है ?

उत्तर-- जिस कर्मके उदयसे मेढाके सीगकी कुटिलताकी तरह वक्र मायाका वेदन करे जिससे संयमासयम प्रकट नही हो सकता उसे अप्रत्याख्यानावरण मायावेदकमोहनीयकर्म कहते है।

प्रश्न ५१—अप्रत्याख्यानावरण लोभवेदकमोहनीयकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर-- जिस कर्मके उदयसे चकेके ओगनके रगको रगाईकी तरह कुछ बहुत काल तक न छूटने वाली तृष्णाका वेदन हो जिससे सयमासयम प्रकट नही हो सकता उसे अप्रत्याख्यानावरण लोभवेदकमोहनीयकर्म कहते हैं।

प्रश्न ५२-- अप्रत्याख्यानावरण कषायका काल कितना है ?

उत्तर—अप्रत्याख्यानावरण कषायका सस्कार अधिकसे अधिक ६ माह तक रहता है।

प्रश्न ५३-- अप्रत्याख्यानावरण कषायका कार्य क्या है ?

उत्तर—अप्रत्याख्यानवरण कषायका कार्य देश सयमको प्रकट न होने देना है।

अप्रत्याख्यानावरणका शब्दार्थ यह है— अ– ईषत्, प्रत्याख्यान– त्यागका, आवरण– ढाकने वाला। ईषत् माने आंशिक त्यागको देशसयम अथवा सयमासयम कहते है।

प्रश्न ५४– प्रत्याख्यानावरण क्रोधवेदकमोहनीयकर्म किसे कहते है?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे धूलिरेखा याने गाडीके चक्केकी लकीरके सदृश अल्पकाल तक ही न मिटने वाले क्रोधका वेदन हो जिससे सकल सयम प्रकट नही हो सकता उसे प्रत्याख्यानावरण क्रोधवेदकमोहनीयकर्म कहते है।

प्रश्न ५५—प्रत्याख्यानावरण मानवेदकमोहनीयकर्म किसे कहते है?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे लकडी याने काष्ठदण्डकी तरह कुछ शीघ्र मुड़ जाने वाले मानका वेदन हो जिससे सकल संयम प्रकट नही हो सकता उसे प्रत्याख्यानावरण मानवेदकमोहनीयकर्म कहते है।

प्रश्न ५६– प्रत्याख्यानावरण मायावेदकमोहनीयकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे गौमूत्रकी तरह अल्पवक्ररूप मायाका वेदन हो जिससे सकल सयम प्रकट नही हो सकता उसे प्रत्याख्यानावरण मायावेदकमोहनीयकर्म कहते है।

प्रश्न ५७– प्रत्याख्यानावरण लोभवेदकमोहनीयकर्म किसे कहते है?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे शरीरपर लगे हुए मलकी तरह अल्प प्रयत्नसे छूट सकने वाली तृष्णाका वेदन हो जिससे सकल सयम प्रकट नही हो सकता उसे प्रत्याख्यानावरण लोभवेदकमोहनीयकर्म कहते हैं।

प्रश्न ५८—प्रत्याख्यानावरण कषायका काल कितना है?

उत्तर—प्रत्याख्यानावरण कषायके सस्कारका काल अधिकसे अधिक १५ दिन तक ही है।

प्रश्न ५९– प्रत्याख्यानावरण कषायका कार्य क्या है?

उत्तर—प्रत्याख्यानावरण कषायका कार्य सकल सयम (महाव्रत) प्रकट नही होने देना है। प्रत्याख्यानावरणका शब्दार्थ यह है—प्रत्याख्यान = त्याग (सर्वदेश व्रत) का, आवरण = ढाकने वाला।

प्रश्न ६०– सज्वलनक्रोधवेदक मोहनीयकर्म किसे कहते है?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे जलरेखाके सदृश शीघ्र मिट जाने वाले क्रोधका वेदन हो जिससे यथाख्यात चारित्र प्रकट नही हो सकता उसे सज्वलनक्रोधवेदक मोहनीयकर्म कहते है।

प्रश्न ६१– सज्वलनमानवेदक मोहनीयकर्म किसे कहते है?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे बेंत (पतली छडी) की नम्रताकी तरह शीघ्र मिट सके, ऐसे मानका वेदन हो जिससे यथाख्यात चारित्र प्रकट नही हो सकता उसे सज्वलनमानवेदक

मोहनीयकर्म कहते है।

प्रश्न ६२-- सज्वलनमायावेदक मोहनीयकर्म किसे कहते है ?

उत्तर - जिस कर्मके उदयसे चमरी गौ के केशोंकी तरह अत्यल्प वक्रता वाले मायाकषायका वेदन हो जिससे यथाख्यात चारित्र प्रकट नही हो सकता उसे सज्वलनमायावेदक मोहनीयकर्म कहते है ।

प्रश्न ६३—सज्वलनलोभवेदक मोहनीयकर्म किसे कहते है ?

उत्तर— जिस कर्मके उदयसे हल्दीके रंगकी तरह शीघ्र नष्ट हो जाने वाली तृष्णाका वेदन हो जिससे यथाख्यात चारित्र प्रकट नही हो सकता उसे सज्वलनलोभवेदक मोहनीयकर्म कहते है ।

प्रश्न ६४— संज्वलनकषायका काल कितना है ?

उत्तर— सज्वलनकषायके सस्कारका काल अन्तर्मुहूर्त तक ही हो सकता है ।

प्रश्न ६५— सज्वलन कषायका कार्य क्या है ?

उत्तर— सज्वलनका शब्दार्थ है—स = सम्यक् प्रकारसे, ज्वलन = जो जले अर्थात् सज्वलनकषाय सकलसयमका नाश न करते हुए रहती है, यही इसका सम्यक्पना है और कषायके कारण यथाख्यात चारित्र प्रकट नही हो पाता ।

प्रश्न ६६— यथाख्यात चारित्र किसे कहते है ?

उत्तर— कषायका अभाव होनेपर आत्माका यथा = जैसा कषायरहित शुद्ध स्वभाव है उस स्वरूपके ख्यात याने प्रकट हो जानेको यथाख्यात चारित्र कहते है ।

प्रश्न ६७—हास्यवेदक मोहनीयकर्म किसे कहते है ?

उत्तर— जिस कर्मके उदय होनेपर हास्यजनक राग हो उसे हास्यवेदक मोहनीयकर्म कहते है ।

प्रश्न ६८— रतिवेदक मोहनीयकर्म किसे कहते है ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे इष्ट विषयोमे रमे उसे रतिवेदक मोहनीयकर्म कहते है ।

प्रश्न ६९— अरतिवेदक मोहनीयकर्म किसे कहते है ?

उत्तर— जिस कर्मके उदयसे अनिष्ट विषयोमे अरुचि हो उसे अरतिवेदक मोहनीयकर्म कहते है ।

प्रश्न ७०—शोकवेदक मोहनीयकर्म किसे कहते है ?

उत्तर— जिस कर्मके उदयसे जीवके विषाद उत्पन्न हो उसे शोकवेदक मोहनीयकर्म कहते है ।

प्रश्न ७१—भयवेदक मोहनीयकर्म किसे कहते है ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे जीवके भय उत्पन्न हो उसको भयवेदक मोहनीयकर्म कहते हैं।

प्रश्न ७२– जुगुप्सावेदक मोहनीयकर्म किसे कहते है ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे जीवके ग्लानि उत्पन्न हो उसे जुगुप्सावेदक मोहनीयकर्म कहते है।

प्रश्न ७३– पुरुषवेदक मोहनीयकर्म किसे कहते है ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे महान् कर्तव्योमे वृत्ति, स्त्रीरमणाभिलाषा आदि पौरुष भाव हो उसे पुरुषवेदक मोहनीयकर्म कहते है।

प्रश्न ७४– स्त्रीवेदक मोहनीयकर्म किसे कहते है ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे कोमलाङ्गता, नेत्रविभ्रम, मुख फुलाना, पुरुष रमणेच्छा आदि स्त्रैण भाव हो उसे स्त्रीवेदक मोहनीयकर्म कहते है।

प्रश्न ७५– नपुसकवेदक मोहनीयकर्म किसे कहते है ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे स्त्री पुरुष दोनोमे रमनेकी इच्छा, कामाग्निकी प्रबलता, कायरता आदि क्लैव भाव उत्पन्न हो उसे नपुसकवेदक मोहनीयकर्म कहते है।

प्रश्न ७६– इन उक्त नौ भेदोका नाम नोकषाय क्यो है ?

उत्तर—इन कर्मोंकी स्थिति अल्प होती है और इनमे अनुभाग भी अल्प होता है, इस कारण ये ईषत् कषायें है। नोकषायका शब्दार्थ यह है–नो = ईषत् कषाय सो नोकषाय।

प्रश्न ७७– अन्तरायकर्म किसे कहते है ?

उत्तर– जो कर्म दो के बीच अन्तरको उत्पन्न करनेमे निमित्त हो उसे अन्तरायकर्म कहते है। अन्तराय शब्दका अर्थ भी यही है कि जो अन्तरका आय याने उत्पाद करे सो अतराय अर्थात् जो जीवके दान, लाभ आदिमे विघ्न होनेमे निमित्त हो उसे अतरायकर्म कहते है।

प्रश्न ७८—अन्तरायकर्मके कितने भेद है ?

उत्तर—अन्तरायकर्मके ५ भेद है-- (१) दानान्तराय, (२) लाभान्तराय, (३) भोगान्तराय, (४) उपभोगान्तराय और (५) वीर्यान्तराय।

प्रश्न ७९—दानान्तरायकर्म किसे कहते है ?

उत्तर-- जिस कर्मके उदयसे दान देते हुए जीवके दानमे विघ्न उपस्थित हो उसे दानान्तरायकर्म कहते है।

प्रश्न ८०– लाभान्तरायकर्म किसे कहते है ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे जीवके लाभमे विघ्न हो उसे लाभान्तरायकर्म कहते है।

प्रश्न ८१—भोगान्तरायकर्म किसे कहते है ?

उत्तर— जिस कर्मके उदयसे जीवके भोगमे विघ्न उपस्थित हो उसे भोगान्तरायकर्म कहते है ।

प्रश्न ८२—उपभोगान्तरायकर्म किसे कहते है ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे जीव उपभोगमे विघ्न आवे उसे उपभोगान्तरायकर्म कहते है ।

प्रश्न ८३-- वीर्यान्तरायकर्म किसे कहते है ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे जीवके शक्तिके विकासमे विघ्न हो उसे वीर्यान्तरायकर्म कहते है ।

प्रश्न ८४—अघातियाकर्मके कितने भेद है ?

उत्तर—अघातिया कर्मके ४ भेद है— (१) वेदनीयकर्म, (२) आयुकर्म, (३) नामकर्म और गोत्रकर्म ।

प्रश्न ८५—वेदनीयकर्म किसे कहते है ?

उत्तर-- जिस कर्मके उदयसे जीव इन्द्रिय व मनके विषयोंका भोगरूप वेदन करे उसे वेदनीयकर्म कहते है ।

प्रश्न ८६-- वेदनीयकर्मके कितने भेद है ?

उत्तर— वेदनीयकर्मके २ भेद है— (१) सातावेदनीय और (२) असातावेदनीय ।

प्रश्न ८७-- सातावेदनीयकर्म किसे कहते है ?

उत्तर-- जिस कर्मके उदयसे जीव सुखका वेदन करे उसे सातावेदनीयकर्म कहते है ।

प्रश्न ८८— असातावेदनीयकर्म किसे कहते है ?

उत्तर— जिस कर्मके उदयसे जीव दुःखका वेदन करे उसे असातावेदनीयकर्म कहते है ।

प्रश्न ८९— क्या वेदनीयकर्मका क्षय होनेपर सुख दुख दोनोका अभाव हो जाता है ?

उत्तर— वेदनीयकर्मके क्षय होनेपर सुख और दु ख दोनोका क्षय हो जाता है ।

प्रश्न ९०— सुखके अभावमे जीवका स्वभाव ही मिट जावेगा ?

उत्तर— जीवका स्वभाव है आनद । आनद गुणके परिणमन ३ होते है— (१) आनद, (२) सुख और (३) दुःख । सुख और दु ख आनन्दगुणके विकृत परिणमन है और आनन्द गुणका स्वाभाविक परिणमन है ।

प्रश्न ९१— सुख क्यो विकृत परिणमन है ?

उत्तर— सुखका अर्थ है-- सु = सुहावना, ख = इन्द्रियोको अर्थात् जो इन्द्रियोको सुहावना लगे सो सुख है । यह सुख दुःखकी भाति विकृत परिणमन है, क्योकि दुःखका मतलब है-- दु = बुरा, असुहावना, ख = इन्द्रियोको अर्थात् जो इन्द्रियोको असुहावना लगे सो दुःख

है। इन्द्रियोको सुहावना असुहावना वेदन करना दोनो ही आनन्दगुणके विकार है।

प्रश्न ९२-- आनन्द स्वाभाविक परिणमन कैसे है ?

उत्तर-- आनन्दका भाव यह है—आ = समन्तात् नन्दतीति आनन्दः। सर्व ओरसे समृद्धिशाली होना सो आनन्द है। इसमे परम निराकुल अवस्था ही परम समृद्धि है, वह कर्म क्षय होनेपर होती ही है।

प्रश्न ९३-- आयुकर्म किसे कहते है ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे जीवन अवस्था हो और अभावसे मरण अवस्था हो उसे आयुकर्म कहते है।

प्रश्न ९४-- आयुकर्मके कितने भेद है ?

उत्तर-- आयुकर्मके ४ भेद है-- (१) नरकायु, (२) तिर्यगायु, (३) मनुष्यायु और (४) देवायु।

प्रश्न ९५-- नरकायुकर्म किसे कहते है ?

उत्तर--जिस कर्मके उदयसे जीवका नरकभवमे अवस्थान हो उसे नरकायुकर्म कहते हैं।

प्रश्न ९६-- तिर्यगायुकर्म किसे कहते है ?

उत्तर-- जिस कर्मके उदयसे आत्माका तिर्यञ्चभवमे अवस्थान हो उसे तिर्यगायुकर्म कहते हैं।

प्रश्न ९७— मनुष्यायुकर्म किसे कहते है ?

उत्तर— जिस कर्मके उदयसे जीवका मनुष्यभवमे अवस्थान हो उसे मनुष्यायुकर्म कहते है।

प्रश्न ९८—देवायुकर्म किसे कहते है ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे जीवका देवभवमे अवस्थान हो उसे देवायुकर्म कहते हैं।

प्रश्न ९९— नामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर— जिस कर्मके उदयसे नाना प्रकार शरीर सम्बन्धी रचना हो उसे नामकर्म कहते है।

प्रश्न १००— नामकर्मके कितने भेद है ?

उत्तर-- नामकर्मके ९३ भेद है—४ गतिनामकर्म (नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव), ५ जातिनामकर्म (एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय), ५ शरीरनामकर्म (औदारिक, वैक्रियक, आहारक, तैजस और कार्माण), ३ अङ्गोपाङ्गनामकर्म (औदारिक, वैक्रियक और आहारक), १ निर्माणनामकर्म, ५ बन्धननामकर्म (औदारिक, वैक्रियक, आहारक, तैजस और कार्माण), ५ सघातनामकर्म (औदारिक, वैक्रियक, आहारक, तैजस, कार्माण), ६ सस्थान-

नामकर्म (समचतुरस्र, न्यग्रोधपरिमडल, स्वाति, वामन, कुब्जक और हुडक), ६ सहननतनाम-कर्म (वज्रऋषभनाराच, वज्रनाराच, नाराच, अर्द्धनाराच, कीलक और असप्राप्तसृपाटिका), ८ स्पर्शनामकर्म (स्निग्ध, रूक्ष, शीत, उष्ण, गुरु, लघु, कठोर और मृदु) ५ रसनामकर्म (अम्ल, मधुर, कटु, तिक्त, कषायित), २ गन्धनामकर्म (सुगन्ध और दुर्गन्ध), ५ वर्णनामकर्म (कृष्ण, नील, रक्त, पीत और श्वेत), ४ आनुपूर्व्यनामकर्म (नरकगत्यानुपूर्व्य, तिर्यंगत्यानुपूर्व्य, मनुष्यगत्यानुपूर्व्य, देवगत्यानुपूर्व्य), १ अगुरुलघुनामकर्म, १ उपघातनामकम, १ परघातनाम-कर्म, १ आतपनामकर्म, १ उद्योतनामकर्म, १ उच्छ्वासनामकर्म, २ विहायोगतिनामकर्म (प्रशस्त और अप्रशस्त), १ प्रत्येकशरीरनामकर्म, १ त्रसनामकर्म, १ सुभगनामकर्म, १ सुस्वर-नामकर्म, १ शुभनामकर्म, १ वादरनामकर्म, १ पर्याप्तिनामकर्म, १ स्थिरनामकर्म, १ आदेय-नामकर्म, १ यशःकीर्तिनामकर्म, १ साधारणशरीरनामकर्म, १ स्थावरनामकर्म, १ दुर्भगनाम-कर्म, १ दुःस्वरनामकर्म, १ अशुभनामकर्म, १ सूक्ष्मनामकर्म, १ अपर्याप्तिनामकर्म, १ अस्थिर-नामकर्म, १ अनादेयनामकर्म, १ अयशःकीर्तिनामकर्म और १ तीर्थङ्करनामकर्म ।

प्रश्न १०१-- नरकगतिनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर-- जिस नामकर्मके उदयसे नरकभवके योग्य परिणाम हो जिस भावमे रहनेपर नरकमे उदय आने योग्य कर्मोका उदय होता है उसको नरकगतिनामकर्म कहते है ।

प्रश्न १०२—तिर्यंग्गतिनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर—जिस नामकर्मके उदयसे तिर्यग्भवके योग्य परिणाम हो, जिस भावमे रहनेपर तिर्यंचमे उदय आने योग्य कर्मोका उदय होता रहता है उसे तिर्यंग्गतिनामकर्म कहते है ।

प्रश्न १०३— मनुष्यगतिनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर— जिस नामकर्मके उदयसे मनुष्यभवके योग्य परिणाम हो, जिस भावमे रहनेपर मनुष्यमे उदय याने योग्य कर्मोका उदय होता रहता है उसे मनुष्यगतिनामकर्म कहते है ।

प्रश्न १०४—देवगतिनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर — जिस नामकर्मके उदयसे देवभवके योग्य परिणाम हो, जिस भावमे रहनेपर देवमे उदय आनेके योग्य कर्मोका उदय होता रहता है उसे देवगतिनामकर्म कहते है ।

प्रश्न १०५—जातिनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे प्राणियोके सदृश उत्पन्न हो उसे जातिनामकर्म कहते है ।

प्रश्न १०६— एकेन्द्रियजातिनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे केवल स्पर्शनइन्द्रिय वाला जीवन मिले उसे एकेन्द्रिय-जातिनामकर्म कहते है ।

प्रश्न १०७— द्वीन्द्रियजातिनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे स्पर्शन और रसना– इन दो इन्द्रिय वाला जीवन मिले उसे द्वीन्द्रियजातिनामकर्म है।

प्रश्न १०८—त्रीन्द्रियजातिनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिसके उदयसे स्पर्शन, रसना व घ्राण-- इन तीन इन्द्रिय वाला जीवन मिले उस कर्मको त्रीन्द्रियजातिनामकर्म कहते है।

प्रश्न १०६—चतुरिन्द्रियजातिनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे स्पर्शन, रसना, घ्राण और चक्षु--इन चार इन्द्रिय वाला जीवन मिले उसे चतुरिन्द्रियजातिनामकर्म कहते हैं।

प्रश्न ११०—पञ्चेन्द्रियजातिनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र–इन पांचो इन्द्रिय वाला जीवन मिले उसे पञ्चेन्द्रियजातिनामकर्म कहते है।

प्रश्न १११– शरीरनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे शरीरको रचना हो उसे शरीरनामकर्म कहते हैं।

प्रश्न ११२– औदारिक शरीरनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे औदारिक नामक आहारवर्गणाके पुद्गलस्कन्ध शरीररूप परिणत होते हुये जीवके साथ सम्बन्ध हो उसे औदारिक शरीरनामकर्म कहते है।

प्रश्न ११३—वैक्रियकशरीरनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे वैक्रियक नामक आहारवर्गणाके पुद्गलस्कन्ध शरीररूप परिणत होते हुये जीवके साथ सबन्ध हो उसे वैक्रियकशरीरनामकर्म कहते है।

प्रश्न ११४– आहारकशरीरनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे, आहारक नामक आहारवर्गणाके पुद्गलस्कन्ध शरीररूप परिणत होते हुये जीवके साथ सबन्ध हो उसे आहारकशरीरनामकर्म कहते है।

प्रश्न ११५– तैजसशरीरनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे तैजसवर्गणाके पुद्गलस्कन्ध शरीररूप परिणत होते हुये जीवके साथ सबन्ध हो उसे तैजसशरीरनामकर्म कहते है।

प्रश्न ११६– कार्माणशरीरनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे कार्माणवर्गणाके पुद्गल स्कन्ध कर्मरूप परिणत होकर कार्माण शरीररूप परिणत होते हुए जीवके साथ सबन्ध हो उसे कार्माणशरीरनामकर्म कहते है।

प्रश्न ११७—अङ्गोपाङ्गनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर—जिस नामकर्मके उदयसे शरीरके अङ्ग और उपाङ्गोकी निष्पत्ति होती है उसे अङ्गोपाङ्गनामकर्म कहते है ।

प्रश्न ११८— अङ्ग कितने और कौन-कौनसे है ?

उत्तर—अङ्ग ८ होते है— (१) दक्षिण पाद, (२) वाम पाद, (३) दक्षिण हस्त, (४) वाम हस्त, (५) नितंब, (६) पीठ, (७) हृदय, (८) मस्तक ।

प्रश्न ११९— उपाङ्ग कितने और कौन-कौनसे है ?

उत्तर-- कपाल, ललाट, कान, नाक, ओठ, अगुली, ठोडी आदि अनेक उपाङ्ग होते हैं ।

प्रश्न १२०—औदारिक शरीर अङ्गोपाङ्गनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर—जिस नामकर्मके उदयसे औदारिक शरीरके अङ्ग और उपाङ्गोकी रचना हो उसे औदारिक शरीर अङ्गोपाङ्ग नामकर्म कहते है ।

प्रश्न १२१— वैक्रियकशरीर अङ्गोपाङ्गनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर— जिस कर्मके उदयसे वैक्रियक शरीरके अङ्ग और उपाङ्गोकी निष्पत्ति हो उसे वैक्रियकशरीर अङ्गोपाङ्गनामकर्म कहते है ।

प्रश्न १२२— आहारकशरीर अङ्गोपाङ्गनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर— जिस कर्मके उदयसे आहारक शरीरके अङ्ग और उपाङ्गोकी रचना हो उसे आहारकशरीर अङ्गोपाङ्गनामकर्म कहते है ।

प्रश्न १२३-- निर्माणनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर—जिस नामकर्मके उदयसे अङ्ग उपाङ्गोकी यथायोग्य ठीक-ठीक प्रमाणसे और ठीक-ठीक स्थानपर निष्पत्ति हो उसे निर्माणनामकर्म कहते है ।

प्रश्न १२४— बन्धननामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर-- जिस नामकर्मके उदयसे जीवसम्बध वर्तमान पुद्गल सम्बधोके साथ शरीररूप परिणत होने वाले पुद्गलस्कन्धोका परस्पर बन्धन हो उसे बन्धननानकर्म कहते है ।

प्रश्न १२५— औदारिकशरीर बन्धननामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर-- जिस नामकर्मके उदयसे जीवसबद्ध वर्तमान पुद्गलस्कन्धोके साथ औदारिक शरीररूप परिणत हुए पुद्गलस्कन्धोका परस्पर बन्धन हो उसे औदारिक शरीरबन्धननामकर्म कहते है ।

प्रश्न १२६— वैक्रियकशरीर बन्धननामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर—जिस नामकर्मके उदयसे जीवसबद्ध वर्तमान पुद्गलस्कन्धोके साथ वैक्रियक शरीररूप परिणत हुए पुद्गलस्कन्धोका परस्पर बन्धन हो उसे वैक्रियकशरीर बन्धननामकर्म

कहते है ।

प्रश्न १२७—आहारकशरीर बन्धननामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे आहारकशरीररूप परिणत हुए पुद्गलस्कधोंका जीवसबद्ध पुद्गलस्कधोके साथ परस्पर बन्धन हो उसे आहारकशरीर बन्धननामकर्म कहते है ।

प्रश्न १२८– तैजसशरीर बन्धननामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे तैजसशरीररूप परिणत हुए पुद्गलस्कंधोका जीवसबद्ध पुद्गलस्कधोके साथ परस्पर बन्धन हो उसे तैजसशरीर बन्धननामकर्म कहते है ।

प्रश्न १२९– कार्माणशरीर बन्धननामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे कार्माणशरीररूप परिणत हुए पुद्गलस्कन्धोका जीवसबद्ध पुद्गलस्कन्धोके साथ परस्पर बन्धन हो उसे कार्माणशरीर बन्धननामकर्म कहते है ।

प्रश्न १३०– सघातनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे बद्धशरीर स्कन्धोका परस्पर छिद्ररहित सश्लेष हो उसे सघातनामकर्म कहते है ।

प्रश्न १३१—औदारिक शरीरसघातनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर—जिस नामकर्मके उदयसे बद्ध औदारिक शरीरस्कन्धोका परस्पर छिद्ररहित सश्लेष हो उसे औदारिक शरीरसघातनामकर्म कहते है ।

प्रश्न १३२– वैक्रियकशरीर सघातनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर– जिस नामकर्मके उदयसे बद्ध वैक्रियकशरीर स्कन्धोका परस्पर छिद्ररहित सश्लेष हो उसे वैक्रियकशरीर सघातनामकर्म कहते है ।

प्रश्न १३३—आहारकशरीर सघातनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर– जिस नामकर्मके उदयसे बद्ध आहारकशरीर स्कन्धोका परस्पर छिद्ररहित सश्लेष हो उसे आहारकशरीर सघातनामकर्म कहते है ।

प्रश्न १३४– तैजसशरीर सघातनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर– जिस नामकर्मके उदयसे बद्ध तैजसशरीर स्कधोका परस्पर छिद्ररहित सश्लेष हो उसे तैजसशरीर सघातनामकर्म कहते है ।

प्रश्न १३५– कार्माणशरीर संघातनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे बद्ध कार्माणशरीर स्कधोका परस्पर छिद्ररहित सश्लेष हो उसे कार्माणशरीर सघातनामकर्म कहते है ।

प्रश्न १३६– सस्थाननामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे शरीरका आकार बनता है उसे सस्थाननामकर्म कहते है ।

प्रश्न १३७– समचतुरस्र संस्थाननामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे शरीर बिल्कुल सुडौल बने उसे समचतुरस्र संस्थाननामकर्म कहते है ।

प्रश्न १३८– न्यग्रोधपरिमडल संस्थाननामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे बडके पेडके आकारकी तरह शरीरका नीचेका भाग छोटा और ऊपरका भाग बडा हो उसे न्यग्रोधपरिमडल संस्थाननामकर्म कहते है ।

प्रश्न १३९– स्वाति संस्थाननामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे शरीरका स्वाति (बामी) का आकार बने याने नीचेका भाग छोटा और ऊपरका लम्बा बने उसे स्वातिसंस्थाननामकर्म कहते है ।

प्रश्न १४०—वामन संस्थाननामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे शरीरका आकार बौना हो उसे वामन संस्थाननामकर्म कहते है ।

प्रश्न १४१—कुब्जक संस्थाननामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे शरीरका आकार कुबडा हो उसे कुब्जक संस्थाननामकर्म कहते है ।

प्रश्न १४२—हुडक संस्थाननामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे शरीरका आकार कई प्रकारका या विचित्र अथवा अटपटा हो उसे हुडक संस्थाननामकर्म कहते है ।

प्रश्न १४३– संहनननामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे शरीरमे हड्डियो और हड्डियोके सन्धियो याने बधन विशेष की रचना होती है उसे संहनननामकर्म कहते है ।

प्रश्न १४४– वज्रऋषभनाराच संहनननामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे वज्रके हाड, वज्रके वेठन और वज्रकी कीलियाँ हो उसे वज्रऋषभनाराच संहनननामकर्म कहते है ।

प्रश्न १४५– वज्रनाराच संहनननामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे वज्रके हाड और वज्रकी कीलियाँ हो, किन्तु वेठन वज्र के न हो उसे वज्रनाराच संहनननामकर्म कहते है ।

प्रश्न १४६– नाराचसंहनननामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे हड्डियाँ कीलियोसे कीलित हो उसे नाराचसंहनननामकर्म कहते है ।

प्रश्न १४७—अर्द्धनाराच सहनननामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे शरीरमे हड्डियां आधी कीलित हो उसको अर्द्धनाराच संहनननामकर्म कहते है ।

प्रश्न १४८—कीलक सहनननामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे शरीरमे हड्डियां कीलियोसी स्पष्ट हो उसे कीलकसहनन नामकर्म कहते है ।

प्रश्न १४९—असप्राप्तसृपाटिका सहनननामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे शरीरमे हड्डियां नसाजालसे बधी हुई हो उसे असप्राप्त-सृपाटिका सहनननामकर्म कहते है ।

प्रश्न १५०—स्पर्शनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे शरीरमे नियत स्पर्शकी निष्पत्ति होती है उसे स्पर्शनाम-कर्म कहते है ।

प्रश्न १५१– स्निग्धस्पर्शनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे शरीरमे नियत स्निग्ध स्पर्शकी निष्पत्ति होती है उसे स्निग्धनामकर्म कहते है ।

प्रश्न १५२– रूक्षस्पर्शनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे शरीरमे नियत रूक्ष स्पर्शकी निष्पत्ति होती है उसे रूक्षस्पर्शनामकर्म कहते है ।

प्रश्न १५३– शीतस्पर्शनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर-- जिस कर्मके उदयसे शरीरमे नियत शीतस्पर्शकी निष्पत्ति होती है उसे शीत-स्पर्शनामकर्म कहते है ।

प्रश्न १५४– उष्णस्पर्शनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे शरीरमे नियत उष्ण स्पर्शकी निष्पत्ति होती है उसे उष्णस्पर्शनामकर्म कहते है ।

प्रश्न १५५– गुरुस्पर्शनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर-- जिस कर्मके उदयसे शरीरमे नियत गुरु नामक स्पर्शकी निष्पत्ति होती है उसे गुरुस्पर्शनामकर्म कहते है ।

प्रश्न १५६-- लघुस्पर्शनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर–,जिस कर्मके उदयसे शरीरमे नियत लघु नामक स्पर्शकी निष्पत्ति होती है उसे लघुस्पर्शनामकर्म कहते है ?

प्रश्न १५७—कठोरस्पर्शनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे नियत कठोरनामक स्पर्शकी निष्पत्ति होती है उसे कठोर स्पर्शनामकर्म कहते है ।

प्रश्न १५८—मृदुस्पर्शनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे शरीरमे नियत कोमल स्पर्शकी उत्पत्ति होती है उसे मृदुस्पर्शनामकर्म कहते है ।

प्रश्न १५९—रसनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे शरीरमे प्रतिनियत रसकी निष्पत्ति हो उसे रसनामकर्म कहते है ।

प्रश्न १६०—अम्लरसनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर– जिस नामकर्मके उदयसे शरीरमे प्रतिनियत अम्ल (खट्टे) रसकी निष्पत्ति हो उसे अम्लरसनामकर्म कहते है ।

प्रश्न १६१– मधुररसनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे शरीरमे प्रतिनियत मधुर रसकी निष्पत्ति हो उसे मधुररसनामकर्म कहते है ।

प्रश्न १६२—कटुरसनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे शरीरमे प्रतिनियत कड़ुवे रसकी निष्पत्ति हो उसे कटुरसनामकर्म कहते है ।

प्रश्न १६३—तिक्तरसनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे शरीरमे प्रतिनियत तीखे रसकी निष्पत्ति हो उसे तिक्तरसनामकर्म कहते है ।

प्रश्न १६४– कषायितरसनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे शरीरमे प्रतिनियत कषैले रसकी निष्पत्ति हो उसे कषायितरसनामकर्म कहते है ।

प्रश्न १६५—गन्धनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर—जिस नामकर्मके उदयसे शरीरमे प्रतिनियत गन्धकी निष्पत्ति हो उसे गन्धनामकर्म कहते है ।

प्रश्न १६६– सुगन्धनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर– जिस नामकर्मके उदयसे शरीरमे प्रतिनियत सुगन्धकी निष्पत्ति हो उसे सुगन्ध नामकर्म कहते है ।

प्रश्न १६७—दुर्गन्धनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर—जिस नामकर्मके उदयसे शरीरमें प्रतिनियत दुर्गन्धकी निष्पत्ति हो उसे दुर्गन्ध-नामकर्म कहते है।

प्रश्न १६८— वर्णनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर— जिस नामकर्मके उदयसे प्रतिनियत वर्णकी निष्पत्ति हो उसे वर्णनामकर्म कहते है।

प्रश्न १६९— कृष्णवर्णनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर— जिस कर्मके उदयसे शरीरमे प्रतिनियत कृष्णवर्णकी निष्पत्ति हो उसे कृष्ण-वर्णनामकर्म कहते है।

प्रश्न १७०—नीलवर्णनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे शरीरमे प्रतिनियत नील वर्णकी निष्पत्ति हो उसे नील-वर्णनामकर्म कहते है।

प्रश्न १७१— रक्तवर्णनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर— जिस कर्मके उदयसे शरीरमे प्रतिनियत लाल वर्णकी निष्पत्ति हो उसे रक्त-वर्णनामकर्म कहते है।

प्रश्न १७२—पीतवर्णनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर— जिस कर्मके उदयसे शरीरमे प्रतिनियत पीले वर्णकी निष्पत्ति हो उसे पीत-वर्णनामकर्म कहते है।

प्रश्न १७३— श्वेतवर्णनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर— जिस कर्मके उदयसे शरीरमे प्रतिनियत श्वेत वर्णकी निष्पत्ति हो उसे श्वेत-वर्णनामकर्म कहते है।

प्रश्न १७४— शरीर पुद्गल है और पुद्गलका स्वभाव ही रूपादिका है, फिर स्पर्श-नामकर्मकी क्या आवश्यकता है ?

उत्तर— यदि स्पर्शादि नामकर्म न हो तो यह व्यवस्था नही बनेगी कि भौंरोमे भौंरो जैसा प्रतिनियत रूप, रस, गधादिसे हो। घोडो, मनुष्यो आदिमे घोडो, मनुष्यो आदि जैसा रूप रसादि हो। यह व्यवस्था इन स्पर्शादि नामकर्मोके उदयसे होती है।

प्रश्न १७५— आनुपूर्व्यनामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर-- जिस कर्मके उदयसे विग्रहगतिमे पूर्व शरीरके आकार आत्मप्रदेश हो उसे आनुपूर्व्यनामकर्म कहते है।

प्रश्न १७६— विग्रहगति किसे कहते है ?

उत्तर-- मरणके पश्चात् नवीन देह धारण करनेके लिये जो जीवका गमन होता है उसे विग्रहगति कहते है।

प्रश्न १७७-- क्या सभी विग्रहगतियोंमे जीवका आकार पूर्व भव जैसा होता है ?

उत्तर– मोडे लेकर जाने वाली गतिमे जीवका आकार पूर्वभवके आकारका होता है।

प्रश्न १७८—बिना मोडेकी विग्रहगतिमे जीवका क्या आकार रहता है ?

उत्तर-- बिना मोडे वाली गतिमें जीवको एक भी समयका अवकाश नही मिलता, किन्तु पहिले समयमे मरा, दूसरे समयमे उत्पन्न हो गया, इसलिये आकार सहित गति न होकर जीवका विसर्पण होकर जन्मस्थानपर सकोच हो जाता है। वहाँ आनुपूर्व्यनामकर्मका उदय भी नही है।

प्रश्न १७९-- नरकगत्यानुपूर्व्यनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर – जिस कर्मके उदयसे तिर्यंच या मनुष्यगतिसे मरणकर नरकभवमे देहधारणके लिये जाने वाले जीवका आकार पूर्वके देहके आकारमे हो उसे नरकगत्यानुपूर्व्यनामकर्म कहते है।

प्रश्न १८०—तिर्यग्गत्यानुपूर्व्यनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे किसी गतिसे मरणकर तिर्यग्गतिमे देहधारणके लिये जाने वाले जीवका आकार पूर्वके देहके आकारमे हो उसे तिर्यग्गत्यानुपूर्व्यनामकर्म कहते है।

प्रश्न १८१—मनुष्यगत्यानुपूर्व्यनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे किसी गतिसे मरणकर मनुष्यगतिमे देहधारणके लिये जाने वाले जीवका आकार पूर्वके देहके आकारमे हो उसे मनुष्यगत्यानुपूर्व्यनामकर्म कहते है।

प्रश्न १८२– देवगत्यानुपूर्व्यनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे तिर्यञ्च या मनुष्यगतिसे मरणकर देवगतिमे देहधारणके लिये जाने वाले जीवका आकार पूर्वके देहके आकारमे हो उसे देवगत्यानुपूर्व्यनामकर्म कहते है।

प्रश्न १८३– अगुरुलघुनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे जीवका शरीर यथायोग्य गुरु और लघु हो अर्थात् न तो ऐसा गुरु शरीर हो कि लोहके गोलेके समान गिर जावे और न ऐसा लघु शरीर हो कि आक के तूलके समान उड जावे, उसे अगुरुलघुनामकर्म कहते है।

प्रश्न १८४—उपघातनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे अपने ही शरीरका अवयव अपना ही घात करने वाला हो उसे उपघातनामकर्म कहते है।

प्रश्न १८५—परघातनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे परप्राणोका घात करने वाला देहमे अवयव हो उसे परघातनामकर्म कहते है।

प्रश्न १८६—आतपनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे शरीर मूलमे तो ठंडा हो और दूरवर्ती पदार्थोके उष्ण हो जानेमे निमित्त हो तथा तेजोमय हो उसे आतपनामकर्म कहते है। इसका उदय सूर्यविमानके पृथ्वीकायिक जीवोमे पाया जाता है।

प्रश्न १८७– उद्योतनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे शरीर मूलमे भी शीत हो और दूरवर्ती पदार्थोके उष्णता का कारण न हो तथा उद्योतरूप (चमकदार) हो उसे उद्योतनामकर्म कहते है।

प्रश्न १८८– उच्छ्वासनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे शरीरमे श्वास और उच्छ्वास प्रकट हो उसे उच्छ्वासनामकर्म कहते है।

प्रश्न १८९– विहायोगतिनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे जीव गमन करे उसे विहायोगतिनामकर्म कहते हैं।

प्रश्न १९०– प्रशस्तविहायोगतिनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे सुन्दर गमनविधि हो उसे प्रशस्तविहायोगतिनामकर्म कहते है। जैसे हस, घोडा आदिकी गति।

प्रश्न १९१—अप्रशस्तविहायोगतिनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे असुन्दर गमनविधि हो उसे अप्रशस्तविहायोगतिनामकर्म कहते है। जैसे गधा, कुत्ता आदिकी गतिविधि।

प्रश्न १९२– प्रत्येकशरीरनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे एक शरीरका अधिष्ठाता एक जीव हो उसे प्रत्येकशरीरनामकर्म कहते है।

प्रश्न १९३– त्रसनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे अग उपाग सहित काय (शरीर) मिले उसे त्रसनामकर्म कहते है। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय जीव त्रस कहलाते है।

प्रश्न १९४—सुभगनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे प्राणीपर अन्य प्राणियोकी प्रीति उत्पन्न हो उसे सुभगनामकर्म कहते है।

प्रश्न १९५—सुस्वरनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे अच्छा स्वर हो उसे सुस्वरनामकर्म कहते है।

प्रश्न १९६– शुभनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे शरीरके शुभ अवयव हो उसे शुभनामकर्म कहते है।

प्रश्न १९७– वादरनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे वादर शरीर हो, जो दूसरेको रोक सके व दूसरेसे रुक सके उसे वादरनामकर्म कहते है।

प्रश्न १९८– पर्याप्तिनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे ऐसा शरीर मिले जिसकी पर्याप्ति नियमसे पूर्ण हो, शरीरपर्याप्ति पूर्ण हुए बिना मरण न हो उसे पर्याप्तिनामकर्म कहते है।

प्रश्न १९९– स्थिरनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर– जिस नामकर्मके उदयसे शरीरमें धातु उपधातु अपने-अपने ठिकाने रहे, अचलित रहे उसे स्थिरनामकर्म कहते है।

प्रश्न २००—आदेयनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे शरीरमे कान्ति प्रकट हो उसे आदेयनामकर्म कहते है।

प्रश्न २०१– यशःकीर्तिनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे जीवका यश और कीर्ति प्रकट हो उसे यशःकीर्तिनामकर्म कहते है।

प्रश्न २०२– साधारणशरीरनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे एक शरीरके स्वामी अनेक जीव हो उसे साधारणशरीरनामकर्म कहते है। जैसे निगोद।

प्रश्न २०३-- स्थावरनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे अग उपाग रहित शरीर मिले उसे स्थावरनामकर्म कहते हैं।

प्रश्न २०४—दुर्भगनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे प्राणीपर अन्य प्राणियोकी अरुचि उत्पन्न हो उसे दुर्भगनामकर्म कहते है।

प्रश्न २०५-- दुःस्वरनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर--जिस नामकर्मके उदयसे बुरा स्वर हो उसे दुःस्वरनामकर्म कहते है।

प्रश्न २०६-- अशुभनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर–जिस कर्मके उदयसे शरीरके असुहावने अवयव हो उसे अशुभनामकर्म कहते है।

प्रश्न २०७– सूक्ष्मनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर-- जिस कर्मके उदयसे शरीर सूक्ष्म हो, जो न किसीको रोक सके और न किसी से रुक सके उसे सूक्ष्मनामकर्म कहते है ।

प्रश्न २०८—अपर्याप्तिनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे ऐसा शरीर मिले जिसकी पर्याप्ति पूर्ण न हो और मरण हो जाय उसे अपर्याप्तिनामकर्म कहते है ।

प्रश्न २०९—अस्थिरनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे शरीरके धातु उपधातु चलित हो जाया करें उसे अस्थिर-नामकर्म कहते है ।

प्रश्न २१०– अनादेयनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे कान्तिरहित शरीर हो उसे अनादेयनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न २११– अयश कीर्तिनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर– जिस कर्मके उदयसे अपयश और अकीर्ति हो उसे अयशःकीर्तिनामकर्म कहते है ।

प्रश्न २१२– तीर्थङ्करप्रकृतिनामकर्म किसे कहते है ?

उत्तर—जिस कर्मके उदयसे तीर्थंकरपना हो, सर्वज्ञदेवके सातिशय दिव्यध्वनि, विहार आदिसे लोकोपकार हो उसे तीर्थंकरप्रकृतिनामकर्म कहते है ।

प्रश्न २१३-- क्या ये भेद एक-एक कर्मस्कन्ध है ?

उत्तर—प्रत्येक भेद अनन्त कार्माणवर्गणावोका स्कन्ध है । जिन कार्माणवर्गणाओकी प्रकृति उस भेदरूप है उन कार्माणस्कन्धोकी वह सज्ञा है ।

प्रश्न २१४-- इन द्रव्यास्रवोके जाननेसे कुछ आत्मलाभ है ?

उत्तर-- भूतार्थनयसे यदि इन्हे जाना जाय तो इनका ज्ञान निश्चयसम्यक्त्वका कारण हो जाता है ।

प्रश्न २१५—भूतार्थनयसे इन द्रव्यास्रवोका जानना किस प्रकार है ?

उत्तर-- उक्त सब द्रव्यास्रव पर्याये है । किस द्रव्यकी पर्यायें है ? पुद्गल द्रव्यकी ये पर्यायें पुद्गलद्रव्यसे उत्पन्न हुई है । जहांसे उत्पन्न हुई है केवल उस द्रव्यकी दृष्टि रहनेपर ये पर्यायें गौण हो जाती है और द्रव्यदृष्टि मुख्य हो जाती है । पश्चात् द्रव्यदृष्टिमे विकल्पोका अवकाश न होनेसे द्रव्यदृष्टिका विकल्प भी छूटकर आत्माका केवल सहज आनदमय परिणमन का अनुभव रह जाता है । इस शुद्ध आत्मतत्त्वकी अनुभूतिको निश्चयसम्यक्त्व कहते है ।

इस प्रकार आस्रव तत्त्वका वर्णन करके बन्धतत्त्वका वर्णन करते है—

वज्झदि कम्म जेरा हु चेदरगभावेण भावबन्धो सो ।
कम्मादपतेसाणं अण्णोण्णपवेसणं इदरो ॥३२॥

अन्वय— जेण चेदणभावेण कम्मं वज्झदि सो भावबन्धो हु कम्मादपते साणं अण्णोण्णपवेसण इदरो ।

अर्थ—जिस चेतनभावके निमित्तसे कर्म बधता है वह तो भावबध है और कर्म तथा आतमाके प्रदेशोका परस्पर प्रवेशन होना अर्थात् एकाकार होना सो द्रव्यबध है ।

प्रश्न १— कौनसे चेतनभाव भावबन्ध कहलाते है ?

उत्तर— मिथ्यात्व, राग और द्वेष भावबन्ध कहलाते है ।

प्रश्न २— मिथ्यात्व आदि भाव भावबध क्यो है ?

उत्तर— मिथ्यात्वादि भाव अखण्ड निज चैतन्यस्वभावके अनुभवसे विपरीत है, विरुद्ध भाव है, अतः भावबन्ध है ।

प्रश्न ३—बन्धमे तो दोका सम्बन्ध है, यहाँ दो क्या तत्त्व है जिनका बध हो ?

उत्तर—यहाँ उपयोग और रागादि सम्बन्ध हुआ है अर्थात् चैतन्यगुणके विकासमे चारित्रगुणका विकृत विकास अभिगृहीत हुआ है, अतः अर्थात् उपयोगभूमिमे रागादिके सम्बध होनेसे भावबन्ध कहलाता है ।

प्रश्न ४—यह चेतनभाव शुद्ध है अथवा अशुद्ध ?

उत्तर— यह चेतनभाव अशुद्ध है, क्योकि कर्मरूप उपाधिको निमित्त पाकर हुआ है ।

प्रश्न ५— भावबन्धकी तरह क्या द्रव्यबन्ध भी एक ही पदार्थमे होता है ?

उत्तर— द्रव्यबन्ध एक जातिके पदार्थोमे होता है अर्थात् पुद्गलकर्मका पुद्गलकर्मके साथ बन्ध होना द्रव्यबन्ध है ।

प्रश्न ६— यहाँ आत्मा और कर्मके परस्पर बन्धको द्रव्यबन्ध कैसे कहा ?

उत्तर— यह दो जातिके द्रव्योका बन्ध है, इसे भी द्रव्यबन्ध कहते है । इस द्रव्यबन्धका दूसरा नाम उभयबन्ध है ।

प्रश्न ७— क्या केवल एक पुद्गलकर्ममे द्रव्यबन्ध नही माना जा सकता ?

उत्तर—प्रकृति, प्रदेश, स्थिति व अनुभागके बन्धकी अपेक्षासे एक पुद्गलकर्ममे द्रव्यबन्ध माना जा सकता है । किन्तु यह बन्ध केवल एक परमाणु या सख्यात असख्यात परमाणुओके स्कन्धमे भी नही बनता । बनता तो अनन्त परमाणुओके स्कन्धमे, फिर भी सूक्ष्मदृष्टिसे उसी स्कन्धके एक-एक परमाणुमे भी वह सव है ।

प्रश्न ८— आत्मा तो अमूर्त है, उसके साथ मूर्तकर्मका बंध कैसे हो जाता है ?

उत्तर—संसारी आत्मा कर्मबन्धनसे बद्ध होनेके कारण कर्मसम्बन्धसे कथचित् मूर्त

माना गया है, ऐसे आत्माके साथ कर्मका बन्ध हो जाना युक्त ही है ।

प्रश्न ९-- आत्माके साथ कर्मका एकाकार हो जानेका क्या अर्थ है ?

उत्तर-- आत्माका व कर्मस्कन्धोका एकक्षेत्रावगाह हो जाना, उनमे निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध हो जाना एकाकारताका अर्थ है । ऐसा होनेपर भी निश्चय प्रत्येक द्रव्य अपने आपमे ही है, अतः स्वतन्त्र है ।

प्रश्न १०--भावबन्ध और भावास्रवमे क्या अन्तर है ?

उत्तर--भावबन्धमे कर्मबन्धकी निमित्तता है और भावास्रवमे कर्मास्रवकी निमित्तता है । भावबन्ध व्याप्य है और भावास्रव व्यापक है ।

अब द्रव्यबन्धके भेद व भेदोका कारण दिखाते हैं--

पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेस भेदाहु चदुविदोबधो ।
जोगा पयडिपदेसा ठिदि अणुभागा कसायदो होंति ।।३३।।

अन्वय-- बन्धो पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेस भेदाहु चदुविदो । पयडिपदेसा जोगा ठिदि अणुभागा कसायदो होंति ।

अर्थ-- बन्ध प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशके भेदसे ४ प्रकारका होता है । उनमे से प्रकृतिबन्ध और प्रदेशबन्ध तो योगसे होते है तथा अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्ध कषायसे होते है ।

प्रश्न १-- प्रकृतिबन्ध किसे कहते है ?

उत्तर--जीवको विभाव पर्यायमे ले जानेके लिये कर्मस्कन्धोमे पृथक्-पृथक् प्रकृतियोका (आदतो या स्वभावोका) पड जाना प्रकृतिबन्ध है ।

प्रश्न २--ज्ञानावरणकर्मकी क्या प्रकृति है ?

उत्तर-- ज्ञानावरणकी प्रकृति आत्माके ज्ञानगुणको आच्छादित करनेकी है ।

प्रश्न ३--दर्शनावरणकर्मकी क्या प्रकृति है ?

उत्तर-- दर्शनावरणकर्मकी प्रकृति आत्माके दर्शनगुणको आच्छादित करनेकी है ।

प्रश्न ४-- मोहनीयकर्मकी क्या प्रकृति है ?

उत्तर-- जीवको हेय और उपादेयके विवेकसे भी रहित कर देनेकी प्रकृति मोहनीयकर्मकी है ।

प्रश्न ५-- अन्तरायकर्मकी क्या प्रकृति है ?

उत्तर-- दान, लाभ आदिमे विघ्न करनेकी प्रकृति अन्तरायकर्मकी है ।

प्रश्न ६-- वेदनीयकर्मकी क्या प्रकृति है ?

उत्तर-- वेदनीयकर्मकी प्रकृति अल्पसुख और बहुत दुःख उत्पन्न करनेकी है ।

प्रश्न ७—आयुकर्मकी क्या प्रकृति है ?

उत्तर—प्रतिनियत शरीरमे ही जीवको रोके रहना आयुकर्मकी प्रकृति है ।

प्रश्न ८– नामकर्मकी क्या प्रकृति है ?

उत्तर—नानारूपमय शरीरकी रचनामे निमित्त होना नामकर्मकी प्रकृति है ।

प्रश्न ९– गोत्रकर्मकी क्या प्रकृति है ?

उत्तर– उच्च अथवा नीच गोत्र करना गोत्रकर्मकी प्रकृति है ।

प्रश्न १०– एक समयमे क्या एक प्रकृतिबन्ध होता है या सर्व प्रकृतिबन्ध होता है ?

उत्तर– यदि आयु प्रकृतिबन्ध (अपकर्षकाल) नही है तो एक समयमे आयुप्रकृतिको छोडकर ७ कर्मप्रकृतियोका बन्ध होता है । यदि अपकर्षकाल है तो आठो कर्मप्रकृतियोका बध हो सकता है । सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानमे आयुप्रकृति और मोहनीयप्रकृतिके बिना शेष ६ कर्मप्रकृतियोका (कर्मोका) बन्धन होता है । उपशान्तमोह, क्षीणमोह व सयोगकेवलीके केवल एक वेदनीयप्रकृतिका आस्रव होता है । यह एक प्रकृतिबन्ध दूसरे समय भी नही ठहरता है, इसलिये इसे आस्रव (ईर्यापथ) आस्रव कहते है । वेदनी कर्म का आस्रव

प्रश्न ११—अपकर्षकालका तात्पर्य क्या है ?

उत्तर—आयुकर्मके बधनेके ८ प्रकार होते हैं– कर्मभूमि मनुष्य व तिर्यञ्चोके आयु बंधका पहिली बार उनकी वर्तमान आयुके २ बटा ३ भाग बीतनेपर होता है । यदि तब आयु न बधे तब शेष आयुके दो विभाग बीतनेपर होता है । इस प्रकार शेषके दो विभागोमे ६ बार और कहना चाहिये ।

प्रश्न १२—यदि उन आठ बारोमे आयु न बध सके तब कब आयु बधेगी ?

उत्तर—यदि उन आठ अपकर्षोमे आयु न बधे तब अन्तिम अन्तर्मुहूर्तमे अवश्य बंध जावेगी । जिसे मोक्ष जाना है उसके उस चरमभवमे कोई आयु नही बधती ।

प्रश्न १३—भोगभूमिया मनुष्य तिर्यञ्चोके आठ अपकर्ष कब होते है ?

उत्तर—भोगभूमिया मनुष्य तिर्यञ्चके अन्तिम ६ माह शेष रहनेपर उसके आठ बार दो विभाग करने चाहियें । जैसे पहिली बार दो माह आयु शेष रहनेपर होता है ।

प्रश्न १४—अस्थिर भोगभूमियाके नर व तिर्यञ्चोके अपकर्ष कैसे होते है ?

उत्तर– भरत और ऐरावत क्षेत्रोमें भोगभूमि पहले, दूसरे, तीसरे कालमे होती है । ये अस्थिर भोगभूमि कहलाती है । अस्थिर भोगभूमि मनुष्य और तिर्यञ्चोके अपकर्ष उनकी ९ माह आयु शेष रहनेपर ८ बार दो विभागोमें लगानी चाहिये । जैसे कि इनका पहिली बार ३ माह आयु शेष रहनेपर होता है ।

प्रश्न १५—देव व नारकियोके आयुबन्धके अपकर्ष कब होते है ?

उत्तर—देव व नारकियोके आयुबन्धके अपकर्ष उनकी आयु ६ माह शेप रहनेपर ८ बार दो विभागोमें लगा लेना चाहिये ।

प्रश्न १६—एकेन्द्रियादिक असज्ञी जीवोका आयुबंधका अपकर्ष कब होता है ?

उत्तर– एकेन्द्रियादिक असज्ञी जीवोका अपकर्ष कर्मभूमियाकी तरह समस्त आयुके ८ बार दो विभागोमे लगा लेना चाहिये । जैसे किसीकी आयु ८१ वर्षकी है तो ५४ वर्ष होनेपर आयुबध हो सकता, तब आयुबन्ध न हो तो फिर ७२ वर्षकी आयुमें आयुबध हो सकता । तब न बधे तो फिर ७८ वर्षकी आयुमे आयुबध हो सकता, तब ८० वर्षकी उम्रमे आयुबध हो सकता । इस प्रकार पूरे ८ बार कर लेना चाहिये ।

प्रश्न १७– क्या एक कर्ममे आवान्तर प्रकृतियाँ भी हो सकती है ?

उत्तर– कर्मोके जो १४८ भेद बताये गये है । उनरूप प्रकृतियाँ तो होती ही हैं यह तो स्पष्ट है, किन्तु १४८ प्रकृतियोमे किसी एक प्रकृतिमे भी आवातर असख्यात प्रकृतिया होती है । जैसे एक मतिज्ञानावरणको लें, उसमे घटमतिज्ञानावरण, पटमतिज्ञानावरण आदि अनेक प्रकृतिया हो जाती है ।

प्रश्न १८–स्थितिबध किसे कहते है ?

उत्तर—जीवके प्रदेशोमे बद्धकर्मस्कन्धोकी कर्मरूपसे रहनेको, कालकी मर्यादा पड़ जानेको स्थितिबन्ध कहते हैं ।

प्रश्न १९– किस कर्मकी कितनी उत्कृष्ट स्थिति होती है ?

उत्तर– ज्ञानाबरण कर्मकी ३० कोडाकोडीसागर, दर्शनावरणकी ३० कोडाकोडीसागर, मोहनीयकर्मकी ७० कोडाकोडीसागर, अन्तरायकर्मकी ३० कोडाकोडीसागर, वेदनीयकर्मकी ३० कोडाकोडीसागर, आयुकर्मकी ३३ ~~कोडाकोडी~~सागर, नामकर्मकी २० कोडाकोडीसागर और गोत्रकर्मकी २० कोडाकडीसागर उत्कृष्ट स्थिति होती है ।

प्रश्न २०–एक कर्मप्रकृतिके जितनी कर्मवर्गणायें बधती है क्या उन सभी वर्गणाओ की उक्त स्थिति होती है ?

उत्तर– आबाधाकालके बाद किन्ही वर्गणावोकी १ समयकी, किन्ही वर्गणावोकी २ समयकी, किन्ही वर्गणावोकी ३ समयकी इत्यादि प्रकारसे १–१ समय बढाकर उत्कृष्ट स्थिति तक लगा लेना चाहिये ।

प्रश्न २१—तब किन्ही वर्गणावोकी उक्त उत्कृष्ट स्थिति हुई, फिर कर्मसामान्यकी उत्कृष्ट स्थिति कैसे हुई ?

उत्तर– एक समयमे जितनी कार्माणवर्गणायें बधी उनमेसे जो एक प्रकृतिकी हुई, उनमे प्रकृतिकी अपेक्षा अभेद करके उस प्रकृतिकी जो उत्कृष्ट स्थिति होती है उस ही का

उत्कृष्टमे वर्णन किया है ।

प्रश्न २२– अबाधाकाल किसे कहते है ?

उत्तर– बद्धकर्मस्कन्ध जितने काल उदयमें नही आ सकते उतने कालको अबाधाकाल कहते है । यहाँ सामान्य अबाधाकालका प्रकरण है, अतः उस बद्ध कर्मस्कन्धमें से कोई भी वर्गणाये जब तक उदयमे नही आ सकती उतना अबाधाकाल यहाँ ग्रहण करना ।

प्रश्न २३– विशेषरूपसे अबाधाकाल क्या होता है ?

उत्तर—एक समयमे बधे हुए कर्मस्कन्धोमें भी भिन्न-भिन्न कर्मवर्गणाओकी जो-जो स्थिति मिली है उससे पहिलेका काल उन-उन कर्मवर्गणाओका अबाधाकाल कहलाता है ।

प्रश्न २४—कर्मोकी जघन्यस्थिति क्या है ?

उत्तर—ज्ञानावरणकर्मकी अन्तर्मुहूर्त, दर्शनावरणकर्मकी अन्तर्मुहूर्त, मोहनीयकर्मकी अन्तर्मुहूर्त, अन्तरायकर्मकी अन्तर्मुहूर्त, वेदनीयकर्मकी १२ मुहूर्त, आयुकर्मकी अतर्मुहूर्त, नामकर्मकी ८ मुहूर्त और गोत्रकर्मकी ८ मुहूर्त जघन्यस्थिति होती है ।

प्रश्न २५– इन जघन्यस्थितियोको कौन जीव बांधता है ?

उत्तर—आयुकर्मको छोडकर बाकी सब कर्मोकी जघन्यस्थितियोको उपशमश्रेणी अथवा क्षपकश्रेणीमे होने वाले मुनिवृपभ ही बाधते है । आयुकर्मकी जघन्यस्थितिको क्षुद्र जन्म वाले जीव बाधते है ।

देने की शक्ति

प्रश्न २६– अनुभाग बन्ध किसे कहते है ?

उत्तर—जीव प्रदेशोके साथ बद्ध कर्मस्कन्धोमे सुख दु.ख आदि देनेकी शक्ति विशेषके पड जानेको अनुभागबन्ध कहते है ।

प्रश्न २७— अनुभागके सक्षिप्त प्रकार कितने है ?

उत्तर—अनुभागके सक्षिप्त ४ प्रकार है—(१) मन्द, (२) मदतीव्र, (३) तीव्रमद और (४) तीव्र ।

प्रश्न २८– इन ४ प्रकारके अनुभागोमे तारतम्य किस प्रकार है ?

उत्तर– अनुभागोका नारतम्य उदाहरण द्वारा बताया जा सकता है । एतदर्थ तीन विभाग करने चाहियें– (१) घातिया कर्मोका अनुभाग, (२) पुण्यरूप अघातिया कर्मोका अनुभाग और (३) पापरूप घातिया कर्मोका अनुभाग ।

प्रश्न २९– घातिया कर्मोके उन चार प्रकारके अनुभागोके उदाहरण क्या है ?

उत्तर– घातिया कर्मोके अनुभाग लता, दारु (काठ), अस्थि व पापाणके समान उत्तरोत्तर कोमलसे कठोर फल देने वाले होते गये है ।

प्रश्न ३०– पुण्यरूप घातियाकर्मोंके अनुभाग किसके समान हैं ?

उत्तर– पुण्यरूप घातियाकर्मोंके अनुभाग गुड, खांड, मिश्री और अमृतके समान उत्तरोत्तर मधुर है, फल देने वाले है।

प्रश्न ३१– पापरूप घातियाकर्मोंके अनुभाग किसके समान है ?

उत्तर– पापरूप घातियाकर्मोंके अनुभाग नीम, काञ्जीर, विष और हालाहलके समान उत्तरोत्तर कटुक फल देने वाले है।

प्रश्न ३२—प्रदेशबन्ध किसे कहते है ?

उत्तर– कर्मपरमाणुवोका परस्पर व जीवप्रदेशोके साथ बन्ध होनेको प्रदेशबन्ध कहते हैं।

प्रश्न ३३—एक वारमे कितने कर्मपरमाणुवोका बन्ध होता है ?

उत्तर—सिद्धोके अनन्तवें भाग और अभव्योसे अनन्तगुणे कर्मपरमाणुवोका एक समयमे बन्ध हो जाता है। यह सख्या इतने लम्बे मापकी है कि एक जीवके साथ इतने कर्मपरमाणुवोका बन्ध होता है और एक जीवके एक-एक प्रदेशपर इतने कर्मपरमाणुवोका बन्ध हो जाता है।

प्रश्न ३४– बद्ध कर्मपरमाणुद्रव्योका किस-किस कर्मप्रकृतिमे कितना विभाग होता है ?

उत्तर—सबसे अधिक वेदनीयकर्ममे, उससे कम मोहनीयकर्ममे, उससे कम ज्ञानावरण मे, ज्ञानावरणके बराबर दर्शनावरणमे, ज्ञानावरणके बराबर अन्तरायकर्ममे, उससे कम नामकर्ममे, नामकर्मके बराबर गोत्रकर्ममे और गोत्रकर्मसे कम आयुकर्ममे बद्ध कर्मस्कन्धके परमाणु बंट जाते है।

प्रश्न ३५– इस बटवारेको कौन करता है ?

उत्तर– यह विभाग स्वयं हो जाता है, इस विभागका भी कारण वही परिणाम है जो बन्धका कारण है। जैसे भोजन करनेके बाद पेटमे जो आहार पहुचा उसका कितना खून बने, कितना मल बने आदि बटवारा स्वय हो जाता है। उसका कारण कहा जा सकता है तो वही जठराग्नि।

प्रश्न ३६—चारो प्रकारके बन्ध किस कारणसे होते है ?

उत्तर– प्रकृतिबन्ध और प्रदेशबन्ध तो योगसे होते है और स्थितिबन्ध एवं अनुभागबन्ध कषायसे होते है।

प्रश्न ३७—योग किसे कहते है ?

उत्तर—आत्माके प्रदेशोके परिस्पन्द होनेको योग कहते है।

प्रश्न ३८— योग क्या आत्माका स्वभाव है ?

उत्तर— आत्मप्रदेशपरिस्पन्दरूप योग आत्माका स्वभाव नही है, वह तो कर्मोदयवश होता है। योगशक्ति अवश्य गुण या स्वभाव है, सो कर्मोदयमे उसका परिस्पन्द परिणमन होता है और प्रतिनियत कर्मोदयके अभावसे व सर्वथा कर्मोदयके अभावसे उसका निष्क्रिय परिणमन होता है। निश्चयनयसे शुद्ध आत्मप्रदेश निष्क्रिय होते है, व्यवहारनयसे सक्रिय होते है।

प्रश्न ३९— कषाय किसे कहते है ?

उत्तर— जो आत्माको कषे याने दुःख दे अथवा जो निर्दोष परमात्मतत्त्वकी भावना का अवरोध करे उसे कषाय कहते है।

प्रश्न ४०— इन बन्धोके स्वरूप जान लेनेसे हमे क्या शिक्षा लेनी चाहिये ?

उत्तर— ये बन्ध आत्माके स्वभाव नही है और न आत्माके है, ऐसा यथार्थ तत्त्व जानकर निज शुद्ध आत्मतत्त्वकी भावना करनी चाहिये।

प्रश्न ४१— बन्धके कारण जानकर हमे क्या शिक्षा लेनी चाहिये ?

उत्तर— योग और कषायसे उक्त बन्ध होते है, अतः बन्धके विनाशके अर्थ योग और कषायका त्याग करते हुए शुद्ध आत्मतत्त्वकी भावना करनी चाहिये।

प्रश्न ४२— योग और कषायका त्याग किस प्रकार होगा ?

उत्तर— मै ध्रुव आत्मा निष्क्रिय और निष्कषाय हू, इस प्रकारकी प्रीतिपूर्वक भावना से योग और कषायकी उपेक्षा होकर शुद्ध आत्मतत्त्वकी अभिमुखता होती है। इस पुरुषार्थके बलसे योग और कषाय भी समुच्छिन्न हो जाता है।

प्रश्न ४३— योग और कषायमे पहिले कौन नष्ट होता है ?

उत्तर— पहिले कषाय नष्ट होती है पश्चात् योग नष्ट होता है। कषायका सर्वथा नाश दसवें गुणस्थानके अन्तमे हो जाता है।

इस प्रकार बन्धतत्त्वका वर्णन करके अब सवरतत्त्वका वर्णन करते है—

चेदणपरिणामो जो कम्मस्सासवणिरोहणे हेऊ।
सो भावसवरो खलु दव्वस्सावणिरोहणो अण्णो ॥३४॥

अन्वय— जो चेदणपरिणामो कम्मस्सासवणिरोहणे हेऊ सो खलु भाव संवरो, दव्वस्सासवणिरोहणो अण्णो।

अर्थ— जो चेतनपरिणाम कर्मके आस्रवके रोकनेमे कारण है वह निश्चयसे भावसवर है और द्रव्यास्रवका रुक जाना द्रव्यसवर है।

प्रश्न १— क्या चेतन परिणाम आते हुए कर्मोको रोक देता है ?

उत्तर—चेतनपरिणाम आते हुए कर्मोको तो नही रोकता है, किन्तु शुद्ध चेतनपरिणामके निमित्तसे कर्मोका आना (आस्रव) रुक जाता है याने कर्म आते ही नही है ।

प्रश्न २– शुद्ध चेतनपरिणामकी निष्पत्ति कैसे होती है ?

उत्तर—अनादि अनन्त, अहेतुक, सहजानन्दमय, नित्यप्रकाशमान, ध्रुव, कारणपरमात्मस्वरूप शुद्ध चैतन्यस्वभावकी भावनासे शुद्ध चेतनपरिणामकी निष्पत्ति होती है ।

प्रश्न ३– शुद्ध चैतन्यस्वभाव अनादि अनन्त कैसे है ?

उत्तर– चेतन अथवा चैतन्यस्वभाव सत् है । सत्की न आदि होती है और न अत होता है, केवल परिणमन होता रहता है । यहाँ परिणमनपर दृष्टि नही है, क्योकि परिणमन तो समयमात्र रहकर नष्ट होता रहता है, मै आगे भी रहता हू । परिणमन समयमात्रको होता है, मैं उससे पहिले भी था, अत. मै अनादि अनन्त हूँ ।

प्रश्न ४– शुद्ध चैतन्यस्वभाव अहेतुक कैसे है ?

उत्तर--चैतन्यस्वभाव स्वत.सिद्ध है, वह किन्ही कारणोसे उत्पन्न नही हुआ । कारणो से उत्पन्न तो पर्याय होती है, क्योकि प्रतिविशिष्ट पर्याय जो होती है वह पहिले नही थी । मै अथवा चैतन्यस्वभाव पहिले नही था, ऐसा नही है । अतः मै अहेतुक हू अथवा चैतन्यस्वभाव अहेतुक है ।

प्रश्न ५– चैतन्यस्वभाव सहजानन्दमय कैसे है ?

उत्तर—चेतनमे आनन्दगुण सहज है, स्वभावरूप है । आत्माका न तो आनन्दगुण किसी अन्य द्रव्यसे हुआ और न आनन्दका विकास किसी अन्य द्रव्यसे होता है तथा शुद्ध चैतन्यस्वभावकी भावनामे सहज अनुपम परम आनन्द प्रकट होता है, जिससे स्वभावका पूर्ण साक्षात् परिचय मिलता है । अतः चैतन्यस्वभाव सहजानन्दमय है ।

प्रश्न ६– चैतन्यस्वभाव नित्य प्रकाशमान कैसे है ?

उत्तर– चैतन्यस्वभाव दर्शनसामान्यात्मक है । यह स्वभाव तो नित्य प्रकाशमान है ही, किन्तु इसका प्रत्यय सम्यग्दृष्टिको होता है । व्यवहारमे भी ज्ञानदर्शनका किसी न किसी रूपमे विकास प्रत्येक जीवमे रहता है, वह चैतन्यस्वभावका ही तो विकास है । अत चैतन्यस्वभाव नित्य प्रकाशमान है ।

प्रश्न ७– चैतन्यस्वभाव ध्रुव क्यो है ?

उत्तर– चेतन अथवा चैतन्यस्वभाव अविनाशी है, सत् है । सत्का कभी विनाश नही होता । अत' चेतन अथवा चैतन्यस्वभाव ध्रुव है ।

प्रश्न ८-- चैतन्यस्वभावको कारणपरमात्मा क्यो कहते है ?

उत्तर-- कार्यपरमात्मत्व याने शुद्ध पूर्ण विकास चैतन्यस्वभावका ही परिणमन है,

चैतन्यस्वभावसे ही प्रकट हुआ है, अतः सिद्ध परमात्मतत्त्व चैतन्यस्वभावसे प्रकट होनेके कारण इस चैतन्यस्वभावको कारणपरमात्मा कहते है।

प्रश्न ६– अब सवरका परिणाम किस रूप है ?

उत्तर—शुद्ध चेतनभाव रूप है याने अनाद्यनन्त, अहेतुक निज चैतन्यस्वभावकी भावना, उपयोग, अवलम्बन व सहज परिणतिरूप है।

प्रश्न १०—द्रव्यसवर किसे कहते है ?

उत्तर—अब सवरके निमित्तसे होने वाले नूतन द्रव्यकर्मके आनेके अभावको द्रव्यसवर कहते है।

प्रश्न ११—जो कर्म आ ही नही रहे है उनका संवर क्या ?

उत्तर—कर्म पहिले आया करते थे व चेतनके परिणामोके ही निमित्तसे आया करते थे तो अब विरुद्ध चेतनभावके प्रतिपक्षी शुद्ध चेतनभाव है सो पूर्वमे आते थे, उसकी अपेक्षासे व अब वे विभावरूप चेतनभाव नही हो सकते जो द्रव्यास्रवके कारण बनते। इन सब दृष्टियो से सवर युक्तियुक्त सिद्ध हो जाता है।

प्रश्न १२– १४८ कर्मप्रकृतियोका सवर क्या किसीसे कम होता है या यथा तथा ?

उत्तर—गुणविकासके याने गुणस्थानके अनुसार इन १४८ प्रकृतियोका सवर होता है।

प्रश्न १३—मिथ्यात्व गुणस्थानमे कितनी प्रकृतियोका सवर होता है ?

उत्तर— मिथ्यात्व गुणस्थानमे सवर तो नही होता है, किन्तु प्रायोग्यलब्धिके कालमें ३४ बधापसरण होते है।

प्रश्न १४—बन्धापसरण और संवरमे क्या अन्तर है ?

उत्तर—बन्धापसरण तो मिथ्यात्वगुणस्थानमे प्रायोग्यलब्धिके समय हो जाता है। वह मिथ्यादृष्टि यदि करणलब्धि न कर सका तो प्रायोग्यलब्धिसे गिरकर फिर इसी गुणस्थान मे बन्ध करने लगता तथा यदि ऊपर गुणस्थानोमे चढा तो भी इनमेसे कुछ प्रकृतियोका कुछ गुणस्थानो तक बन्ध करने लगता। किन्तु जिस प्रकृतिका सवर जिस गुणस्थानमे होता है उसमे व उससे ऊपरके सब गुणस्थानोमे व अतीत गुणस्थानमे कही भी उसका बन्ध नही हो सकता। ये बन्धापसरण अभव्यके भी हो सकते है, किन्तु संवर कभी नही होता।

प्रश्न १५– ये ३४ बन्धापसरण किस प्रकार होते है ?

उत्तर—मिथ्यादृष्टि जीव विशुद्धिके बलसे जब क्षयोपशमलब्धि, विशुद्धि और देशना-लब्धि प्राप्त करनेके पश्चात् प्रायोग्यलब्धिमे आता है तब वह केवल अन्तःकोडाकोडी सागरकी स्थिति बाधता है अर्थात् एक कोडाकोडी सागरसे कम स्थिति बाधता है तथा इसके बाद भी

विशुद्धिबलसे स्थितिबन्ध उत्तरोत्तर कम बाधता है। इन्ही कम स्थितिबन्धोके अवसरोमे १-१ करके ३४ बन्धापसरण होते है अर्थात् उन प्रकृतियोकी जिनका निर्देश अभी किया जायगा बंधव्युच्छेद हो जाता है।

प्रश्न १६— प्रथम बन्धापसरण किसका और कब होता है ?

उत्तर—उक्त अन्त.कोडाकोडी सागरसे भी कम-कम बन्ध होते-होते जब शत पृथक्त्व सागर (३०० से ६०० सागरके बीच) कम बन्ध होने लगता है तब नरकायुका बन्धव्युच्छेद हो जाता है।

प्रश्न १७—द्वितीय बन्धापसरण कब और किसका होता है ?

उत्तर—प्रथम बन्धापरणमे होने वाले स्थितिबन्धसे कम कम बन्ध होते-होते जब शतपृथक्त्वसागर कम स्थितिबन्ध हो जाता है तब तिर्यगायुका बन्धव्युच्छेद हो जाता है।

प्रश्न १८—तृतीय बन्धापसरण किसका और कब होता है ?

उत्तर—द्वितीय बन्धापसरणमे होने वाले स्थितिबन्धसे कम कम बन्ध होते होते जब शतपृथक्त्व सागर कम स्थितिबन्ध हो जाता है तब मनुप्यायुका बन्धव्युच्छेद होता है।

प्रश्न १९— चतुर्थ बन्धापसरण किसका और कब होता है ?

उत्तर— तृतीय बन्धापसरणमे होने वाले स्थितिबन्धसे कम होते-होते जब शतपृथक्त्वसागर कम स्थितिबन्ध हो जाता है तब देवायुका बन्धव्युच्छेद हो जाता है।

प्रश्न २०— पञ्चम बन्धापसरण किसका और कब होता है ?

उत्तर— चतुर्थबन्धापसरणमे होने वाले स्थितिबघसे कम कम बध होते होते जब शतपृथक्त्वसागर कम स्थितिबन्ध हो जाता है तब नरकगति व नरकगत्यानुपूर्व्य— इन दोनो प्रकृतियोका एक साथ बन्धव्युच्छेद होता है।

प्रश्न २१— षष्ठ बन्धापसरण किसका और कब होता है ?

उत्तर— पञ्चम बन्धापसरणमे होने वाले स्थितिबन्धसे कम-कम बध होते-होते जब शतपृथक्त्वसागर कम स्थितिबन्ध हो जाता है तब परस्परसयुक्त सूक्ष्म, अपर्याप्ति व साधारण, इन तीन प्रकृतियोका एक साथ बधव्युच्छेद होता है।

प्रश्न २२— सप्तम बधापसरण किसका और कब होता है ?

उत्तर— षष्ठ बन्धापसरणमे होने वाले स्थितिबधसे कम-कम बध होते होते जब शतपृथक्त्वसागर कम स्थितिबध हो जाता है तब परस्परसयुक्त सूक्ष्म, अपर्याप्ति, प्रत्येक शरीर, इन तीन प्रकृतियोका एक साथ बधव्युच्छेद हो जाता है।

प्रश्न २३— अष्टम बन्धापसरण किसका और कब होता है ?

उत्तर— सप्तम बधापसरणमे होने वाले स्थितिबधसे कम बन्ध होते होते जब शतपृथ-

क्त्वसागर कम स्थितिबन्ध हो जाता है तब परस्परसंयुक्त, वादर, अपर्याप्ति, साधारणशरीर, इन तीन प्रकृतियोका बधव्युच्छेद हो जाता है।

प्रश्न २४– नवम बधापसरण किसका और जब होता है ?

उत्तर—अष्टम बधापसरणमे होने वाले स्थितिबधसे कम बध होते-होते जब शतपृथक्त्वसागर कम स्थितिबन्ध रह जाता है तब वादर, अपर्याप्ति, प्रत्येक शरीर, इन तीन प्रकृतियोका एक साथ बंधव्युच्छेद होता है।

प्रश्न २५– दशम वधापसरण किसका और कब होता है ?

उत्तर– नवम बन्धापसरणमे होने वाले स्थितिबंधसे कम बध होते-होते जब शतपृथक्त्वसागर कम स्थितिबध हो जाता है तब परस्परसयुक्त द्वीन्द्रिय जाति व अपर्याप्ति, इन दो प्रकृतियोका एक साथ बंधव्युच्छेद होता है।

प्रश्न २६—११वां बधापसरण किसका और कब होता है ?

उत्तर—दशम बंधापसरणमें होने वाले स्थितिबधसे कम बंध होते होते जब शतपृथक्त्वसागर कम स्थितिबध हो जाता है तब परस्परसयुक्त त्रीन्द्रिय जाति व अपर्याप्ति—इन दो प्रकृतियोका बन्धव्युच्छेद होता है।

प्रश्न २७—१२वां बन्धापसरण किसका और कब होता है ?

उत्तर-- ११वें बन्धापसरणमें होने वाले स्थितिबंधसे कम बन्ध होते-होते जब शतपृथक्त्वसागर कम स्थितिबन्ध हो जाता है तब परस्परसंयुक्त चतुरिन्द्रिय जाति व अपर्याप्ति, इन दोनो प्रकृतियोका बन्धव्युच्छेद होता है।

प्रश्न २८– १३वां बन्धापसरण किसका और कब होता है ?

उत्तर—१२वें बन्धापसरणमे होने वाले स्थितिबधसे कम बन्ध होते होते जब शतपृथक्त्वसागर कम स्थितिबन्ध हो जाता है तब परस्परसंयुक्त असज्ञी पञ्चेन्द्रियजाति व अपर्याप्ति—इन दोनो प्रकृतियोका बन्धव्युच्छेद होता है।

प्रश्न २९—१४वां बन्धापसरण किसका और कब होता है ?

उत्तर—१३वे बन्धापसरणमे होने वाले स्थितिबन्धसे कम बन्ध होते होते जब शतपृथक्त्वसागर कम स्थितिबध हो जाता है तब परस्परसंयुक्त संज्ञी पचेन्द्रिय जाति व अपर्याप्ति, इन दोनो प्रकृतियोका बन्धव्युच्छेद हो जाता है।

प्रश्न ३०– १५वां बन्धापसरण किसका और कब होता है ?

उत्तर– १४वें बन्धापसरणमे होने वाले स्थितिबंधसे कम बन्ध होते होते जब शतपृथक्त्वसागर कम स्थितिबन्ध हो जाता है तब परस्परसंयुक्त सूक्ष्म, पर्याप्ति, साधारण शरीर इन तीन प्रकृतियोंका बन्धव्युच्छेद हो जाता है।

प्रश्न ३१—१६वाँ बन्धापसरण किसका और कब होता है ?

उत्तर-- १५वें बन्धापसरणमे होने वाले स्थितिबन्धसे कम बन्ध होते होते जब शत-पृथक्त्वसागर कम स्थितिबंध हो जाता है तब सूक्ष्म, पर्याप्ति, प्रत्येक शरीर, इन परस्परसंयुक्त तीन प्रकृतियोका बन्धव्युच्छेद होता है।

प्रश्न ३२-- १७वाँ बन्धापसरण कब और किसका होता है ?

उत्तर– १६वें बन्धापसरणमें होने वाले स्थितिबन्धसे कम बन्ध होते-होते जब शत-पृथक्त्वसागर कम स्थितिबन्ध हो जाता है तब बादर, पर्याप्ति, साधारण शरीर, इन परस्पर-सयुक्त तीन प्रकृतियोका बन्धव्युच्छेद होता है।

प्रश्न ३३ —१८वा बन्धापसरण कब और किसका होता है ?

उत्तर-- १७वें बन्धापसरणमे होने वाले स्थितिबन्धसे कम बन्ध होते होते जब शत-पृथक्त्वसागर कम स्थितिबन्ध हो जाता है तब बादर, पर्याप्ति, प्रत्येकशरीर, एकेन्द्रिय, आतप और स्थावर, इन परस्परसयुक्त छः प्रकृतियोका बन्धापसरण हो जाता है।

प्रश्न ३४-- १९वाँ बन्धापसरण कब और किसका होता है ?

उत्तर— १८वें बन्धापसरणमे होने वाले स्थितिबन्धसे कम बन्ध होते-होते जब शतपृथक्त्वसागर कम स्थितिबन्ध हो जाता है तब परस्परसयुक्त द्वीन्द्रियजाति व पर्याप्ति, इन दो प्रकृतियोका बन्धव्युच्छेद हो जाता है।

प्रश्न ३५—२०वाँ बन्धापसरण कब और किसका होता है ?

उत्तर– १९वे बन्धापसरणमे होने वाले स्थितिबन्धसे कम बन्ध होते होते जब शत-पृथक्त्वसागर कम स्थितिबन्ध हो जाता है तब परस्परसयुक्त त्रीन्द्रियजाति व पर्याप्ति, इन दोनो प्रकृतियोका बन्धव्युच्छेद हो जाता है।

प्रश्न ३६—२१वाँ बन्धापसरण कब और किसका होता है ?

उत्तर—२०वें बन्धापसरणमे होने वाले स्थितिबन्धसे कम बन्ध होते होते जब शत-पृथक्त्वसागर कम स्थितिबन्ध हो जाता है तब परस्परसयुक्त चतुरिन्द्रियजाति व पर्याप्ति, इन दो प्रकृतियोका बन्धापसरण हो जाता है।

प्रश्न ३७– २२वाँ बन्धापसरण कब और किसका होता है ?

उत्तर—२१वें बन्धापसरणमे होने वाले स्थितिबन्धसे कम बन्ध होते होते जब शत-पृथक्त्वसागर कम स्थितिबन्ध हो जाता है तब असज्ञी पञ्चेन्द्रिय जाति व पर्याप्ति, इन परस्पर-संयुक्त दोनो प्रकृतियोका बन्धव्युच्छेद होता है।

प्रश्न ३८– असज्ञी पञ्चेन्द्रियजातिनामकर्म तो कोई नही है ?

उत्तर—प्रकृतियाँ सब १४८ ही नही है, उन १४८ प्रकृतियोके और भी अवान्तर

भेद हो जाते है जो कि असंख्यात और अनन्त तक हो जाते है। असंज्ञी पचेन्द्रिय जाति व संज्ञी पञ्चेन्द्रियजाति, ये दोनो पचेन्द्रियजाति नामकर्मके भेद है।

प्रश्न ३६—२३वाँ बन्धापसरण किसका और कब होता है ?

उत्तर—२२वें बन्धापसरणमे होने वाले स्थितिबन्धसे कम बन्ध होते होते जब शत-पृथक्त्वसागर कम स्थितिबन्ध हो जाता है तब तिर्यग्गति, तिर्यग्गत्यानुपूर्व्य और उद्योत, इन तीन प्रकृतियोका एक साथ बन्धापसरण हो जाता है।

प्रश्न ४०—२४वाँ बन्धापसरण कब और किसका होता है ?

उत्तर– २३वें बन्धापसरणमे होने वाले स्थितिबन्धसे कम बन्ध होते होते जब शत-पृथक्त्वसागर कम स्थितिबध हो जाता है तब नीच गोत्रकर्मका बन्धव्युच्छेद हो जाता है।

प्रश्न ४१– २५वाँ बन्धापमरण किसका और कब होता है ?

उत्तर—२४वें बन्धापसरणमे होने वाले स्थितिबन्धसे कम बन्ध होते-होते जब शत-पृथक्त्वसागर कम बन्ध हो जाता है तब अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुस्वर व अनादेय, इन चारो प्रकृतियोका एक साथ बधापसरण हो जाता है।

प्रश्न ४२—२६वाँ बन्धापमरण कब और किसका होता है ?

उत्तर—२५वें बन्धापरणमे होने वाले स्थितिबन्धसे कम बन्ध होते-होते जब शत-पृथक्त्वसागर कम स्थितिबन्ध हो जाता है तब हुडकसस्थान व असप्राप्तसृपाटिकासहनन, इन दोनो प्रकृतियोका एक साथ बन्धव्युच्छेद हो जाता है।

प्रश्न ४३—२७वाँ बन्धापसरण किसका और कब होता है ?

उत्तर—२६वें बन्धापसरणमे होने वाले स्थितिबन्धसे कम कम बन्ध होते होते जब शतपृथक्त्व सागर कम स्थितिबन्ध हो जाता है तब नपुसकवेदका बन्धव्युच्छेद होता है।

प्रश्न ४४– २८वाँ बन्धापसरण किसका और कब होता है ?

उत्तर– २७वे बन्धापसरणमे होने वाले स्थितिबन्धसे कम होते-होते जब शतपृथक्त्व-सागर कम स्थितिबन्ध हो जाता है तब वामनसस्थान और कीलितसहनन, इन दोनो प्रकृतियो का एक साथ बन्धव्युच्छेद हो जाता है।

प्रश्न ४५– २९वाँ बन्धापसरण किसका और कब होता है ?

उत्तर– २८वें बन्धापसरणमे होने वाले स्थितिबधसे कम बध होते होते जब शतपृथ-क्त्वसागर कम स्थितिबन्ध हो जाता है तब कुब्जकसंस्थान व अर्द्धनाराचसहनन, इन दोनो प्रकृतियोका एक साथ बन्धव्युच्छेद हो जाता है।

प्रश्न ४६– ३०वाँ बन्धापसरण किसका और कब होता है ?

उत्तर– २९वें बन्धापसरणमे होने वाले स्थितिबन्धसे कम बंध होते-होते जब शतपृथ-

क्त्वसागर कम स्थितिवन्ध हो जाता है तब स्त्रीवेदमोहनीयकर्मका बधव्युच्छेद होता है।

प्रश्न ४७-- ३१वा बधापसरण किसका और कब होता है ?

उत्तर– ३०वें बन्धापसरणमे होने वाले स्थितिबधसे कम बध होते होते जब शत-पृथक्त्वसागर कम स्थितिबध हो जाता है तब स्वातिसंस्थान व नाराचसहनन, इन दोनो प्रकृतियोका एक साथ बधव्युच्छेद हो जाता है।

प्रश्न ४८– ३२वां बन्धापसरण किसका और कब होता है ?

उत्तर– ३१वे बधापसरणमे होने वाले स्थितिबधसे कम बन्ध होते होते जब शतपृथक्त्वसागर कम स्थितिबन्ध हो जाता है तब न्यग्रोधपरिमडलसंस्थान व वज्रनाराचसहनन, इन दोनो प्रकृतियोका एक साथ बधव्युच्छेद हो जाना है।

प्रश्न ४९– ३३वाँ बन्धापसरण कब और किसका होता है ?

उत्तर– ३२वें बन्धापसरणमे होने वाले स्थितिबन्धसे कम बन्ध होते होते जब शत-पृथक्त्वसागर कम स्थितिबन्ध हो जाता है तब मनुष्यगति, औदारिकशरीर, औदारिक अङ्गोपाङ्ग, वज्रऋषभनाराचसहनन और मनुष्यगत्यानुपूर्व्य, इन पाँचो प्रकृतियोका एक साथ बधव्युच्छेद हो जाता है।

प्रश्न ५०—३४वाँ बन्धापसरण कब और किसका होता है ?

उत्तर—३३वें बन्धापसरणमे होने वाले स्थितिबधसे कम बध होते होते जब शतपृथक्त्वसागर कम स्थितिबन्ध हो जाता है तब असातावेदनीय, अरति, शोक, अस्थिर, अशुभ, अयशःकीर्ति, इन छ प्रकृतियोका एक साथ बन्धव्युच्छेद हो जाता है।

प्रश्न ५१—यह ३४ बन्धापसरण कब तक रहते है ?

उत्तर—इन ३४ बधापसरणोको करने वाले जीवके या तो मिथ्यात्व गुणस्थानका अन्त हो जाय याने सम्यक्त्व उत्पन्न हो जाये या प्रायोग्यलब्धिसे पतन हो जाय, इससे पहिले तक ३४ बधापसरण बने रहते है।

प्रश्न ५२– सासादनसम्यक्त्व गुणस्थानमे कितनी प्रकृतियोका सवर होता है ?

उत्तर—सासादनसम्यक्त्व नामक दूसरे गुणस्थानमे १६ प्रकृतियोका संवर होता है। वे १६ प्रकृतियाँ ये है—(१) मिथ्यात्व, (२) नपुसकवेद, (३) नरकायु, (४) नरकगति, (५) एकेन्द्रियजाति, (६) द्वीन्द्रियजाति, (७) त्रीन्द्रियजाति, (८) चतुरिन्द्रियजाति, (९) हुडकसस्थान, (१०) असंप्राप्तसृपाटिकासहनन, (११) नरकगत्यानुपूर्व्य, (१२) आतप, (१३) साधारणशरीर, (१४) सूक्ष्म, (१५) अपर्याप्ति और (१६) स्थावर।

प्रश्न ५३—सासादन सम्यक्त्वमे इन १६ प्रकृतियोका सवर क्यो होता है ?

उत्तर—इन १६ प्रकृतियोके आस्रव, बन्धका कारण मिथ्यात्वभाव है। सासादन-

सम्यक्त्वमे मिथ्यात्वभाव है नही, अतएव अशुभोपयोगकी मन्दता होनेसे इन प्रकृतियोका यहाँ सवर होता है।

प्रश्न ५४– मिश्रसम्यक्त्व गुणस्थानमे कितनी प्रकृतियोका सवर होता है ?

उत्तर– तीसरे गुणस्थानमे ४१ प्रकृतियोका संवर होता है। इनमेसे सोलह प्रकृतियां तो पूर्व सवृत है, बाकी २५ प्रकृतिया ये है—(१) निद्रानिद्रा, (२) प्रचलाप्रचला, (३) स्त्यानगृद्धि, (४) अनन्तानुबधी क्रोध, (५) अन० मान, (६) अन० माया, (७) अन० लोभ, (८) स्त्रीवेद, (९) तिर्यगायु, (१०) तिर्यग्गति, (११) न्यग्रोधपरिमडलसस्थान, (१२) स्वातिसंस्थान, (१३) वामनसंस्थान, (१४) कुब्जकसंस्थान, (१५) वज्रनाराचसहनन, (१६) नाराचसहनन, (१७) अर्द्धनाराचसहनन, (१८) कीलकसंहनन, (१९) तिर्यग्गत्यानुपूर्व्य, (२०) उद्योत, (२१) अप्रशस्तविहायोगति, (२२) दुर्भग, (२३) दुःस्वर, (२४) अनादेय और (२५) नीचगोत्र।

प्रश्न ५५– इन २५ प्रकृतियोका मिश्रसम्यक्त्व गुणस्थानमे क्यो सवर होता ?

उत्तर– इन पच्चीस प्रकृतियोके बन्धका कारण अनन्तानुबन्धी कषायका उदय है। इस तीसरे गुणस्थानमे अनन्तानुबधी कषाय और मिथ्यात्व नही है, अतः इन प्रकृतियोंके आस्रवका कारण न होनेसे सम्वर हो जाता है।

प्रश्न ५६—अनन्तानुबधी कषाय यहा क्यो नही होती ?

उत्तर– सम्यग्मिथ्यात्व परिणामके होनेपर अशुभोपयोगकी अत्यन्त मन्दता होनेसे अनन्तानुबन्धी कषाय हो नही सकती।

प्रश्न ५७– अविरत सम्यक्त्वगुणस्थानमे कितनी प्रकृतियोका सम्वर होता है ?

उत्तर—अविरत सम्यक्त्व नामक चौथे गुणस्थानमे पूर्वोक्त ४१ प्रकृतियोका संवर होता है। यहां इस सवरका कारण सम्यक्त्वपरिणाम है। इस गुणस्थानमे अनतानुबधी कषाय ४ मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति, इन सात प्रकृतियोके उपशम, क्षय या क्षयोपशम के कारण अशुभोपयोगका अभाव हो जाता है और शुद्धोपयोगसाधक शुभोपयोग प्रकट हो जाता है।

प्रश्न ५८—देशविरत गुणस्थानमे कितनी प्रकृतियोका संवर होता है ?

उत्तर—देशविरत गुणस्थानमे ५१ प्रकृतियोका सम्वर होता है। इनमे ४१ तो पूर्व सवृत है और १० प्रकृतिया ये है—(१-४) अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ, (५) मनुष्यायु, (६) मनुष्यगति, (७) औदारिकशरीर, (८) औदारिक अङ्गोपाङ्ग, (९) वज्रऋषभनाराचसहनन और (१०) मनुष्यगत्यानुपूर्व्य।

प्रश्न ५९—देशविरतमे इन १० प्रकृतियोका सवर क्यो हो जाता है ?

उत्तर—देशसयम (सयमासयम) का भाव होनेपर अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ कषाये नही रह सकती। देशविरत परिणाम सम्यक्त्व होनेपर ही मनुष्य तिर्यंच के होता है। सो इनके सम्यक्त्व होनेके कारण आयु बन्धती है तो देवायु ही बन्धती है, अतः देशविरत देवगति सिवाय अन्य भवोमें जाता नही है, अतः मनुष्यायुसे सम्बन्ध रखने वाली ६ प्रकृतियोंका भी संवर हो जाता है।

प्रश्न ६०-- सम्यक्त्व तो चौथे गुणस्थानमे भी है, वहा इन ६ प्रकृतियोका सवर क्यों नही है ?

उत्तर—चौथा गुणस्थान तो देव व नारकियोके भी होता है (सम्यग्दृष्टि देव या नारकी मरणकर देवगतिमे नही जा सकते है, ऐसा प्राकृतिक नियम है। वे मनुष्यगतिमें ही उत्पन्न होते है)। अतः चौथे गुणस्थानमे इन ६ प्रकृतियोका सवर नही कहा। विशेष अपेक्षासे तो चौथे गुणस्थानके मनुष्य तिर्यञ्चोके आयु न बधी हो तो सम्यक्त्व होनेके कारण उनके भी देवायु ही बधती है और इस तरह उस चतुर्थगुणस्थानवर्ती मनुष्यतिर्यञ्चके भी इन ६ प्रकृतियोका सवर होता है।

प्रश्न ६१– प्रमत्तविरत गुणस्थानमे कितनी प्रकृतियोका संवर होता है ?

उत्तर—प्रमत्तविरत गुणस्थानमे ५५ प्रकृतियोका संवर होता है। इनमे ५१ तो पूर्व संवृत है और चार ये है– (१) प्रत्याख्यानावरण क्रोध, (२) प्रत्याख्यानावरण मान, (३) प्रत्याख्यानावरण माया, (४) प्रत्याख्यानावरण लोभ।

प्रश्न ६२– प्रमत्तविरतमे इन ४ प्रकृतियोका सवर क्यो होता है ?

उत्तर– प्रमत्तविरत गुणस्थानमे सकलसयम प्रकट है। सकलसयमका परिणाम प्रकट होनेपर सकलसयमके प्रतिपक्षी इन ४ प्रकृतियोका आस्रव हो नही सकता।

प्रश्न ६३– अप्रमत्तविरत गुणस्थानमे कितनी प्रकृतियोका सवर होता है ?

उत्तर– अप्रमत्तविरत गुणस्थानमे ६१ प्रकृतियोका सवर होता है। इनमे ५५ प्रकृतिया तो पूर्वसवृत है और ६ प्रकृतिया ये है—(१) असातावेदनीय, (२) अरतिमोहनीय, (३) शोकवेदनीय, (४) अशुभनामकर्म, (५) अस्थिरनामकर्म और (६) अयश.कीर्तिनामकर्म।

प्रश्न ६४—अप्रमत्तविरतमे इन ६ प्रकृतियोका सवर क्यो हो जाता है ?

उत्तर—अप्रमत्तविरत गुणस्थानमे संज्वलनकषायका उदय मन्द हो जानेसे प्रमाद नही रहा। अप्रमत्तविरत अवस्थामे इन छः प्रकृतियोका आस्रव हो नही सकता।

प्रश्न ६५—अपूर्वकरणमे कितनी प्रकृतियोका सवर होता है ?

उत्तर—अपूर्वकरण गुणस्थानमे ६२ प्रकृतियोका सवर होता है। इनमेसे ६१ प्रकृ-

तियां तो पूर्व सवृत है और एक प्रकृति देवायु है ।

प्रश्न ६६—आठवे गुणस्थानमे देवायुका सवर क्यो होता है ?

उत्तर—श्रेणीके परिणाम इतने निर्मल होते है कि उनके कारण श्रेणियोमे किसी भी आयुका आस्रव नही होता । अन्य आयुकर्मोका तो सवर पहले, दूसरे व ५वें गुणस्थानमे बता दिया था, शेष रही देवायुका यहां सम्वर हो जाता है ।

प्रश्न ६७—अनिवृत्तिकरणमे कितनी प्रकृतियोका सम्वर होता है ?

उत्तर—अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमे ९८ प्रकृतियोका सम्वर होता है । इनमे ६२ प्रकृतियां तो पूर्वसवृत है और ३६ प्रकृतियां ये है—(१) निद्रा, (२) प्रचला, (३) हास्य, (४) रति, (५) भय, (६) जुगुप्सा, (७) देवगति, (८) पचेन्द्रियजाति, (९) वैक्रियक शरीर, (१०) वैक्रियक अगोपांग, (११) आहारक शरीर, (१२) आहारकागोपांग, (१३) औदारिक शरीर, (१४) औदारिकांगोपाग, (१५) निर्माण, (१६) समचतुरस्रसस्थान, (१७) स्पर्श, (१८) रस, (१९) गध, (२०) वर्णनामकर्म, (२१) देवगत्यानुपूर्व्य, (२२) अगुरुलघु, (२३) उपघात, (२४) परघात, (२५) उच्छ्वास, (२६) प्रशस्तविहायोगति, (२७) प्रत्येकशरीर, (२८) त्रस, (२९) वादर, (३०) पर्याप्ति, (३१) शुभ, (३२) सुभग, (३३) सुस्वर, (३४) स्थिर, (३५) आदेयनामकर्म, (३६) तीर्थङ्करनामकर्म ।

प्रश्न ८—नवमे गुणस्थानमे ३६ प्रकृतियोका क्यो सवर है ?

उत्तर—उपशमक अथवा क्षपक अनिवृत्तिकरण परिणामोकी विशेपताके कारण उक्त प्रकृतियोका सवर है । अपूर्वकरण परिणामोमे भी उत्तरोत्तर विशेषता थी, जिसके कारण अपूर्वकरण गुणस्थानमे ही कुछ समय पश्चात् उक्त ३६ प्रकृतियोमे से २ और कुछ समय पश्चात् ३० प्रकृतियोका संवर हो गया था ।

प्रश्न ६९—सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानमें कितनी प्रकृतियोका संवर होता है ?

उत्तर— दसवे गुणस्थानमें १०३ प्रकृतियोका सवर होता है । इनमे ९८ प्रकृतियां तो पूर्व सवृत हैं व ५ प्रकृतिया ये है— (१) सज्वलन क्रोध, (२) सज्वलन मान, (३) सज्वलन माया, (४) सज्वलन लोभ, (५) पुरुषवेद ।

प्रश्न ७०— दसवे गुणस्थानमे इन ५ प्रकृतियोका सम्वर क्यो है ?

उत्तर— सूक्ष्मलोभके अतिरिक्त सर्वकषायोके अभावसे मोहनीयकर्मकी अवशिष्ट, इन ५ प्रकृतियोका सम्वर होता है । अनिवृत्तिकरण परिणामोकी विशेषतासे भी उक्त ५ प्रकृतियो मे से अनिवृत्तिकरणके दूसरे भागमे पुरुषवेद, तीसरे भागमे सज्वलनक्रोध, चौथे भागमे संज्वलन मान, पाचवे भागमे सज्वलन माया नामक मोहनीयकर्मका सम्वर हो गया था ।

प्रश्न ७१—उपशान्तमोहमे कितनी प्रकृतियोका सम्वर है ?

उत्तर—उपशान्तमोह नामक ग्यारहवें गुणस्थानमे ११६ प्रकृतियोका सम्वर होता है। इनमे १०३ प्रकृतिया तो पूर्वसवृत है, शेप १६ प्रकृतिया ये है— (१) मतिज्ञानावरण, (२) श्रुतज्ञानावरण, (३) अवधिज्ञानावरण, (४) मन पर्ययज्ञानावरण, (५) केवलज्ञानावरण, (६) चक्षुर्दर्शनावरण, (७) अचक्षुर्दर्शनावरण, (८) अवधिज्ञानावरण, (६) केवलदर्शनावरण, (१०) यश कीर्तिनामकर्म, (११) उच्चगोत्रकर्म, (१२) दानान्तराय, (१३) लाभान्तराय, (१४) भोगान्तराय, (१५) उपभोगान्तराय और (१६) वीर्यान्तराय।

प्रश्न ७२—उपशान्तमोहमे उक्त १६ प्रकृतियोका सवर क्यो होता है ?

उत्तर— समस्त मोहके अभावसे होने वाली वीतरागताके कारण केवल सातावेदनीय को छोडकर सर्वप्रकृतियोका सम्वर हो जाता है।

प्रश्न ७३— यहा सातावेदनीयका सम्वर क्यो नही होता ?

उत्तर—यद्यपि वीतरागता हो गई, किन्तु योगका सद्भाव है। कारण याने योगोके सद्भावसे सातावेदनीयका ईर्यापथ आस्रव होता है।

प्रश्न ७४—उपशान्तमोहमे सातावेदनीयका ईर्यापथ आस्रव क्यो है ?

उत्तर—साम्परायिक आस्रव कषाय होनेपर ही होता है। योगसे आस्रव तो होता है, किन्तु आकर तुरन्त खिर जाता है। कपाय न होनेसे स्थितिबध नही होता। अतः उपशान्तमोहमे केवल सातावेदनीयका ईर्यापथ आस्रव है।

प्रश्न ७५— क्षीणमोहमे कितनी प्रकृतियोका सम्वर होता है ?

उत्तर— क्षीणमोह गुणस्थानमे भी उक्त प्रकारसे ११६ प्रकृतियोका सम्वर होता है।

प्रश्न ७६— सयोगकेवलीमे कितनी प्रकृतियोका सम्वर होता है ?

उत्तर— सयोगकेवली गुणस्थानमे भी उक्त ११६ प्रकृतियोंका सम्वर है।

प्रश्न ७७—अयोगकेवली गुणस्थानमे कितनी प्रकृतियोका सम्वर है ?

उत्तर—अयोगकेवली गुणस्थानमे १२० प्रकृतियोका सवर होता है। इनमे ११६ तो पूर्व सवृत है और एक सातावेदनीयका भी सवर होता है।

प्रश्न ७८— यहाँ सातावेदनीयका सवर क्यो हो जाता है ?

उत्तर—योगका अभाव रहनेसे यहां अवशिष्ट सातावेदनीयका सवर होता है।

प्रश्न ७९—शेष २८ प्रकृतियोका कहां सवर होता है ?

उत्तर—शेष २८ प्रकृतियोमे २ तो दर्शनमोहनीय हैं— (१) सम्यग्मिथ्यात्व और) सम्यक्प्रकृति। ५ बन्धननामकर्म हैं, ५ सघातनामकर्म है, १६ स्पर्शादि सम्बन्धी हैं। इनमे म्यग्मिथ्यात्व व सम्यक्प्रकृतिका तो आस्रव ही नही होता, इसलिये उनके सम्वरका वहा ही नही है। ५ बन्धन, ५ सघातनामकर्मोंका शरीरमे अन्तर्भाव किया है, सो जहा

शरीरनामकर्मोका संवर होता है नही उसी नाम वाले बन्धन व संघातनामकर्मोका संवर होता है।

स्पर्शादि नामकर्म २० है, उन्हे मूल नामसे ४ मानकर ४ का सवर बताया है। इस तरह १६ नम्बर कम रहते थे, सो जहाँ (नवमे गुणस्थानमे) इन ४ का सवर बताया सो २० का ही सवर समझना।

प्रश्न ८०—अतीतगुणस्थानमे कितनी प्रकृतियोका संवर है ?

उत्तर—अतीतगुणस्थानमे (सिद्ध भगवान) मे समस्त कर्म प्रकृतियोका सदाके लिये सवर रहता है। क्योकि अत्यन्त निर्मल, द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्मसे मुक्त सर्वथा शुद्ध वहाँ शुद्धोपयोग बर्तता रहता है।

प्रश्न ८१—सवरकी विशेषतामे क्या उपयोगकी विशेषता कारण नही है ?

उत्तर—उपयोगकी विशेषताका भी कारण मोहका भाव व अभाव है। सवरप्रदर्शक उपयोगके प्रकारसे भी मोहका तारतम्य व अभाव समझना चाहिये।

प्रश्न ८२—उपयोगके कितने प्रकार है ?

उत्तर— उपयोगके ३ प्रकार है— (१) अशुभोपयोग, (२) शुभोपयोग और (३) शुद्धोपयोग।

प्रश्न ८३—अशुभोपयोग किन गुणस्थानोमे है ?

उत्तर — मिथ्यात्व, सासादनसम्यक्त्व और मिश्रसम्यक्त्व, इन तीन गुणस्थानोमे ऊपर ऊपर मन्द मन्द रूपसे होता हुआ अशुभोपयोग है।

प्रश्न ८४— शुभोपयोग किन गुणस्थानोमे है ?

उत्तर— अविरतसम्यक्त्व, देशविरत और प्रमत्तविरत, इन तीन गुणस्थानोमे ऊपर ऊपर शुद्धोपयोगकी साधकताके विशेषसे होता हुआ शुभोपयोग है।

प्रश्न ८५— शुद्धोपयोग किन गुणस्थानोमे है ?

उत्तर—शुद्धोपयोग दो प्रकारोमे होता है— (१) एकदेशनिरावरणरूप शुद्धोपयोग, (२) सर्वदेशनिरावरणरूप शुद्धोपयोग। इनमेसे एकदेशनिरावरणरूप शुद्धोपयोग अप्रमत्तविरत गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषाय नामक बारहवे गुणस्थान तक ऊपर ऊपर बढ़ती हुई निर्मलताको लिये हुए होता है।

प्रश्न ८६— इसे एकदेशनिरावरण शुद्धोपयोग क्यो कहते है ?

उत्तर— इन शुद्धोपयोगमे शुद्ध चैतन्यस्वभावस्वरूप निज आत्मा ध्येय रहता है और इसका आलम्बन भी होता है। इस कारण यह उपयोग शुद्धोपयोग तो है, किन्तु केवल ज्ञानरूप शुद्धोपयोगकी तरह शुद्ध नही है, अतः इसे एकदेशनिरावरण शुद्धोपयोग कहते है।

प्रश्न ८७— सर्वदेशनिरावरण अथवा शुद्धोपयोग किन गुणस्थानोमे से होता है ?

उत्तर— सर्वदेशनिरावरण अथवा पूर्ण शुद्धोपयोग सयोगकेवली न अयोगकेवली, इन दो गुणस्थानोमे तथा अतीत गुणस्थानमे पूर्ण शुद्धोपयोग होता है। इस पूर्ण शुद्धोपयोगका कारण एकदेशनिरावरण शुद्धोपयोग है।

प्रश्न ८८— पूर्णशुद्धोपयोगका कारण एकदेशशुद्धोपयोग क्यो है ?

उत्तर— अशुद्धपर्याय वाले आत्माको शुद्ध होना है। अशुद्धके अवलम्बनसे अशुद्धता और शुद्धके अवलम्बनसे शुद्धता प्रकट होती है। यह आत्मा अभी तो शुद्ध है नही, फिर किस के अवलम्बनसे शुद्धता प्रकट हो ? तथ्य यहाँ यह है कि आत्मा स्वभावदृष्टि या द्रव्यदृष्टिसे एक स्वरूप चैतन्यमात्र जाना जाता है। वह स्वभाव न सकषाय है, न अकषाय है, ऐसा स्वभावमात्र शुद्ध है। इस शुद्ध आत्मतत्त्वका जो उपयोग है यह पुरुषार्थ उत्तरोत्तर दृढतासे शुद्ध का उपयोग करता हुआ स्वय शुद्ध उपयोग हो जाता है। वह शुद्ध तत्त्वका उपयोग पूर्ण शुद्धोपयोग तो है नही और अशुद्धोपयोग भी नही, किन्तु शुद्ध तत्त्वका भाव, आलम्बन शुद्धताके के यथायोग्य परिणमनके कारण एकदेशनिरावरण शुद्धोपयोग कहा जाता है।

प्रश्न ८९—मुक्तिका कारण कौनसा उपयोग है ?

उत्तर— मुक्तिका कारण एकदेशनिरावरण शुद्धोपयोग है, क्योकि पूर्ण शुद्धोपयोग तो मुक्तिरूप ही है और अशुभोपयोगरूप मोक्षका कारण नही हो सकता तथा मिथ्यात्वके साथ रहने वाला शुभोपयोग भी शुद्धोपयोगका कारण हो नही सकता। अतः एकदेशनिरावरण शुद्धोपयोग ही मुक्तिका कारण है।

प्रश्न ९०—शुद्धोपयोग साधक शुभोपयोग जो कि चौथे गुणस्थानसे छठे गुणस्थान तक कहा गया है वह मुक्तिका कारण है कि नही ?

उत्तर—इस शुभोपयोगमे शुद्ध आत्मतत्त्वकी प्रतीति तो निरन्तर है और शुद्ध आत्मतत्त्वकी भावना व अवलम्बन भी यथासमय अल्प समयको होती रहती है। अतः यहाँ भी एकदेशनिरावरण शुद्धोपयोग पाया जाता है, किन्तु यहाँ शुद्ध आत्मतत्त्वके अवलम्बनकी स्थिति कदाचित् होनेसे शुभोपयोगकी मुख्यता है। वस्तुतः तो यहा भी रहने वाला एकदेशनिरावरण शुद्धोपयोग और शुद्धात्मतत्त्वकी प्रतीतिरूप शुद्धोपयोग मुक्तिका कारण है।

प्रश्न ९१— साक्षात् मुक्तिका कारण कौनसा उपयोग है ?

उत्तर—उत्कृष्ट एकदेशनिरावरण शुद्धोपयोग मुक्तिका कारण है। उससे पहिलेके समस्त एकदेशनिरावरण शुद्धोपयोग परम्परया मुक्तिके कारण है अथवा उनके पश्चात् ही उत्तरसमय मे होने वाली एकदेश मुक्तिके कारण है।

प्रश्न ९२— तब तो एकदेशनिरावरण शुद्धोपयोग ही उपादेय व ध्येय होना चाहिये ?

उत्तर—एकदेशनिरावरण शुद्धोपयोग क्षायोपशमिक भाव है, वह स्वयं शुद्ध भाव नही है, किन्तु शुद्धाशुद्धरूप है, अपूर्ण है। यह ध्येय अथवा उपादेय नही है। एकदेशनिरावरण शुद्धोपयोगका विषयभूत अखण्ड, सहजनिरावरण परमात्मस्वरूप ध्येय और उपादेय है, खण्डज्ञानरूप यह एकदेशनिरावरण शुद्धोपयोग ध्येय व उपादेय नही है। इस अपूर्ण शुद्धोपयोगके ध्यानसे यह एकदेशनिरावरण शुद्धोपयोग होता भी नही है।

प्रश्न ६३—इस उक्त समस्त वर्णनसे हमे क्या शिक्षा लेनी चाहिये ?

उत्तर—परमशुद्धनिश्चयनयके विषयभूत अखण्ड निजस्वभावकी दृष्टि करके अपने आपकी इस प्रकार स्वरूपाचरण सहित भावना होनी चाहिये— मै सर्व अन्य पदार्थोसे अत्यन्त जुदा हू, अपने ही गुणोमे तन्मय हू, त्रैकालिक चैतन्यस्वभावमय हू, स्वतःसिद्ध हूँ, अनादि शुद्ध हू, सहजसिद्ध हूं, निरजन हूं, ज्ञानानन्दस्वरूप हू इत्यादि।

प्रश्न ६४— आत्माके शुद्धस्वरूपकी भावनाका क्या फल है ?

उत्तर— शुद्ध आत्मतत्त्वकी भावना, आश्रयसे निर्मल पर्याय प्रकट होता है जो कि सहज आनन्दका पुञ्ज है।

प्रश्न ६५— ससार-अवस्थामे आत्मा शुद्ध तो है नही, फिर असत्यकी भावना मोक्ष-मार्ग कैसे हो सकता ?

उत्तर— सामान्य स्वभाव, द्रव्यदृष्टिसे परखा गया स्वभाव आत्मामे अन्त. सदा प्रकाशमान है। वह तो अन्योपयोगसे तिरोभूत हुआ था, किन्तु इस ही के उपयोगमे यह स्वभाव प्रत्यक्ष हो जाता है।

इस प्रकार सवरके लक्षणोका वर्णन करके भावसवरके कारणरूप भावसवरके भेदो को कहते है—

वदसमिदीगुत्तीओ धम्माणुपेहा परीसहजओ य।
चारित्त वहुभेया णायव्वा भावसवरविसेसा ॥३५॥

अन्वय— वदसमिदीगुत्तीओ धम्माणुपेहापरीसहजओ य चारित्त वहुभेया भावसवर विसेसा णायव्वा।

अर्थ— व्रत समिति, गुप्ति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परीषहजय और चारित्र बहुत भेद वाले ये सब भावसंवरके विशेष जानना चाहिये।

प्रश्न १— व्रत किसे कहते है ?

उत्तर—शुद्ध चैतन्यस्वभावमय निज शुद्ध आत्मतत्त्वकी भावनासे शुभ अशुभ समस्त रागादि विकल्पोकी निवृत्ति हो जाना व्रत है।

प्रश्न २— इस व्रतकी साधनाके उपाय क्या है ?

उत्तर— व्रतसाधनके उपायभूत व्यवहारव्रत ५ प्रकारके हैं—(१) अहिंसा, (२) सत्य, (३) अचौर्य, (४) ब्रह्मचर्य, (५) अपरिग्रह ।

प्रश्न ३—अहिंसाव्रत किसे कहते है ?

उत्तर—अपने व परप्राणियोके प्राणोका घात नही करना, पीडा नही पहुंचाना तथा संक्लेश व दुर्भाव नही करना, सो अहिंसाव्रत है ।

प्रश्न ४—सत्यव्रत किसे कहते है ?

उत्तर—स्वपरके अहित करने वाले विपरीत वचन नही बोलना और न ऐसे वचन बोलनेका भाव करना, सो सत्यव्रत है ।

प्रश्न ५ —अचौर्यव्रत किसे कहते है ?

उत्तर— किसीकी अधिकृत वस्तुको उसकी हार्दिक स्वीकृतिके बिना न लेने और किसी भी परपदार्थको अपना न समझनेको अचौर्यव्रत कहते है ।

प्रश्न ६— ब्रह्मचर्यव्रत किसे कहते है ?

उत्तर—मैथुनके परित्याग करने व तद्विषयक सभी प्रकारकी वाञ्छावोके न करनेको ब्रह्मचर्यव्रत कहते है ।

प्रश्न ७—अपरिग्रहव्रत किसे कहते है ?

उत्तर— हिंसाके परिहारके लिये कोमल पीछी, शुद्धिके लिये कमण्डलु व ज्ञानवृद्धिके लिये २-१ पुस्तकके अतिरिक्त किसी भी प्रकारकी वस्तु न रखने और समस्त परपदार्थोमे मूर्च्छा (ममत्व) न करनेको अपरिग्रहव्रत कहते है ।

प्रश्न ८— ये ५ प्रकारके व्रत भावसवरके विशेष क्यो है ?

उत्तर— इन पांच प्रकारके व्रतोके आचरणसे शुद्धोपयोगकी साधना सुगम है, अतः ये भावसवरके विशेष है । (यदि व्रतोके पालनके विकल्प तक ही परिणाम हो तो वह भावसवर नही है, किन्तु शुभ आस्रव है)।

प्रश्न ९— समिति किसे कहते है ?

उत्तर—चैतन्यस्वभावमय निज परमात्मतत्वमे सम् सम्यक् भले प्रकारसे अर्थात् रागादिनिरोधपूर्वक स्वभावलीनतासे पहुचनेको समिति कहते है ।

प्रश्न १०— इस समितिके साधनाके अर्थ व्यावहारिक कर्तव्य क्या है ?

उत्तर— समितिसाधनके उपायभूत व्यवहारसमति ५ है— (१) ईर्यासमिति, (२) भाषासमिति, (३) ऐषणासमिति, (४) आदाननिक्षेपणसमिति और (५) प्रतिष्ठापनासमिति ।

प्रश्न ११— ईर्यासमिति किसे कहते हैं ?

उत्तर—साधूचित कर्मके लिये सूर्यप्रकाशमे चार हाथ आगे जमीन देखते हुए उत्तम भावसहित चलनेको ईर्यासमिति कहते है।

प्रश्न १२– भाषासमिति किसे कहते है ?

उत्तर—हित मित प्रिय वचन बोलनेको भाषासमिति कहते हैं।

प्रश्न १३—ऐषणासमिति किसे कहते है ?

उत्तर-- आत्मचर्याकी साधनाका भाव रखने वाले साधुकी ४६ दोषरहित व १४ मलरहित एव अध कर्म और दोषरहित तथा ३२ अन्तराय टालकर निर्दोष आहार करनेकी चर्याको ऐषणासमिति कहते है।

प्रश्न १४– आहारसम्बन्धी ४६ दोष कौन-कौन होते है।

उत्तर—उद्गमदोष १६, उत्पादनदोष १६, अशनदोष १०, मुक्तिदोष ४, इस प्रकार ४६ दोष आहारसम्बन्धी होते है।

प्रश्न १५– उद्गमदोष कौन-कौन है ?

उत्तर—(१) उद्दिष्ट, (२) साधिक, (३) पूति, (४) मिश्र, (५) प्राभृत, (६) बलि, (७) न्यस्त, (८) प्रादुष्कृत, (९) क्रीत, (१०) प्रामित्य, (११) परिवर्तित, (१२) निषिद्ध, (१३) अभिहृत, (१४) उद्भिन्न, (१५) आच्छेद्य, (१६) आरोह-- ये १६ उद्गमदोष है।

प्रश्न १६– उद्दिष्टदोष किसे कहते है ?

उत्तर– किसी भी वेश वाले गृहस्थो, सर्वं पाखण्डियो, सर्वपार्श्वस्थो या सर्वसाधुवोंके उद्देश्यसे बनाये हुए भोजनको उद्दिष्ट कहते है।

प्रश्न १७—उद्दिष्टमे क्या दोष हो जाता है ?

उत्तर– श्रावककी प्रवृत्ति अतिथिसविभागकी होती है। श्रावक अपने आहारको स्वयं इस प्रकार बनाता है कि वह एक पात्रको दान देकर भोजन किया करे। मुनि इस प्रकार श्रावकके लिये बने हुए भोजनका अधिकारी हो सकता है। इसके विपरीत बने हुए भोजनमे आरम्भ विशेष होनेसे उस उद्दिष्ट भोजनके आहारमे सावद्यका दोष हो जाता है।

प्रश्न १८– साधिक दोष किसे कहते है ?

उत्तर– यदि दाता अपने लिये पकते हुये भोजनमें मुनियोको दान देनेके अभिप्रायसे और अन्नादि डाल देनेको साधिक दोष कहते है अथवा भोजन तैयार होनेमे देर हो तो पूजा या धर्मादिक प्रश्नके छलसे साधुके रोक लेनेको साधिक दोष कहते है।

प्रश्न १९–साधिकमे क्या दोष हो जाता है ?

उत्तर– इस आरम्भमे भी साधुका निमित्त हो जानेका दोष हो जाता है।

प्रश्न २०—पूति दोष किसे कहते है ?

उत्तर-- पूति दोपके दो प्रकार है-- (१) अप्रामुमिश्रण, (२) पूतिकर्मकल्पना। प्रामुक वस्तुमे अप्रामुक वस्तु मिला देनेको अप्रासुमिश्रण कहते है और ऐसी कल्पना करनेको "कि इस बर्तन द्वारा अथवा इस वर्तनमे पके हुए भोजनका या अमुक भोजनका दान जब तक साधुवों को न हो जाय तब तक इसका उपयोग नही किया जाय" पूतिकर्मकल्पना दोप कहते है। इसी तरह चक्की, ओखली, जूता आदिके सम्बन्धमे भी कल्पना करनेको भी पूतिकर्मकल्पना दोप कहते है।

प्रश्न २१– पूतिमे क्या दोप हो जाता है ?

उत्तर—इसमे अप्रामुमिश्रणमे तो हिसाका दोप तथा पूतिकर्मकल्पनामे साधुके निमित्त के सम्बन्धका दोप हो जाता है।

प्रश्न २२—मिश्रदोप किसे कहने हैं ?

उत्तर– प्रासुक भी आहार हो तो भी यदि पाखडियो और ग्रहस्थोके साथ साथ साधुवो को देनेकी बुद्धिसे बनाया हुआ भोजन हो तो उसे मिश्रदोप सहित कहते हैं।

प्रश्न २३—इस मिश्रमे क्या दोप हो जाता है ?

उत्तर— इसमे असयमियोसे स्पर्श, दीनता व अनादर आदि होनेका दोष हो जाता है।

प्रश्न २४—प्राभृत दोष किसे कहते है ?

उत्तर—प्राभृत दोप दो प्रकारके होते हैं– एक तो वादरप्राभृत और दूसरा सूक्ष्मप्राभृत।

ऐसा सकल्प करके कि मैं अमुक माह आदिकी अमुक तिथिको अतिथिसविभागव्रत पालूगा, फिर उस तिथिके बदले पहिले या बादमे दान देना, सो वादरप्राभृत दोष है।

ऐसा सकल्प करके कि दिनके पूर्वभागमे उत्तरभागमे पात्र दान करूगा, फिर उस समयके बाद या पहिले पात्र दान करना सूक्ष्मप्राभृत दोप है।

प्रश्न २५—प्राभृतदोषमे क्या दोप हो जाता है ?

उत्तर– इस वृद्धि हानिसे परिणामोकी सक्लेशता उत्पन्न हो जाती है।

प्रश्न २६– बलिदोष किसे कहते है ?

उत्तर– यक्ष पित्रादि देवताके लिये बनाये हुये आहारमे से बचा हुआ आहार यतियो को देना बलिदोष है तथा बचे हुये अर्घ्य जलादिकसे यतियोकी पूजा करना बलिदोष है।

प्रश्न २७—बलिदोपमे किस दोपकी सिद्धि है।

उत्तर– इसमे सावद्य दोषकी सिद्धि है।

प्रश्न २८—न्यस्त दोष किसे कहते है ?

उत्तर– जिस बर्तनमे भोजन बनाया गया हो, उसमेसे निकालकर कटोरी आदिमे

रखकर अपने घर या परगृह कहीं रख देनेको न्यस्त दोप कहते है।

प्रश्न २६– न्यस्तमे क्या दोष हो जाता है ?

उत्तर– इसमे दो दोष हो जाते है-- एक तो नया आरम्भ हुआ और फिर उसमे से यदि कोई दूसरा दातार उसको दे तो उसमे गडबडी भी हो सकती है।

प्रश्न ३०– प्रादुष्कृत दोष किसे कहते है ?

उत्तर—प्रादुष्कृत दोप दो प्रकारसे होता है– (१) सक्रम, (२) प्रकाश। साधुके घर आ जानेपर भोजनके पात्र आदिको एक जगहसे दूसरी जगह ले जाना, सो संक्रम प्रादुष्कृत है।

साधुके घर आ जानेपर किवाड मडप आदि दूर करना, भस्म या जलादिकसे बर्तनादिको साफ करना, दीपक जलाना आदि प्रकाश दोप है।

प्रश्न ३१– प्रादुष्कृतमे दोप किस कारणसे है ?

उत्तर—इसमे नैमित्तिक आरम्भ व ईर्यापथादिकमे हानिका दोष आता है।

प्रश्त ३२—क्रीत दोष किसे कहते है ?

उत्तर– जब साधु भिक्षाके अर्थ घर आवे तब गौ आदिक सचित्त द्रव्य या सुवर्ण चाँदी आदि अचित्त द्रव्य देकर भोजन लाया जावे, उसे क्रीत दोप कहते है।

प्रश्न ३३—क्रीत दोपमे क्या हानि होती है ?

उत्तर– इसमे नैमित्तिक आरम्भ व विकल्पोका बाहुल्य होता है।

प्रश्न ३४– प्रामित्य दोष किसे कहते है ?

उत्तर– प्रामित्य दोष दो प्रकारका होता है– (१) वृद्धिमत् और (२) अवृद्धिमत्। ब्याजपर उधार लाये हुये अन्नको वृद्धिमत् प्रामित्य कहते है और बिना ब्याजके उधार लाये अन्नको अवृद्धिमत् प्रामित्य कहते है। इन दोनो प्रकारके प्रामित्यके आहार देनेको प्रामित्य दोष कहते है।

प्रश्न ३५– प्रामित्यके आहारमे क्या दोष हुआ ?

उत्तर–उधार लाने और उसके चुकानेमे दाताको अनेक कष्ट उठाने पडते है, ऐसा कष्टसाध्य आहार माधुरीकी वृत्ति वाले साधुके अयोग्य है। ऐसा आहार करनेमें अदयाका दोष उत्पन्न होता है।

प्रश्न ३६-- परिवर्तित दोष किसे कहते है ?

उत्तर– भिक्षार्थ साधुके आनेपर किसीने किसी भोज्य पदार्थके बदलेमे कोई अन्य भोज्य पदार्थ लेनेको परिवर्तित दोप कहते है।

प्रश्न ३७– परिवर्तित आहारमे क्या दोप हो जाता है ?

उत्तर— इसमे भी दाताको सक्लेश होता है, अतः उस आहारमे भी अदयाका दोष उत्पन्न हो जाता है।

प्रश्न ३८— निषिद्ध दोष किसे कहते है ?

उत्तर— कोई चीज किसीके मना करनेपर भी साधुवोंको आहारके लिये दी जावे तो उसे निषिद्ध दोष कहते है। निषेधकोंके भेदसे इसके ६ भेद हो जाते है। निषेधक ६ प्रकारके ये है– (१) व्यक्त ईश्वर, (२) अव्यक्त ईश्वर, (३) उभय ईश्वर, (४) व्यक्त अनीश्वर, (५) अव्यक्त अनीश्वर, (६) उभय अनीश्वर। निरपेक्ष अधिकारीको व्यक्तईश्वर व सापेक्ष अधिकारीको अव्यक्तईश्वर व सापेक्ष निरपेक्ष अधिकारीको या संयुक्त व्यक्तियोंको उभयईश्वर कहते है। इसी प्रकार अनीश्वर (अनधिकारी) याने नौकर आदिमे भी लगाना।

प्रश्न ३९— निषिद्धमे क्या दोष आता है ?

उत्तर— दीनता, अशिष्टता आदि अनेक दोष आते है।

प्रश्न ४०— अभिहृत दोष किसे कहते है ?

उत्तर— लाइनमे स्थित सात मकानोंको (एक दाताका व तीन एक ओरके व तीन दूसरी ओरके) छोडकर बाकी अन्य किसी स्थानसे चाहे मौहल्ला हो या गाँव हो या परगाँव या परदेश, आये भोज्य पदार्थोंको अभिहृत कहते है। अभिहृत पदार्थोंके आहारको अभिहृत दोष कहते है।

प्रश्न ४१— अभिहृत आहारमे क्या दोष आता है ?

उत्तर— इसमे ईर्यापथशुद्धि नहीं हो सकती है, अतः जीवहिंसाका दोष आता है।

प्रश्न ४२— उद्भिन्न दोष किसे कहते है ?

उत्तर— घी, गुड़, किशमिश आदि कोई वस्तु किसी डिब्बे आदिमे पैक हो, डिब्बेका मुख मिट्टी आदिसे बन्द हो या सील, मोहर लगी हो उसे खोलकर उस चीजके देनेको उद्भिन्न दोष कहते है।

प्रश्न ४३— उद्भिन्न आहारमे क्या दोष है ?

उत्तर— इसमे जीवदयाकी सावधानी नही हो सकती व तुरन्त खोलकर देनेमे उस वस्तुका शोधन भी ठीक नही हो सकता, चींटी आदिका प्रवेश हो तो उसका वारण कठिन है।

प्रश्न ४४— आच्छेद्य दोष किसे कहते है ?

उत्तर— राजा, मंत्री आदि बडे पुरुषोंके भयसे श्रावक आहारदान करे तो उसे आच्छेद्य दोष कहते।

प्रश्न ४५— आच्छेद्यमे क्या दोष होता है ?

उत्तर— जबरदस्ती बिना अनुरागका भोजन लिये जानेका दोष आता है, यह गृहस्थके

संक्लेशका कारण है।

प्रश्न ४६—मालारोहण दोष किसे कहते है ?

उत्तर—सीढी अथवा नसैनी पर चढकर अटारी वगैरह ऊपरके खण्डसे भोज्य पदार्थ लाकर साधुओको देनेको मालारोहण दोष कहते है।

प्रश्न ४७— मालारोहणमे क्या दोष हो जाता है ?

उत्तर— इसमे ईर्यापथशुद्धि नही रहती व गृहस्थके विक्षेप होता है, उसके गिरने तक की भी संभावना रहती है। इसमे अदयाका दोष होता है।

प्रश्न ४८— उक्त १६ उद्गमदोप किसकी चेष्टाके निमित्तसे होते है ?

उत्तर— उक्त १६ उद्गमदोष दातार श्रावककी चेष्टाके निमित्तसे होते है। दातार श्रावकको चाहिये कि ये १६ उद्गमदोषको टालकर साधुको आहार देवे। यदि साधुको मालूम हो जावे कि दातारने इन १६ उद्गमदोपोमे से कोई दोष किया है तो साधु उस आहारको नही लेते है।

प्रश्न ४९— उद्गम शब्दका निरुक्त्यर्थ क्या है ?

उत्तर—उत् = उन्मार्ग, गम = गमन कराये याने ले जाये, जो उन्मार्गकी ओर ले जाय उसे उद्गग कहते है। तात्पर्य— जिन क्रियाओके द्वारा भोज्य द्रव्य उन्मार्ग अर्थात् आगमकी आज्ञाके विरुद्ध याने रत्नत्रयका घातक सिद्ध हो, ऐसी दाताकी क्रियाओको उद्गमदोष कहते है।

प्रश्न ५०— उत्पादन दोष १६ कौन कौनसे है ?

उत्तर— उत्पादन दोष ये है— (१) धात्रीदोप, (२) दूतदोष, (३) निमित्तदोष, (४) वनीपकवचनदोप, (५) आजीवदोप, (६) क्रोधदोष, (७) मानदोप, (८) मायादोप, (९) लोभदोष, (१०) पूर्वस्तुतिदोष, (११) पश्चात्स्तुतिदोप, (१२) वैद्यकदोष, (१३) विद्या-दोष, (१४) मन्त्रदोष, (१५) चूर्णदोष, (१६) वशदोष।

प्रश्न ५१— धात्रीदोप किसे कहते है ?

उत्तर—पाँच प्रकारकी धात्रियोमे से किसी भी धात्री जैसा गृहस्थके बालकके प्रति प्रयोग करके या प्रयोग कराकर अथवा उपदेश देकर इस कारणसे अनुरक्त गृहस्थके द्वारा दिये हुये भोजनको ग्रहण करना धात्रीदोप है।

प्रश्न ५२—धात्रीदोपमे दोष क्या आया ?

उत्तर—इसमे साधुका यह अभिप्राय रहता है कि इस रीतिसे गृहस्थ भोजन देनेको अथवा उत्तम भोजन देनेको उत्साहित होगा। यह अभिप्राय साधुतामे बडा दोषरूप है।

प्रश्न ५३— पाँच प्रकारकी धात्री कौन-कौन है ?

उत्तर– धात्रीके पांच भेद ये है—(१) मार्जनधात्री, (२) क्रीडनधात्री, (३) मडनधात्री, (४) क्षीरधात्री, (५) स्वापनधात्री, ।

प्रश्न ५४—मार्जनधात्री, किसे कहते है ?

उत्तर– जो बालकको स्नान करानेका कार्य करके बालकका पोषण करे उसे मार्जन-धात्री कहते है ।

प्रश्न ५५– क्रीडनधात्री किसे कहते है ?

उत्तर– जो बालकको नाना प्रकारसे क्रीडा करावे उसे क्रीडनधात्री कहते है ।

प्रश्न ५६– मडनधात्री किसे कहते है ?

उत्तर– जो बालकको यथोचित भूषण आभूषण द्वारा अलकृत करे उसे मडनधात्री कहते है ।

प्रश्न ५७—क्षीरधात्री किसे कहते है ?

उत्तर– जो बालकको दूध पिलाकर पुष्ट करे उसे क्षीरधात्री कहते है ।

प्रश्न ५८– स्वापनधात्री किसे कहते है ?

उत्तर—जो बालकको सुलानेकी सेवा करे उसे स्वापनधात्री कहते है ।

प्रश्न ५९– दूतदोष किसे कहते है ?

उत्तर—सम्बन्धी पुरुषोका सन्देश ले जाकर, कहकर सतुष्ट किये गये दाताके द्वारा दिये हुये भोजनका लेना सो दूतदोष है ।

प्रश्न ६०—इसमे क्या दोष आता है ?

उत्तर—इस दूतदोष नामका दूसरे उत्पादन दोषमे साधुके इस उपायसे भोजन उपा-र्जन करनेका भाव रहता है व जिनशासनमे दूषण लगता है ।

प्रश्न ६१– निमित्तदोष किसे कहते है ?

उत्तर—अष्टागनिमित्तके ज्ञानको बताकर व उसके फलको बताकर सतुष्ट किये गये दाताके द्वारा दिये गये आहारके करनेको निमित्तदोष कहते है ।

प्रश्न ६२– भविष्यफलके निर्देशक निमित्तके आठ अङ्ग कौनसे है ?

उत्तर—भविष्यफलके निर्देशक निमित्तके आठ अग ये हैं—(१) व्यञ्जन, (२) अग, (३) स्वर, (४) छिन्न, (५) भौम, (६) अन्तरिक्ष, (७) लक्षण और (८) स्वप्न ।

प्रश्न ६३—व्यञ्जन निमित्त किसे कहते है ?

उत्तर—शरीरके किसी अगमे तिल, मस्सा, लहसन आदि व्यजन देखकर उससे शुभ तथा अशुभ फल जाननेको व्यजन निमित्त कहते है ।

प्रश्न ६४—अगनामक निमित्त किसे कहते है ?

उत्तर– मस्तक, गला, हाथ, पैर, पेट, अंगुली आदि शरीरके अंगोको देखकर मनुष्य का शुभ अशुभ जाननेको अगनिमित्त कहते है।

प्रश्न ६५-- स्वरनिमित्त किसे कहते है ?

उत्तर-- मनुष्य, तिर्यञ्च या अचेतनवस्तुके शब्द मुनकर त्रिकाल सम्बन्धी शुभ अशुभ जाननेको स्वरनिमित्त कहते है।

प्रश्न ६६– भौमनिमित्त किसे कहते है ?

उत्तर-- भूमिका रूखापन, चिकनापन आदि देखकर भूमिके अन्दर पानी निधि आदि को जान लेने व शुभ, अशुभ, जीत, हार जान लेनेको भौमनिमित्त कहते है।

प्रश्न ६७– अन्तरिक्षनिमित्त किसे कहते है ?

उत्तर—सूर्य चन्द्र आदिके ग्रहण व ग्रहोके उदय, अस्त व उल्कापात आदि देखकर त्रिकाल सम्बन्धी शुभ अशुभके जाननेको अन्तरिक्षनिमित्त कहते है।

पश्न ६८– लक्षणनिमित्त किसे कहते है ?

उत्तर– हथेली आदि शरीरके अवयवोमे कमल, चक्र, मीन, कलश आदि चिन्होको देखकर शुभ अशुभ जाननेको लक्षणनिमित्त कहते है।

प्रश्न ६९—स्वप्ननिमित्त किसे कहते है ?

उत्तर– शुभ अशुभ स्वप्नोके अनुसार शुभ अशुभ फल जाननेको स्वप्ननिमित्त कहते है।

प्रश्न ७०—निमित्तदोषमे क्या दोष आता है ?

उत्तर—निमित्त नामक उपादान दोषमे रसास्वादन, दीनता आदि दोप है।

प्रश्न ७१– वनीपकवचनदोष किसे कहते है ?

उत्तर—भोजनादि ग्रहण करनेके अभिप्रायसे वनीपक (याचक) की तरह दाताके अनुकूल वचन बोलकर आहार ग्रहण करनेको वनीपकवचनदोप कहते है। जैसे कोई दाता पूछे कि कुत्ता, कौवा, मासभोगी ब्राह्मण इत्यादिको दान देनेमे पुण्य है या नही, तब उत्तर देना "हां हे" आदि।

प्रश्न ७२– वनीपकवचनदोषमे क्या दोप आता है ?

उत्तर– वनीपकवचनमे दीनताका दोष आता है।

प्रश्न ७३—आजीव दोप किसे कहते है ?

उत्तर– अपनी जाति, कुलकी शुद्धता प्रकट करके अपनी कला, चतुरता प्रकट करके यन्त्र-मन्त्र करके लोकोके द्वारा आहार उपार्जित करनेको आजीव दोप कहते है।

प्रश्न ७४—आजीवकर्ममे क्या दोप आता है ?

उत्तर—इसमें दीनता, लिप्सा, कल्याणमार्गमे प्रमाद आदि दोष आते है ।

प्रश्न ७५– क्रोधदोष किसे कहते है ?

उत्तर—क्रुद्ध होकर भोजनादि प्रबन्ध कराने व ग्रहण करनेको क्रोधदोष कहते है ।

प्रश्न ७६– इसमे क्या दोष आता है ?

उत्तर-- सयमकी हानि, उन्मार्गका प्रसार आदि दोष आते है ।

प्रश्न ७७– मानदोष किसे कहते है ?

उत्तर– अभिमानके वश होकर आहार ग्रहण करनेको मानदोष कहते है ।

प्रश्न ७८-- इसमे क्या दोष आता है ?

उत्तर—रसगौरव, सयमहानि, उन्मार्ग आदि दोष आते है ।

प्रश्न ७९-- मायादोष किसे कहते है ?

उत्तर– मायाचार, छल, कपट सहित भोजनादि ग्रहण करनेको मायादोष कहते है ।

प्रश्न ८०-- इसमे क्या दोष आता है ?

उत्तर-- सम्यक्त्वहानि, सयमहानिके दोष मायादोषमे उत्पन्न हो जाते है ।

प्रश्न ८१-- लोभदोष किसे कहते है ?

उत्तर– क्षुब्ध परिणामोसे आहारादि ग्रहण करनेको लोभदोष कहते है ।

प्रश्न ८२-- इस दोषसे क्या अनर्थ होता है ?

उत्तर-- लोभदोषसे मूल गुणमे हानि, स्वभावदृष्टिकी अयोग्यता हो जानेके अनर्थ हो जाते है ।

प्रश्न ८३-- पूर्वस्तुतिदोष किसे कहते है ?

उत्तर—दातारकी पहिले प्रशसा करके अपनी ओर आकर्षित कर दातारसे भोजनादि ग्रहण करनेको पूर्वस्तुतिदोष कहते है ।

प्रश्न ८४-- इस दोषसे क्या अनर्थ होता है ?

उत्तर-- इसमे परमुखापेक्षा, कृपणता, आत्मगौरवनाश आदि अनर्थ होते है ।

प्रश्न ८५-- पश्चात्स्तुतिदोष किसे कहते है ?

उत्तर-- आहार ग्रहण करनेके बाद दाताकी प्रशसा स्तुति करना, सो पश्चात्स्तुति नामक दोष है ।

प्रश्न ८६- इस दोषसे क्या अनर्थ है ?

उत्तर-- आगे भी भोजन प्रबन्ध हमारा अच्छा रहे, इस अभिप्रायसे यह दोष होता है । इससे निदान, कृपणता, आत्मगौरवनाश आदि अनर्थ होते है ।

प्रश्न ८७-- चिकित्सादोष किसे कहते है ?

उत्तर-- आठ प्रकारकी चिकित्सामे से एक या अनेक चिकित्साके द्वारा उपकार करके या उनका उपदेश करके आहारादि लेनेको चिकित्सादोष कहते है। चिकित्साये ८ ये है-- (१) बालचिकित्सा, (२) अङ्गचिकित्सा, (३) रसायनचिकित्सा, (४) विषचिकित्सा, (५) भूतापनदन, (६) क्षारतन्त्र (७) शलाकाचिकित्सा, (८) शल्यचिकित्सा।

प्रश्न ८८—चिकित्साकर्ममे क्या दोष होता है ?

उत्तर— चिकित्सावो करि भोजन करनेमे सावद्यादि अनेक दोष होते है।

प्रश्न ८९-- विद्यादोष किसे कहते है ?

उत्तर-- होम जप आदि द्वारा साधित विद्यावोको बुलाकर उनसे प्राप्त हुई आहार औषधि ग्रहण करनेको अथवा दातारको विद्या देनेकी आशा देकर आहारादि ग्रहण करनेको विद्योत्पादन दोष कहते है।

प्रश्न ९०—इसमे क्या दोष आता है ?

उत्तर-- विद्यादोषमे स्वरूपकी असावधानी, आत्मविश्वासका अभाव आदि दोष आते है।

प्रश्न ९१—मन्त्रदोष किसे कहते है ?

उत्तर—गुरुमुखसे अध्ययन किये हुये और सिद्ध हुये मन्त्रसे देवताका आमन्त्रण करके उनसे सम्पन्न हुए आहार ग्रहण करनेको अथवा सुखदायक मन्त्रकी आशा देकर दातारसे आहार ग्रहण करनेको मन्त्रदोष कहते है।

प्रश्न ९२-- इसमे क्या दोष है ?

उत्तर-- विद्यादोषकी तरह इसमे भी अनेक दोष है।

प्रश्न ९३-- चूर्णदोष किसे कहते है ?

उत्तर-- दातारके लिये भूषाचूर्ण व अञ्जनचूर्णको सम्पादित करके उसके यहां आहार ग्रहण करनेको चूर्णदोष कहते है।

प्रश्न ९४— इसमे क्या दोष होता है ?

उत्तर— आजीविकावत् आरम्भका दोष इसमे होता है।

प्रश्न ९५-- वशदोष किसे कहते है ?

उत्तर-- जो जिसके वशमे न हो उसे वशमे करनेका उपाय बताकर या वैसी योजना कर या परस्पर वियुक्त हुये स्त्री पुरुषोका मेल कराकर या उपाय बताकर भोजन ग्रहण करनेको वशदोष कहते है।

प्रश्न ९६— इस दोषमे क्या अनर्थ है ?

उत्तर— निर्दयता, पीडोत्पादन, रागवृद्धि, लज्जाकर्म, ब्रह्मचर्यके अतिचार आदि अनेक

अनर्थ इस दोषसे उत्पन्न होते है।

प्रश्न ९७– उत्पादनदोषका निरुक्त्यर्थ क्या है?

उत्तर– जिनमार्ग विरुद्ध क्रियावों द्वारा भोजन उत्पन्न कराया जाय उन क्रियाओको उत्पादनदोष कहते है।

प्रश्न ९८— उत्पादनदोप किसके आश्रित होते है?

उत्तर—उत्पादनदोप साधु पात्रके आश्रित होते है, क्योकि ये दोप साधुके शिथिल भाव और क्रियाओसे उत्पन्न होते है।

प्रश्न ९९-- अशनदोप किसे कहते है?

उत्तर—भोज्य पदार्थसे सम्बन्ध रखने वाले दोपोंको अशनदोप कहते है।

प्रश्न १००— अशनदोपके भेद कौन-कौन है?

उत्तर—शङ्कित, पिहित, म्रक्षित, निक्षिप्त, छोटित, अपरिणत, व्यवहरण, दायक, लिप्त और विमिश्र, ये दस दोष अशनसम्बन्धी है।

प्रश्न १०१– शङ्कितदोष किसे कहते है?

उत्तर– चार प्रकारके अशनमे कोई ऐसी शका उत्पन्न हो जाय कि वह आहार आगममे लेने योग्य बताया या नही अथवा यह आहार शुद्ध भक्ष्य है या नही, ऐसे शकासहित भोजनके करनेको शङ्कितदोष कहते है।

प्रश्न १०२– पिहितदोप किसे कहते है?

उत्तर– अप्रासुक वस्तु या वजनदार प्रासुक वस्तुसे ढके हुए जिस भोजनको उघाड कर दिया जावे उस भोजनके ग्रहण करनेको पिहितदोष कहते है।

प्रश्न १०३—म्रक्षितदोप किसे कहते है?

उत्तर—घी, तेल आदिके द्वारा सचिक्करण हुए हाथ या चम्मच कटोरी आदिसे दिये गये आहारके ग्रहण करनेको म्रक्षितदोष कहते है।

प्रश्न १०४—निक्षिप्त नामक अशनदोप किसे कहते है?

उत्तर—जो भोजन वस्तु सचित्तत पृथ्वी, जल, अग्नि, बीजरहित और त्रस जीवपर रखी हो उस पदार्थके ग्रहण करनेको निक्षिप्तदोप कहते हैं।

प्रश्न १०५– छोटित नामक अशनदोप किसे कहते है?

उत्तर—कुछ भोज्यसामग्रीको गिराकर कुछके ग्रहण करनेको, अनिष्ट आहार छोडकर इष्ट आहारके ग्रहण करनेको, जिससे भोज्यसामग्री टपकती रहे, ऐसे हाथसे आहारके ग्रहण करनेको छोटितदोप कहते है।

प्रश्न १०६—अपरिणत नामक अशनदोप किसे कहते है?

उत्तर—जिसका वर्ण, गन्ध, रस न पलटा हो, ऐसे चूर्णमिश्रित जलको चने, चावल आदिके धोवनके जलको ग्रहण करना, सो अपरिणत दोष है ।

प्रश्न १०७—व्यवहरण नामक अशनदोष किसे कहते है ?

उत्तर– दातार अपने लटके हुये वस्त्रको यत्नाचाररहित खीचकर व वर्तन, चौकी आदिको घसीटकर और भी यत्नाचार रहित होकर आहार देवे उस आहारके ग्रहण करनेको व्यवहरणदोष कहते है ।

प्रश्न १०८—दायकदोष नामक अशनदोष किसे कहते है ?

उत्तर—जिनका दिया हुआ आहार साधुको ग्रहण करना योग्य नही उनके दिये हुए आहारके ग्रहण करनेको दायकदोष कहते हैं । अयोग्य दायक ये है—मद्यपायी, रोगपीड़ित, पिशाचमूर्च्छित, रजस्वला, बच्चेका प्रसव करने वाली (४० दिन तक), वमन करके आया हुआ, शरीरमे तेल लगा रखने वाला, भीतकी आडमे स्थित, पात्रके स्थानसे नीचे या ऊँचे प्रदेशपर स्थित, नपुसक, जातिच्युत, पतित, मूत्रक्षेपण करके आया हो, नग्न, वेश्या, सन्यास-लिंगधारण करने वाली, अति बाला (८ वर्षसे कम), वृद्धा, गर्भिणी (५ माससे ऊपर गर्भ वाली), खाती हुई, अन्धा, बैठी हुई, अग्नि जलाने वाला, अग्नि बुझाने वाला, अग्निको भस्म से ढाकने वाला, अग्नि घिट्टने वाला, मकान लीपने वाला, एक वस्त्रधारी, दूध पीते बच्चेको छोडकर आने वाली, बच्चोको नहलाने वाली आदि दातार पात्रदानके अयोग्य है ।

उक्त दातारोमे कोई विशेषण तो केवल स्त्रियोमे घटित होते है, कोई विशेषण स्त्री-पुरुष दोनोमे घटित होते है, इसलिये शब्दलिगपर ध्यान देकर यथासभव स्त्री-पुरुषोमे विशेषण लगा लेना चाहिये ।

प्रश्न १०९—लिप्त नामक अशनदोष किसे कहते है ?

उत्तर—गेरु, खडिया, आटा, हरित, अप्रासुक जल आदिसे भीगे हुए हाथ या वर्तन द्वारा भोजनके ग्रहण करनेको लिप्तदोष कहते है ।

प्रश्न ११०– विमिश्रदोप नामक अशनदोष किसे कहते है ?

उत्तर– जिस भोजनमे सचित्त पृथ्वी, जल, बीज, हरित और जीवित त्रस मिले हुए हो उस भोजनको विमिश्रदोषसे दूषित कहा है ।

प्रश्न १११– भुक्तिदोष ४ कौन-कौनसे है ?

उत्तर—(१) अगार, (२) धूम्र, (३) संयोजना और (४) अतिमात्र, ये चार महा-दोप है ।

प्रश्न ११२– अगार नामक भुक्तिदोप किसे कहते है ?

उत्तर– यह वस्तु अच्छी है, स्वादिष्ट है, कुछ और मिले, इस प्रकार अत्यासक्ति

भावपूर्वक भोजन करनेको अगारदोष कहते है ।

प्रश्न ११३—धूमदोप नामक भुक्तिदोष किसे कहते है ?

उत्तर—यह वस्तु अच्छी नही बनी, अनिष्ट है, इस प्रकार ग्लानि करते हुए भोजन करनेको धूमदोप कहते है ।

प्रश्न ११४—सयोजना नामक भुक्तिदोप किसे कहते है ?

उत्तर—गर्म और ठडा, चिकना और रूखा अथवा आयुर्वेदमे बताये गये परस्पर विरुद्ध पदार्थोको मिलाकर खाना सो सयोजना नामक दोप है ।

प्रश्न ११५—अतिमात्र नामक भुक्तिदोप किसे कहते है ?

उत्तर—भोजनका जो परिमाण बताया गया है उसका उल्लघन करके उस परिमाण से अधिक आहार करनेको अतिमात्र नामक भुक्तिदोप कहते है ।

प्रश्न ११६—आहारका परिमाण क्या है ?

उत्तर– उदरके दो भाग याने भूखके २ भाग अर्थात् आधे भागको भोजनसे पूर्ण करना चाहिये और एक भागको जलसे पूर्ण करना चाहिये और एक भागको खाली रखना चाहिये ।

प्रश्न ११७– मलदोप किसे कहते है ?

उत्तर– जिनसे छू जानेपर, मिल जानेपर आहार ग्रहण करनेके योग्य न रहे उसे मल कहते है और मलके दोषको मलदोष कहते है ।

प्रश्न ११८—मल कौन-कौनसे है ?

उत्तर-- (१) पूय याने पीव, (२) रुधिर, (३) मांस, (४) हड्डी, (५) चर्म, (६) नख, (७) केश, (८) मृतविकलत्रय याने मरा हुआ द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जीव, (९) सूरण आदि कन्द, (१०) जिसमे अकुर होने वाला हो ऐसा बीज, (११) मूली, अदरख आदि मूल, (१२) बेर आदि तुच्छ फल, (१३) कण और (१४) भीतर कच्चा व बाहर पक्का ऐसा चावल आदि कुण्ड ।

प्रश्न ११९-- उक्त १४ मलोमे से किस मलस्पर्शसे कितना दोष होता है ?

उत्तर– पीव, रुधिर, मास, हड्डी और चर्म, इनसे ससक्त आहार जब प्रतीत हो तब आहार नो छोड ही देवे और विधिवत् प्रायश्चित भी ग्रहण करे ।

नखसे ससक्त आहार हो तो आहारको छोड देवे तथा किंचित् प्रायश्चित भी करे ।

यदि केश या मृत विकलत्रयसे ससक्त आहार हो तो उस आहारको छोड देवे ।

यदि कन्द, बीज, मूल, फल, कण और इनसे सस्पृष्ट आहार हो तो इन्हे निकालकर दूर कर देवे । कदाचित् इनका अलग करना अशक्य हो तो उस आहारको छोड़ देना चाहिये ।

प्रश्न १२० —भोजन सम्बन्धी अन्तराय किसे कहते है ?

उत्तर-- जिनके निमित्तसे साधुजन आहारका त्याग कर देते है उन्हे अन्तराय कहते है।

प्रश्न १२१-- अन्तराय कौन-कौन है ?

उत्तर — (१) काक, (२) अमेध्य, (३) छर्दि, (४) रोधन, (५) रुधिर, (६) अश्रुपात, (७) जान्वध परामर्श, (८) जानूपरिव्यतिक्रम, (९) नाभ्यधोनिर्गमन, (१०) प्रत्याख्यात सेवन, (११) जन्तुवध, (१२) काकादिपिण्डहरण, (१३) पाणिपिण्डपतन, (१४) पाणिजन्तुवध, (१५) मांसादिदर्शन, (१६) उपसर्ग, (१७) पादान्तरापञ्चेन्द्रियागमन, (१८) भाजनसपात, (१९) उच्चार, (२०) प्रस्रवण, (२१) अभोज्यगृहप्रवेश, (२२) पतन, (२३) उपवेशन, (२४) सदश, (२५) भूमिस्पर्श, (२६) निष्ठीवन, (२७) उदरक्रिमिनिर्गम, (२८) अदत्तग्रहण, (२९) प्रहार, (३०) ग्रामदाह, (३१) पादग्रहण, (३२) करग्रहण।

प्रश्न १२२—काक नामक अन्तराय किसे कहते है ?

उत्तर— आहारार्थ चर्यामे या आहारके समय साधुके शरीरपर कोई कौवा, कुत्ता आदि जानवर मलोत्सर्ग कर दे तो काक नामक अन्तराय हो जाता है।

प्रश्न १२३—अमेध्य अतराय किसे कहते है ?

उत्तर—आहारार्थ जाते हुए अथवा खडे हुए साधुके यदि किसी प्रकार पैर, घुटने, जाघो आदि किसी भी अङ्गमे विष्टा आदि अशुचि पदार्थका स्पर्श हो जावे तो अमेध्य नामक अन्तराय होता है।

प्रश्न १२४— छर्दि नामक अन्तराय किसे कहते है ?

उत्तर— यदि किसी कारण साधुको स्वय वमन हो जाय तो उसे छर्दि नामक अतराय कहते है।

प्रश्न १२५— रोधन नामक अन्तराय किसे कहते है ?

उत्तर—आज भोजन मत करना, इस प्रकार किसीके रोक देनेको रोधन अन्तराय कहते है।

प्रश्न १२६— रुधिर नामक अन्तराय कब होता है ?

उत्तर —अपने या परके शरीरसे चार अगुल या और अधिक तक रुधिर, पीव आदि साधु देख ले तब रुधिर नामक अन्तराय होता है।

प्रश्न १२७—अश्रुपात अन्तराय किसे कहते है ?

उत्तर— शोकसे अपने अश्रु बह जानेको या किसीके मरने आदिके कारणसे किसीका आक्रन्दन (जोरका रोना) सुनाई पड़नेको अश्रुपात अन्तराय कहते है।

प्रश्न १२८—जान्वध.परामर्श अन्तराय किसे कहते है ?

उत्तर– सिद्ध भक्तिके अनन्तर अपनी जानु (घुटने) के नीचे भागका हाथसे स्पर्श हो जानेको जान्वध.पात अन्तराय कहते है ।

प्रश्न १२९—जानूपरिव्यतिक्रम अन्तराय कब होता है ?

उत्तर– घुटने तक ऊचे या इससे अधिक ऊचे पर लगे हुए अर्गल, पाषाण आदिको लांघकर जानेमे जानूपरिव्यतिक्रम अन्तराय होता है ।

प्रश्न १३०—नाभ्यधोनिर्गम अन्तराय किसे कहते है ?

उत्तर– यदि अपने शरीरको नाभिसे नीचे करके किसी द्वार आदिसे निकलना पडे तो उसे नाभ्यधोनिर्गम अन्तराय कहते है ।

प्रश्न १३१– प्रत्याख्यातसेवन नामक अन्तराय किसे कहते है ?

उत्तर– त्याग किया हुआ पदार्थ यदि खानेमे आ जाय तो उसे प्रत्याख्यातसेवन नामक अन्तराय कहते है ?

प्रश्न १३२—जन्तुवधनामक अन्तराय क्या है ?

उत्तर—यदि अपने ही (साधुके) सन्मुख कोई चूहे, बिल्ली, कुत्ते आदि जीवोका घात करे तो उसे जन्तुबध नामक अन्तराय कहते है ?

प्रश्न १३३–काकादिपिण्डहरण अन्तराय किसे कहते है ?

उत्तर—काक, चील आदि जानवरके द्वारा हाथपरसे ग्रासके ले जानेको या छूनेको काकादिपिण्डहरण अन्तराय कहते है ।

प्रश्न १३४– पाणिपिण्डपतन अन्तराय किसे कहते है ?

उत्तर– भोजन करते हुए साधुके हाथसे ग्रासके गिर जानेको पाणिपिण्डपतन अन्तराय कहते है ।

प्रश्न १३५– पाणिजन्तुबध अन्तराय किसे कहते है ?

उत्तर—भोजन करते हुए साधुके हाथपर कोई जीव स्वय आकर मर जावे तो उसे पाणिजन्तुबध अन्तराय कहते है ।

प्रश्न १३६– मासदर्शनादि अन्तराय कब होता है ?

उत्तर—भोजन करते हुये साधुको मास, मद्य आदि दिख जावें तो मासदर्शनादि नामक अन्तराय होता है ।

प्रश्न १३७– उपसर्ग नामक अन्तराय क्या होता है ?

उत्तर—भोजन करते समय यदि देव, मनुष्य या तिर्यञ्च किसीके द्वारा उत्पात हो तो वह उपसर्ग नामक अन्तराय होता है ।

न हो, समिति याने सावधानी सहित मल-मूत्र, कफ, थूक, नाक आदि क्षेपण करना प्रतिष्ठा न समिति कहलाती है ।

प्रश्न १५८—गुप्ति नामक भावसवरविशेष किसे कहते है ?

उत्तर—ससारके कारणभूत रागादिसे बचनेके लिये अपनी आत्माको निज सहज शुद्ध आत्मतत्त्वकी भावना, उपयोगमे सुरक्षित रखने, लीन करनेको गुप्ति कहते है ।

प्रश्न १५६—गुप्तिरूप भावसंवरकी साधनाके उपाय क्या है ?

उत्तर—मनोगुप्ति, वचनगुप्ति, कायगुप्ति, ये तीन गुप्तिरूप भावसंवरके उपाय अथवा विवेष है।

प्रश्न १६०—मनोगुप्ति किसे कहते है ?

उत्तर—रागादि भावोके त्यागको अथवा समीचीन ध्यान करनेको अथवा मनको वश मे करनेको मनोगुप्ति कहते है ।

प्रश्न १६१—वचनगुप्ति किसे कहते है ?

उत्तर—कठोर वचनादिके त्यागको अथवा मौन धारण कर लेनेको वचनगुप्ति कहते है ।

प्रश्न १६२—कायगुप्ति किसे कहते हे ?

उत्तर— समस्त पापोसे दूर रहनेको व शरीरकी चेष्टाओकी निवृत्तिको कायगुप्ति कहते हैं ।

प्रश्न १६३— धर्म किसे कहते है ?

उत्तर—क्रोधादि कषायोंका उद्भव कर देने वाले कारणोका प्रसग उपस्थित होनेपर भी इच्छा और कलुपताओंके उत्पन्न न होनेको और स्वभावकी स्वच्छता बनी रहनेको धर्म कहते है।

प्रश्न १६४—धर्म शब्दका निरुक्त्यर्थ क्या है ?

उत्तर-- धरतीति धर्म = जो जघन्यपदसे हटाकर उत्तम पदमे धारण करावे उसे धर्म कहते है।

प्रश्न १६५ - जघन्य और उत्कृष्ट पद क्या है ?

उत्तर-- मिथ्यात्व, राग, द्वेषसे आत्माका कलुपित रहना तो जघन्यपद है और परम-पारिणामिक रूप निजचैतन्यस्वभावके अवलम्बनके बलसे स्वभावका स्वच्छ विकास होना उत्कृष्ट पद है ।

प्रश्न १६६— धर्मके अङ्ग कितने है ?

उत्तर - धर्मके १० अङ्ग है—(१) क्षमा, (२) मार्दव, (३) आर्जव, (४) शौच,

(५) सत्य, (६) सयम, (७) तप, (८) त्याग, (९) आकिचन्य और (१०) ब्रह्मचर्य।

प्रश्न १६७-- क्षमा नामक धर्माङ्ग किसे कहते है ?

उत्तर—क्रोधका कारण उपस्थित होनेपर भी व स्वय समर्थ होकर भी दूसरेको क्षमा कर देने तथा निज ध्रुवस्वभावके उपयोगके बलसे ससार-भ्रमणके कारणभूत मोहादि भावोको शान्त कर अपनेको क्षमा कर देनेको क्षमा कहते है।

प्रश्न १६८—मार्दव नामक धर्माङ्ग किसे कहते है ?

उत्तर— जाति, कुल, विद्या, वैभव आदि विशिष्ट होनेपर भी दूसरोको तुच्छ न मानने व स्वय अहङ्कारभाव न करने तथा निज सहज स्वभावके उपयोगके बलसे, अपूर्ण विकासमे अहङ्कारता समाप्त करके अपनी मृदुता प्रकट कर लेनेको मार्दवधर्म कहते है।

प्रश्न १६९—आर्जव नामक धर्माङ्ग किसे कहते है ?

उत्तर—किसीके प्रति छल कपटका व्यवहार व भाव न करने तथा निज सरल चैतन्यस्वभावके उपयोगसे स्वभावविरुद्ध भावोको नष्ट करके अपनी यथार्थ सरलता प्रकट कर लेनेको आर्जवधर्म कहते है।

प्रश्न १७०— शौच नामक धर्माङ्ग किसे कहते है ?

उत्तर— किसी भी वस्तुकी तृष्णा या लालच न करने तथा निज स्वतःसिद्ध चैतन्य-स्वभावके उपयोगके बलसे परोपयोग नष्ट करके निःसङ्ग, स्वच्छ अनुभव करनेको शौचधर्म कहते है।

प्रश्न १७१—सत्य नामक धर्माङ्ग किसे कहते है ?

उत्तर— जिस वचन और क्रियाके निमित्तसे निज सत् स्वरूप याने आत्मस्वरूपकी ओर उन्मुखता हो उसे सत्यधर्म कहते है, तथा निज अखण्ड सत्के उपयोगसे निजस्वरूपके त्रैकालिक तत्त्वका अनुभवन हो, उसे सत्यधर्म कहते है।

प्रश्न १७२—सयमनामक धर्माङ्ग किसे कहते है ?

उत्तर— इन्द्रियसयम व प्राणसयम द्वारा स्वपरहिंसासे निवृत्त होने तथा निज नियत चैतन्यस्वभावके उपयोगसे पर्यायदृष्टियोको समाप्त कर निजस्वरूपमे लीन होनेको सयमधर्म कहते है।

प्रश्न १७३—तप नामक धर्माङ्ग किसे कहते है ?

उत्तर—रागादिके अभावके लिये विविध कायक्लेश और मनके या इच्छाके निरोध करनेको तथा नित्य अन्तःप्रकाशमान निज ब्रह्मस्वभावके उपयोगसे, विभावसे निवृत्त होकर स्वभावमे तपनेको तपधर्म कहते है।

प्रश्न १७४—त्याग नामक धर्माङ्ग किसे कहते है ?

प्रश्न १३८—पादान्तरपञ्चेन्द्रियागम अ`तराय क्या है ?

उत्तर– भोजनार्थ चलते समय या आहारके समय यदि चरणोंके अन्तरालमे कोई पञ्चेन्द्रिय जीव आ जावे तो वह पादान्तरपञ्चेन्द्रियागम अन्तराय है।

प्रश्न १३९—भाजनसपात अन्तराय किसे कहते है ?

उत्तर– साधुको आहार देने वालेके हाथसे कोई कटोरा आदि पात्र गिर पडे तो उसे भाजनसंपात अन्तराय कहते है।

प्रश्न १४०– उच्चार अन्तराय किसे कहते है ?

उत्तर—भोजनार्थ जाते हुए या आहार करते हुये साधुके विष्टा मल निकल आवे तो उसे उच्चार नामक अन्तराय कहते है।

प्रश्न १४१—प्रस्रवण अन्तराय किसे कहते है ?

उत्तर—साधुके मूत्रका स्राव हो जानेको प्रस्रवण अन्तराय कहते है।

प्रश्न १४२– अभोज्यगृह-प्रवेश अन्तराय क्या है ?

उत्तर-- भिक्षार्थ चर्या करते हुए यदि साधुका चाण्डाल आदि अस्पृश्य जीवोके घर प्रवेश हो जाय तो उसे अभोज्यगृह-प्रवेश अन्तराय कहते है।

प्रश्न १४३– पतन नामक अन्तराय किसे कहते है ?

उत्तर—साधुके मूर्च्छा, भ्रम, श्रम, रोग आदिके कारण भूमिपर गिर जानेको पतन नामक अन्तराय कहते है।

प्रश्न १४४—उपवेशन नामक अन्तराय किसे कहते है ?

उत्तर– अशक्ति आदि कारणवश साधुके भूमिपर बैठ जानेको उपवेशन नामक अन्तराय कहते है।

प्रश्न १४५– सदश नामक अन्तराय किसे कहते है ?

उत्तर– भिक्षार्थ पर्यटनमे या आहारके समय कुत्ता, बिल्ली आदि कोई जानवर साधुको काट ले तो उसे सदश नामक अतराय कहते है।

प्रश्न १४६– भूमिस्पर्श अन्तराय किसे कहते है ?

उत्तर– सिद्धभक्ति किये बाद साधुको हाथकरि भूमिस्पर्श हो जाय तो उसे भूमिस्पर्श नामक अन्तराय कहते है।

प्रश्न १४७—निष्ठीवन नामक अन्तराय किसे कहते है ?

उत्तर—आहार करते हुए साधुके कफ, थूक, नाक आदिके निकल जानेको निष्ठीवन ना·क अन्तराय कहते है।

प्रश्न १४८– उदरक्रिमिनिर्गमन अन्तराय क्या है ?

उत्तर— मुखद्वारसे अथवा गुदा द्वारसे साधुके पेटकी क्रिमि (कीडे) का निकलना, सो उदरक्रिमिनिर्गमन अन्तराय है।

प्रश्न १४९— अदत्तग्रहण नामक अन्तराय किसे कहते हैं ?

उत्तर— दातारके दिये बिना ही भोजन औषधि ग्रहण कर ली जाय या संकेत करके भोजनादि ग्रहण किया जाय तो उसे अदत्तग्रहण नामक अन्तराय कहते हैं।

प्रश्न १५०—प्रहार नामक अन्तराय कब होता है ?

उत्तर— अपना (साधुका) या निकटवर्ती किसी अन्यका खड्ग बरछी आदि द्वारा प्रहार करनेपर प्रहार अन्तराय होता है।

प्रश्न १५१— ग्रामदाह अन्तराय कब होता है ?

उत्तर—जिसके निकट स्वयका निवास हो रहा हो, ऐसे ग्राममे अग्निके लग जानेपर ग्रामदाह नामक अन्तराय हो जाता है।

प्रश्न १५२—पादग्रहण अन्तराय किसे कहते है ?

उत्तर—किसी भी वस्तुको पैरसे उठाकर ग्रहण करनेको पादग्रहण अनराय कहते है।

प्रश्न १५३—हस्तग्रहण अन्तराय किसे कहते है ?

उत्तर—किसी वस्तुको भूमि परसे हाथ द्वारा उठाकर ग्रहण करनेको हस्तग्रहण अन्तराय कहते हैं।

प्रश्न १५४-- ये किस समयसे किस समय तक बीचमे माने जाते है ?

उत्तर— साधु जब भिक्षार्थ जाता है उससे पहिले भुक्तिचर्याके लिये सिद्धभक्ति करता है। किसी श्रावकके द्वारा पडिगाहे जानेपर भोजनशालामे स्थित होकर दुबारा सिद्धभक्ति पढता है। उक्त अन्तरायोमे से कुछ अन्तराग पहिली सिद्धभक्तिसे लेकर आहार-समाप्ति तकके बीचमे माने जाते हे और कुछ अतराय द्वितीय सिद्धभक्तिसे आहार-समाप्ति तक माने जाते है। उन्हे यथागम लगा लेना चाहिये।

प्रश्न १५५— एषणा समितिका शब्दार्थ क्या है ?

उत्तर— एषणाका अर्थ खोजना है। उक्त सब प्रकारोसे निर्दोष आहार खोजनेके लिये तथा आहार करनेके लिये जो सावधानी होती है उसे एषणा समिति कहते है।

प्रश्न १५६— आदाननिक्षेपणसमिति किसे कहते है ?

उत्तर— कमण्डल, पुस्तक आदि योग्य वस्तुको देख-भालकर जिसमे जीव बाधा न हो, धरने-उठानेको आदाननिक्षेपणसमिति कहते है।

प्रश्न १५७—प्रतिष्ठापन समिति किसे कहते है ?

उत्तर—निर्जन्तु एव योग्य भूमिपर जहाँ पुरुषादिके बैठने उठनेका प्राय. नियत स्थान

उत्तर— ज्ञानादि दान करने व आभ्यन्तर एव बाह्य परिग्रहका त्याग करनेको तथा परनिरपेक्ष निज चैतन्यस्वभावके उपयोगके बलसे समस्त विकल्पोका त्याग करके सहजज्ञान और आनन्दके अनुभवन करने को त्यागधर्म कहते है।

प्रश्न १७५— आकिञ्चन्यधर्म किसे कहते है ?

उत्तर— रागादिभाव, शरीर, कर्म, सपत्ति आदि समस्त परभावोके प्रति ये समस्त मेरे कुछ नही है, ऐसा अनुभव करने तथा केवल चिन्मात्र निजस्वभावके उपयोगके वलसे निर्विकल्प अनुभवन करनेको आकिञ्चन्यधर्म कहते है।

प्रश्न १७६— ब्रह्मचर्य नामक धर्माङ्ग किसे कहते है ?

उत्तर—मैथुनसम्वन्धी सूक्ष्म विकल्पसे भी निवृत्ति होकर गुरुके आदेशानुसार चर्या करने व आत्मस्वरूपमे प्रवृत्ति करनेको तथा परमब्रह्मरूप निज चैतन्यस्वभावके उपयोगसे सर्व परभावोसे निवृत्त होकर निजब्रह्ममे स्थित होनेको ब्रह्मचर्यधर्म कहते है।

प्रश्न १७७— अनुप्रेक्षा नामक भावसवरविशेष किसे कहते है ?

उत्तर—जिस प्रकार यह आत्मा अपने स्वरूपकी उपलब्धि करे उसके अनुसार प्रेक्षण अर्थात् बार-बार विचार एव अनुभव करनेको अनुप्रेक्षा कहते है।

प्रश्न १७८—अनुप्रेक्षा कितने प्रकारकी है ?

उत्तर— अनुप्रेक्षा १२ प्रकारकी है— (१) अनित्यानुप्रेक्षा, (२) अशरणानुप्रेक्षा, (३) ससारानुप्रेक्षा, (४) एकत्वानुप्रेक्षा, (५) अन्यत्वानुप्रेक्षा, (६) अशुचित्वाच्यनुप्रेक्षा, (७) आस्रवानुप्रेक्षा, (८) सवरानुप्रेक्षा, (९) निर्जरानुप्रेक्षा, (१०) लोकानुप्रेक्षा, (११) बोधिदुर्लभानुप्रेक्षा और (१२) धर्मानुप्रेक्षा।

प्रश्न १७९— अनित्यानुप्रेक्षा किसे कहते है ?

उत्तर—धन, परिवार, शरीर, कर्म और रागद्वेपादिक भाव—ये सब अनित्य हैं, ऐसी भावना करनेको अनित्यानुप्रेक्षा कहते हैं।

प्रश्न १८०— इस अनित्यभावनासे क्या लाभ होता है ?

उत्तर— उक्त अनित्यभावना भाने वाले पुरुषको इन पदार्थोंका सयोग व वियोग होने पर भी ममत्व नहीं होता है और ममत्व न होनेसे त्रैकालिक नित्य ज्ञायकस्वरूप निजपरमात्माकी भावना होती है, जिससे यह अन्तरात्मा परमआनन्दमय अवस्थाको प्राप्त होता है।

प्रश्न १८१— धन, परिवार आदिके साथ आत्माका क्या कुछ भी सम्बन्ध नहीं है ?

उत्तर— परमार्थसे धन, परिवार, शरीर, कर्म और रागादिविभावके साथ आत्माका कुछ सम्बन्ध नहीं है।

प्रश्न १८२— फिर इनमे सम्बन्धकी कल्पना किस अभिप्रायसे हुई ?

उत्तर– धन, परिवारका सम्बन्ध तो उपचरित असद्भूतव्यवहारसे है, शरीर, कर्मका सम्बन्ध अनुपचरितअसद्भूतव्यवहारसे है और रागादि विभावका सम्बन्ध मात्र अशुद्धनिश्चय नयसे जीवके साथ है। असद्भूतका तो आत्मामें अत्यन्ताभाव है और अशुद्धपर्याय औपाधिक व क्षणिक परिणमन है।

प्रश्न १८३– अशरणानुप्रेक्षा किसे कहते हैं ?

उत्तर—देव, सुभट, मित्र, पुत्रादि व मणि, मन्त्र, तन्त्र, आशीर्वाद, औषधादिक कुछ भी उस जीवको मरणसमयमें तथा वेदना आदि समस्त परिणमनोंके समयमें शरण नहीं है, ऐसी भावना करनेको अशरणानुप्रेक्षा कहते हैं।

प्रश्न १८४—इस अशरणभावनासे क्या लाभ होता है ?

उत्तर– बाह्य पदार्थोंको शरण माननेका अभिप्राय मिट जानेसे जीव शाश्वत शरण-भूत निज शुद्ध आत्माका शरण प्राप्त कर लेता है, जिससे यह अन्तरात्मा भय और निदान बाधारहित सहज आनन्दका अनुभव करता है।

प्रश्न १८५– संसारानुप्रेक्षा किसे कहते हैं ?

उत्तर– यह जीव अनादिकालसे द्रव्यपरिवर्तन, क्षेत्रपरिवर्तन, कालपरिवर्तन, भवपरि-वर्तन व भावपरिवर्तन—इन पांच प्रकारके संसारों याने परिभ्रमणोंमें नाना प्रकारके भयकर दुःखमात्र अज्ञानसे भोगता चला आया है। इस प्रकारके चिन्तवनको संसारानुप्रेक्षा कहते हैं।

प्रश्न १८६—द्रव्यपरिवर्तन या द्रव्यसंसार क्या है ?

उत्तर—परिवर्तन नाम परिभ्रमणका है। इन परिवर्तनोंमें मुख्य बात यह ही जानने की है कि जीवका परिभ्रमणमें इतना काल व्यतीत हो गया है। इन परिवर्तनोंके वर्णनसे भ्रमणके समयका परिचय कराया गया है। द्रव्यपरिवर्तन दो प्रकारसे वर्णित है-- नोकर्मद्रव्य-परिवर्तन, (२) कर्मद्रव्यपरिवर्तन। जिसमें से नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनका स्वरूप पहिले समझ लेना चाहिये।

प्रश्न १८७– नोकर्मद्रव्यपरिवर्तका क्या तात्पर्य है ?

उत्तर– नोकर्मका अर्थ है शरीर। जैसे किसी जीवने यथासम्भव तीव्र मन्द मध्यम भाव वाले स्पर्श रस गंध वर्णयुक्त नोकर्मवर्गणाओंको शरीररूपसे ग्रहण किया। पश्चात् द्वितीयादि समयमें वे खिर गये, किन्तु अनेक अगृहीत नोकर्मवर्गणाओंको ग्रहण किया। इसी तरह अनन्त बार अगृहीत नोकर्मवर्गणावोंको ग्रहण कर चुकनेपर एक बार मिश्रवर्गणावोंको ग्रहण किया। अनन्त बार अगृहीत वर्गणाओंको ग्रहण करनेपर एक बार मिश्र (जिनमें कुछ गृहीत व कुछ अगृहीतवर्गणायें हों) वर्गणावोंको ग्रहण किया। इसी रीतिसे जब अनन्त बार मिश्रवर्गणाओंका ग्रहण हो चुके तब एक बार गृहीतवर्गणाओंको ग्रहण किया। अगृहीत--मिश्र-

ग्रहणकी रीति पूर्वक गृहीतवर्गणाओको फिर ग्रहण किया, इसी रीतिसे होते-होते जब अनंत-बार गृहीतवर्गणाओका ग्रहण हो चुका तब नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनके ४ भागोमे से एक भाग हो चुकता है। इस भागका नाम है अगृहीतमिश्रगृहीतक्रमग्रहण।

फिर उस जीवने मिश्रवर्गणाओको ग्रहण किया। अनन्त बार मिश्रग्रहण होनेपर एक बार अगृहीतवर्गणाओको ग्रहण किया। पश्चात् अनन्त मिश्रग्रहण होनेपर अगृहीतवर्गणावोको ग्रहण किया। इस रीतिसे अनन्त बार अगृहीतवर्गणाओको ग्रहण कर चुकनेपर एक बार गृहीतवर्गणाओको ग्रहण किया। मिश्रअगृहीतग्रहण क्रमपूर्वक गृहीतवर्गणावोका जब अनन्त बार ग्रहण हो चुकता है तब नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनके दो भाग समाप्त हो चुकते है। इस द्वितीय भागका नाम मिश्रअगृहीतगृहीतकर्म ग्रहण है।

फिर उस जीवने मिश्रवर्गणाओको ग्रहण किया, अनन्त बार मिश्रवर्गणाओके ग्रहण करनेपर एक बार गृहीतवर्गणाओको ग्रहण किया। फिर अनन्त बार मिश्रग्रहणके बाद एक बार गृहीतवर्गणाओको ग्रहण किया। इस रीतिसे मिश्रगृहीत ग्रहणपूर्वक अनत बार गृहीतवर्गणावोका ग्रहण हो चुकनेपर एक बार अगृहीतवर्गणाओका ग्रहण किया। इसी रीतिके होते होते जब अनन्त बार अगृहीतवर्गणाओको ग्रहण कर चुकता है तब नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनके ३ भाग समाप्त हो जाते है। इस तृतीय भागका नाम मिश्रगृहीत अगृहीतकर्मग्रहण है।

फिर उस जीवने गृहीतनोकर्मवर्गणावोको ग्रहण किया, अनन्त बार गृहीतवर्गणाओको ग्रहण कर चुकनेपर एक बार मिश्रवर्गणाओको ग्रहण किया। अनन्त बार गृहीत-वर्गणाओको ग्रहण कर चुकनेपर फिर एक बार मिश्रवर्गणाओको ग्रहण किया। इस रीतिसे अनन्त बार मिश्रवर्गणाओके ग्रहण हो चुकनेपर एक बार अगृहीतवर्गणाओको ग्रहण किया। इसी प्रकार गृहीत-मिश्र-अगृहीतग्रहणपूर्वक जब अनन्त बार अगृहीतनोकर्मवर्गणाओका ग्रहण हो चुकता है तब नोकर्मद्रव्य परिवर्तनका चौथा भाग समाप्त हो जाता है। इस भागका नाम गृहीतमिश्रअगृहीतकर्मग्रहण है।

इसके पश्चात् इस नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनके प्रारभके प्रथम समयमे जिस भाव वाले स्पर्श रस गध वर्ण युक्त नोकर्मवर्गणाओको ग्रहण किया वह शुद्ध गृहीतनोकर्मद्रव्य जब इस जीवके ग्रहणमे आ जाय तब एक नोकर्मद्रव्यपरिवर्तन पूरा होता है। इस एक परिवर्तनमे प्रारम्भसे लेकर अन्त तक जितनो काल लगता है उतना काल व्यतीत हो जाता है। इस क्रमके विरुद्ध बीचमे अनन्तो बार यथा तथा वर्गणावोका ग्रहण होता रहता है वह सब अलग है। ऐसे-ऐसे अनन्त नोकर्मद्रव्यपरिवर्तन भी इस जीवके हो गये है।

प्रश्न १८८-- कर्मद्रव्यपरिवर्तनका समय कितना है ?

उत्तर-- नोकर्मवर्गणाओके स्थानपर कर्मवर्गणावोका कहकर कर्मद्रव्य परिवर्तनका

वेवरण भी नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनकी तरह करना चाहिये । इस प्रकार ४ भागो पूर्वक कर्मद्रव्य-
ारिवर्तनके पूरा होनेमे जितना समय लगता है उतना समय कर्मद्रव्यपरिवर्तनका है । ऐसे-ऐसे
ग्नन्त कर्मद्रव्यपरिवर्तन भी इस जीवके हो गये है ।

प्रश्न १८६—क्षेत्रपरिवर्तनका काल किस प्रकार जाना जाता है ?

उत्तर—क्षेत्रपरिवर्तनका काल दो प्रकारोसे जाना जाता है—(१) स्वक्षेत्रपरिवर्तन
ौर (२) परक्षेत्रपरिवर्तन ।

प्रश्न १९०– स्वक्षेत्रपरिवर्तनका क्या स्वरूप है ?

उत्तर—स्वका अर्थ यहाँ जीव है, सो इस परिवर्तनका स्वरूप जीवके निजक्षेत्र याने
देश अथवा शरीरकी अवगाहनासे जाना जाता है । जीवकी जघन्य अवगाहना घनागुलके
ासख्यातवें भागप्रमाण है । उतनी अवगाहना लेकर जीवने देह धारण किया, फिर इस अव-
ाहनामे जितने प्रदेश है उतनी वार इतनी ही अवगाहना वाला शरीर धारण करे । पश्चात्
क-एक प्रदेश अधिक-अधिककी अवगाहनाओको क्रमसे धारण करते-करते महामत्स्यकी
त्कृष्ट (१००० योजन लम्बा, ५०० योजन चौडा, २५० योजन ऊँचा) अवगाहना पर्यन्त
मस्त अवगाहनोको धारण कर ले, इसे स्वक्षेत्रपरिवर्तन कहते है । इसमे जितना काल व्य-
ात होता है उतना स्वक्षेत्रपरिवर्तनकाल है । बीचमे अनन्तो बार क्रमविरुद्ध अवगाहनायें
ध होती रहती है वे सब अलग है । ऐसे-ऐसे क्षेत्रपरिवर्तन अनन्त हो चुके है ।

प्रश्न १९१—जिन जीवोने निगोद शरीरको छोडकर दूसरा शरीर ग्रहण नही किया
नके स्वक्षेत्रपरिवर्तन कैसे हो सकता है ?

उत्तर– जिन जीवोने निगोदपर्यायको अब तक छोडा भी नही उन जीवोके स्वक्षेत्र-
रवर्तन तो नही होता, किन्तु अन्य जीवोके अनन्त स्वक्षेत्रपरिवर्तन होनेमे जितना काल व्य-
त हुआ है उतना याने अनन्तकाल निगोद जीवोका भी ससार-भ्रमणमे व्यतीत हुआ है ।

प्रश्न १९२– परक्षेत्रपरिवर्तनका क्या स्वरूप है ?

उत्तर—परक्षेत्रका अर्थ है आकाशक्षेत्र । कोई जीव जघन्य (घनागुलके असख्यातभाग
ाण) अवगाहना धारण कर लोक या लोकाकाशके आठ मध्यप्रदेशोको अपने शरीरके मध्य
आठ प्रदेशोसे व्यापकर उत्पन्न हुआ । पश्चात् इस अवगाहनामे जितने प्रदेश है उतनी बार
नी ही अवगाहना लेकर इसी स्थानपर इसी रीतिसे उस जीवने जन्म धारण किया । पीछे
कके एक-एक प्रदेशके अधिक क्रमसे समस्त लोकमे जन्म धारण कर ले, इस परिवर्तनको
क्षेत्रपरिवर्तन कहते है । इसमे जितना काल लगता है उतना परक्षेत्रपरिवर्तनका काल
नना । बीचमे कही भी अनतो बार उत्पन्न होता रहता है वह सब अलग है, इसकी गिनती
नही आता । ऐसे-ऐसे अनन्त परक्षेत्रपरिवर्तन इस जीवने किये है ।

प्रश्न १६३—अनादि नित्यनिगोदोके क्या यह परक्षेत्रपरिवर्तन हो सकता है ?

उत्तर– अनादिनित्यनिगोद जीवोके भी यह परक्षेत्रपरिवर्तन होता है, क्योकि इसमे लोकके एक एक प्रदेशपर क्रमसे उत्पन्न होनेकी बात है। शरीरकी अवगाहनाका इसमे क्रम नही है।

प्रश्न—१६४—कालपरिवर्तनका क्या स्वरूप है ?

उत्तर—कोई जीव उत्सर्पिणीकालके प्रथम समयमे उत्पन्न हुआ। पश्चात् अन्य उत्सर्पिणीकालके दूसरे समयमे उत्पन्न हुआ। इसी प्रकार अन्य-अन्य उत्सर्पिणीकालके तीसरे, चौथे आदि समयोमे उत्पन्न हुआ। इस प्रकार उत्सर्पिणीकाल व अवसर्पिणीकालके बीस कोड़ाकोडीसागरके जितने समय है उन सबमे इस क्रमसे उत्पन्न हुआ और मरणको प्राप्त हुआ। इस बीच अनन्तो बार अन्य-अन्य समयोमे उत्पन्न हुआ वह सब अलग है, उसकी इसमे गिनती नही। इसमे जितना काल लगता है उतना काल परिवर्तनका है, ऐसे-ऐसे अनंत कालपरिवर्तन इस जीवने किये है।

प्रश्न १६५– भवपरिवर्तनका क्या स्वरूप है ?

उत्तर– भव नाम गतिका है। चारो गतियोमे विशिष्ट क्रम लेकर परिभ्रमण करना भवपरिवर्तन है। जैसे कोई जीव तिर्यग्भवकी जघन्य आयु अन्तर्मुहूर्त लेकर उत्पन्न हुआ। फिर अन्तर्मुहूर्तमे जितने समय है उतनी बार इसी आयुके साथ उत्पन्न हुआ। पश्चात् क्रमसे एक-एक समय अधिक आयु लेकर तिर्यग्भवमे उत्पन्न होकर तीन पल्यकी आयु पूर्ण कर ली। यह तिर्यग्भव परिवर्तन है। इस बीच अनन्तो बार क्रम विरुद्ध आयु लेकर उत्पन्न होता रहता है, वह इस गिनतीमे नही है।

कोई जीव नरकभवकी जघन्यस्थिति दस हजार वर्षकी आयु लेकर उत्पन्न हुआ। पश्चात् दस हजार वर्षके जितने समय है उतनी बार दस हजार वर्षकी जघन्य आयु लेकर उत्पन्न हो। पश्चात् क्रमसे एक-एक समय अधिककी नरकायु लेकर उत्पन्न हो होकर उत्कृष्ट स्थिति ३३ सागर प्रमाण आयुको पूर्ण कर ले। इस बीच अन्य भव तो लेने हो पडते, क्योकि नरकभवके बाद ही वह जीव नारकी नही होता, मनुष्य या तिर्यञ्च होता है तथा अनेक बार क्रमविरुद्ध नरककी आयु लेकर उत्पन्न होता है, वह सब इस गिनतीमे नही है। यह नरकभवपरिवर्तनकी तरह है, क्योकि मनुष्यआयु भी जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट तीन पल्यकी होती है।

देवभवपरिवर्तन नरकभवपरिवर्तनकी तरह लगाना, किन्तु उत्कृष्ट आयुमे ३१ सागर तक ही कहना, क्योकि इससे बडी स्थितिकी देवायु सम्यग्दृष्टिको ही मिलती है।

इस प्रकार इन चारो भवपरिवर्तनोमे जितना समय लगता है उतना काल भवपरि-

वर्तनका है। ऐसे-ऐसे अनन्त भवपरिवर्तनकाल जीवके व्यतीत हो गये है।

प्रश्न १६६—अनादिनित्यनिगोदके यह परिवर्तन कैसे सभव हो सकता ?

उत्तर—अनादिनित्यनिगोदके यह भवपरिवर्तन तो नही होता, किन्तु अन्य जीवके अनन्त भवपरिवर्तनोमे जितना काल व्यतीत हुआ उतना काल इसके भी व्यतीत हो गया है।

प्रश्न १६७—भावपरिवर्तनका क्या स्वरूप है ?

उत्तर—कर्मोंकी यथासम्भव जघन्यस्थितिसे लेकर उत्कृष्टस्थितिके बन्धके कारणभूत भावोका क्रमिक परिवर्तन भावपरिवर्तन है। वह इस प्रकार होता है—कर्मोंकी एक स्थिति-बन्धस्थान होनेके लिये या बढनेके लिये असख्यात लोकप्रमाण असख्यात कषायाध्यवसायस्थान हो जाते है। एक कषायाध्यवसायस्थान होनेके लिये असख्यातलोकप्रमाण, असख्यात अनुभाग-बन्धाध्यवसायस्थान हो जाते है। एक अनुभागबन्धाध्यवसायस्थान होनेके लिये श्रेणीके असख्यातवें भाग प्रमाण असख्यात योगस्थान हो जाते है।

अब प्रकृत क्रमपरिवर्तन देखें– जैसे एक जीवके ज्ञानावरणकर्मकी जघन्यस्थितिका बन्ध हुआ। इसके योग्य जघन्य योगस्थान, जघन्य अनुभाग बन्धाध्यवसायस्थान व जघन्य कषायाध्यवसायस्थान हुए। इसके आगे असख्यात योगस्थान होनेपर एक अनुभागबन्धावसाय-स्थान बढा व इस रीतिसे असख्यात अनुभागबन्धाध्यवसायस्थान होनेपर एक कषायाध्यवसाय-स्थान बढा और इसी रीतिसे असख्यात कषायाध्यवसायस्थान होनेपर ज्ञानावरणकर्मका आगेका एक स्थितिबधस्थान हुआ। इसी प्रकार योगस्थान अनुभागबधाध्यवस्थान-कषायाध्यवसायस्थान क्रमसे बढाकर स्थितिस्थान बढाया। जब ज्ञानावरणकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्धस्थान बध गया तब ज्ञानावरणसम्बन्धी स्थितिस्थानोका विवरण हुआ, इसी प्रकार यथासम्भव सब कर्मोंकी जघन्यस्थितिसे लेकर उत्कृष्टस्थितिपर्यन्त ले जाये। इस सबको एक भावपरिवर्तन कहते है। इसमे जितना काल लगता है वह भावपरिवर्तनका काल है। ऐसे-ऐसे अनन्त भावपरिवर्तन-काल जीवके हुए है।

प्रश्न १६८—अनादिनित्यनिगोद जीवके भावपरिवर्तन कैसे सम्भव है ?

उत्तर—कर्मोंकी यथासभव उत्कृष्ट स्थितिबन्धके योग्य द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रिय व सञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रियका भव प्राप्त न होनेसे सब स्थितिस्थान न हो सकनेसे इन निगोद जीवोके यद्यपि यह भावपरिवर्तन नही होता है तथापि अन्य जीवोका इसमे जितना काल व्यतीत हुआ है उतना काल निगोद जीवोका भी व्यतीत हुआ है।

प्रश्न १६९– इन पाँच प्रकारके ससारोका काल क्या एकसा है या हीनाधिक ?

उत्तर—द्रव्यपरिवर्तनसे अनन्तगुणा काल क्षेत्रपरिवर्तनका है। क्षेत्रपरिवर्तनसे अनन्त गुणा काल कालपरिवर्तनका है, कालपरिवर्तनसे अनन्तगुणा काल भवपरिवर्तनका है और भव-परिवर्तनसे अनन्तगुणा काल भावपरिवर्तनका है।

प्रश्न २००– इस ससारानुप्रेक्षासे क्या लाभ है ?

उत्तर—निज शुद्ध आत्मतत्त्वकी भावनाके बिना अज्ञानसे यह जीव इस प्रकार नाम-देहोको धारण कर नाना क्षेत्रोमे भाव धारण कर, चारो गतियोमे भटककर, नामकर्मोको बाधता हुआ भयकर दु.ख भोगता चला आया है। अब यदि दुःख भोगना इष्ट नही है तो संसार-विपत्तिका विनाश करने वाली निज शुद्धात्माकी भावना करनी चाहिये। इस हित कर्तव्यकी प्रेरणा ससारानुप्रेक्षासे मिलती है।

प्रश्न २०१—एकत्वानुप्रेक्षा किसे कहते है ?

उत्तर– सुख, दु ख, जीवन, मरण सब अवस्थावोमे मैं अकेला ही हू, ससार-मार्गका मैं अकेला कर्ता हू और मोक्षमार्गका मै अकेला कर्ता हू—इस प्रकार चिन्तवन करने एव द्रव्य-कर्म, भावकर्म और नोकर्मसे रहित ज्ञायकत्वस्वरूप एक निज शुद्ध आत्मतत्त्वकी भावना करनेको एकत्वानुप्रेक्षा कहते है।

प्रश्न २०२– इस भावनासे क्या लाभ है ?

उत्तर—एकत्वभावनासे दुखोकी शान्ति होकर सहज आनन्द प्रकट होता है। क्योकि दु ख विकल्पोसे उत्पन्न होता है और किसी न किसी परपदार्थके सम्बन्धसे, उपयोगसे होता है, अत सहज ज्ञान, आनन्द स्वरूप निज आत्माके एकत्वमे उपयोग होनेपर निर्विकार अनाकुलतारूप अनुपम आनन्द प्रकट होता ही है।

प्रश्न २०३—अन्यत्वानुप्रेक्षा किसे कहते है ?

उत्तर—देह, परिवार, वैभव, इन्द्रियसुख आदि समस्त परभाव मुझसे भिन्न हैं, अत हेय है, इस प्रकारकी भावनाको अन्यत्वानुप्रेक्षा कहते है।

प्रश्न २०४—इन्द्रियसुख मुझसे कैसे भिन्न है ?

उत्तर—मै निर्विकार ध्रु व चैतन्यचमत्कार मात्र कारणसमयसार हू और ये इन्द्रिय-सुख कर्माधीन एव स्वभावविरुद्ध होनेसे विकार है व विनश्वर हैं। अत. मैं इन्द्रियसुखसे भी भिन्न हू।

प्रश्न २०५– अन्यत्वानुप्रेक्षासे क्या लाभ है ?

उत्तर—परभावोकी भिन्नता जाननेसे आत्माकी परवस्तुवोंमे हितबुद्धि नहीं होती और परमहितकारी निज शुद्ध आत्मतत्त्वमे भावना जागृत होती है।

प्रश्न २०६—एकत्वानुप्रेक्षा और अन्यत्वानुप्रेक्षा दोनोका विषय

तब दोनोमे अन्तर क्या रहा ?

उत्तर—एकत्व भावनामे तो विधिरूपसे निज आ...

और अन्यत्वभावनामे अन्यके नि... आत्मतत्त्व

दोनो भावनाओमे अन्तर है ।

प्रश्न २०७--अशुचित्वानुप्रेक्षा किसे कहते है ?

उत्तर—रजवीर्यमलसे उत्पन्न, मलको ही उत्पन्न करने वाले, मलसे ही भरे देहकी अशुचिता चिन्तवन करने और अशुचि देहसे विरक्त होकर सहज शुचि चैतन्यस्वभावकी भावना करनेको अशुचित्वानुप्रेक्षा कहते है ?

प्रश्न २०८–अशुचित्वानुप्रेक्षासे क्या लाभ होता है ?

उत्तर– देहकी अशुचिताकी भावनासे देहसे विरक्ति होती है और देहसे विरक्ति होनेके कारण देहसयोग भी यथा शीघ्र समाप्त हो जाता है तब परमपवित्र निज ब्रह्ममे स्थित होकर यह अन्तरात्मा दुःखोसे मुक्त हो जाता है ।

प्रश्न २०९—आस्रवानुप्रेक्षा किसे कहते है ?

उत्तर—मिथ्यात्व, कषाय आदि विभावोके कारण ही आस्रव होता है, आस्रव ही ससार व समस्त दुःखोका मूल है–इस प्रकार मिथ्यात्व कषायरूप आस्रवोमे होने वाले दोषोंके चिन्तवन करने व निरास्रव निजपरमात्मतत्त्वकी भावना करनेको आस्रवानुप्रेक्षा कहते है ।

प्रश्न २१०—आस्रवानुप्रेक्षासे क्या लाभ होता है ?

उत्तर—आस्रवके दोषोके परिज्ञान और उससे दूर होनेके चिन्तवनके फलस्वरूप यह आत्मा निरास्रव निज परमात्मतत्त्वके उपयोगके बलसे आस्रवोसे निवृत्त हो जाता है और अनन्तसुखादि अनन्तगुणोसे परिपूर्ण सिद्धावस्थाका अधिकारी हो जाता है ।

प्रश्न २११–सवरानुप्रेक्षा किसे कहते है ?

उत्तर– जैसे जहाजके छिद्रके बन्द हो जानेपर पानीका आना बन्द हो जाता है, जिससे जहाज किनारेके नगरको प्राप्त कर लेता है, इसी प्रकार शुद्धात्मसवेदनके बलसे आस्रव का छिद्र बन्द हो जानेपर कर्मका प्रवेश बन्द हो जाता है, जिससे आत्मा अनन्तज्ञानादिपूर्ण मुक्तिनगरको प्राप्त कर लेता है । इस प्रकार सवरके गुणोका चिन्तवन करने और परमसवर-स्वरूप निज शुद्ध आत्मतत्त्वकी भावना करनेको सवरानुप्रेक्षा कहते है ।

प्रश्न २१२—सवरानुप्रेक्षासे क्या लाभ है ?

उत्तर—परमसवरस्वरूप निजशुद्ध कारणपरमात्माकी भावनासे आस्रवकी निवृत्ति होती है । सवरतत्त्व मोक्षमार्गका मूल है, इसकी सिद्धिसे मोक्ष प्राप्त होता है ।

प्रश्न २१३– निर्जरानुप्रेक्षा किसे कहते है ?

उत्तर—"जैसे अजीर्ण होनेसे मलसञ्चय होने पर आहारको त्याग कर औषधि लेने से मल निर्जरित हो जाता है याने दूर हो जाता है," इसी तरह अज्ञान होनेसे कर्मसञ्चय होने पर आत्मा मिथ्यात्वरागादिको छोडकर सुख दुःखमे समतारूप परमऔषधिको ग्रहण करता

है, जिससे कर्ममल निर्जरित करके याने दूर करके परमसुखी हो जाता है" इस प्रकार निर्जरा तत्त्वके चिन्तवन करने व स्वभावतः परममुक्त निजचैतन्यस्वभावकी भावना करनेको निर्जरानुप्रेक्षा कहते है।

प्रश्न २१४—निर्जरानुप्रेक्षासे क्या लाभ होता है ?

उत्तर—शुद्धोपयोगरूप निर्जरा परिणामोके बलसे एक देश मुक्त हो-होकर सर्वदेश कर्मोंसे मुक्त हो जाता है। इस रहस्यके ज्ञातावोको निर्जरानुप्रेक्षासे कल्याणमार्गकी इस प्रगति के लिये अन्तःप्रेरणा मिलती है।

प्रश्न २१५—लोकानुप्रेक्षा किसे कहते है ?

उत्तर—लोककी रचनाओका विचार करते हुए लोकके ऐसे-ऐसे स्थानोमे यह जीव मोहभाववश अनन्त बार उत्पन्न हुआ, ऐसे चिन्तवन करने और स्वभावतः अजन्मा एव अनादिसिद्ध चैतन्यस्वरूप निज निश्चय लोककी भावना करनेको लोकानुप्रेक्षा कहते है।

प्रश्न २१६—लोकको किसने बनाया ?

उत्तर—लोक समस्त द्रव्योके समूहको कहते है। समस्त द्रव्य जितने आकाशमे देखे जाते है, पाये जाते है उतने आकाशमे रहने वाले द्रव्यसमूहके पिण्डको लोक कहते है। समस्त द्रव्य स्वतःसिद्ध है, अतः लोक भी स्वतःसिद्ध है। इसे किसीने नही बनाया अथवा सर्वद्रव्य अपना-अपना परिणमन करते रहते है, सो सभी द्रव्योने लोक वनाया।

प्रश्न २१७—लोकका आकार क्या है ?

उत्तर—सात पुरुष एकके पीछे एक-एक खडे होकर पैर पसारे हुये और कमरपर हाथ रखे हुये स्थित हो उन जैसा आकार इस लोकका है। केवल मुख जितना आकार छोड दिया जावे।

प्रश्न २१८—लोकका विस्तार क्षेत्र कितना है ?

उत्तर—लोकका विस्तार ३४३ घनराजू है। एक राजू असख्यात योजनोका होता है। एक योजन दो हजार कोशका होता है। एक कोश करीब ढाई मीलका होता है। लोकका विस्तार लोकके तीन भागोमे बाटकर समझना चाहिये।

प्रश्न २१९—लोकके तीन भाग कौन-कौन है ?

उत्तर—लोकके तीन भाग ये है—(१) अधोलोक, (२) मध्यलोक, (३) ऊर्ध्वलोक।

प्रश्न २२०—अधोलोक कितने भागको कहते है ?

उत्तर—जैसे दृष्टान्तमे मनुष्यकी नाभिसे नीचेका जितना विस्तार है, ऐसे ही लोकके ठीक मध्यसे नीचेका जितना विस्तार है उतने भागको अधोलोक कहते है।

प्रश्न २२१—अधोलोकका कितना विस्तार है ?

उत्तर— अधोलोकका उत्सेध ऊपरसे नीचे ७ राजू है। बिल्कुल नीचे पूर्वसे पश्चिम तक आयाम ७ राजू है और ऊपर क्रमसे घट-घटकर एक राजू रह जाता है। दक्षिणसे उत्तर मे सर्वत्र विष्कम्भ ७-७ राजू है। अतः भूमि ७ मे मुख १ जोडनेसे ८ हुये, इसके आधे ४ राजू, यह चौडाईका एवरेज हुआ। इसमे लम्बाई ७ राजूका गुणा करनेसे ४ × ७ = २८हुआ, इसमे ७ राजू विष्कम्भका (दक्षिण उत्तर वालाका) गुणा करनेसे २८ × ७ = १९६ घन राजू अधोलोकका विस्तार है।

प्रश्न २२२-- मध्यलोकका विस्तार कितना है ?

उत्तर— लोकके मध्यभागसे ऊपर एक लाख ४० योजन ऊँचे तक न तिर्यग्रूपमे चारो ओर असख्यात योजनो तक याने पूर्वसे पश्चिम एक राजू व उत्तरसे दक्षिण नक सात राजू प्रमाण मध्यलोक है।

प्रश्न २२३— ऊर्ध्वलोकका कितना विस्तार है ?

उत्तर-- ऊर्ध्वलोकका उत्सेध ७ राजू है। मध्यलोकके ऊपर एक राजू आयाम है व ऊपर ३॥ राजू जाकर ५ राजू आयाम है तथा ३॥ राजू और ऊपर जाकर एक राजू आयाम है। विष्कम्भ सर्वत्र ७-७ राजू है। यहाँ उत्सेधका अर्थ ऊँचाई है। आयामका अर्थ पूर्व पश्चिमका विस्तार है। विष्कम्भका अर्थ दक्षिण उसका विस्तार है। इसका क्षेत्रफल यह है— ५ + १ = ६ − २ = ३ × ३॥ = १०॥ × ७ = ७३॥ + ७३॥ = १४७ घनराजू ऊर्ध्वलोक विस्तार है।

प्रश्न २२४— तीनो लोकोका सम्मिलित विचार कितना हुआ ?

उत्तर—अधोलोकका घनराजू १९६ व ऊर्ध्वलोकका घनराजू १४७, दोनोको मिलाकर ३४३ घनराजू विस्तार हुआ। यही तीनो लोकोका सम्मिलित विस्तार है।

प्रश्न २२५-- मध्यलोकका विस्तार क्यो नही जोडा गया है ?

उत्तर-- मध्यलोकका उत्सेध राजूके मुकाबले न कुछ है, इसलिये इसे पृथक्से गिनती मे नही लिया जा सकता है। यह न कुछ जैसा अश ऊर्ध्वलोकके बताये गये मापमे सबसे नीचे का अश है।

प्रश्न २२६— अधोलोकमे कैसी रचनायें है ?

उत्तर— दक्षिण व उत्तरमे तीन-तीन राजू क्षेत्र छोडकर लोकके मध्यमे १४ राजू उत्सेधकी एक त्रसनाली है, अधोलोककी त्रसनालीके भागमे ७ नरकोकी रचना है। नरक ७ पृथ्वियोमे है।

प्रश्न २२७— नरककी ७ पृथ्वियाँ किस क्रमसे व्यवस्थित है ?

उत्तर— इनमे सबसे ऊपर मेरुपर्वतकी आधारभूत रत्नप्रभा नामकी पृथ्वी है। इसका

बाहुल्य (मोटाई) एक लाख अस्सी हजार योजन है। इसके भी खरभाग, पंकभाग, अब्बहुल-भाग, ये तीन भाग है। जिनमे खरभाग व पंकभागमे तो भवनवासी व व्यन्तर देवोके आवास है, नीचेके अब्बहुलभागके बिलोमे नारक जीव है। इससे नीचे एक राजू आकाश जाकर नीचे शर्कराप्रभा नामकी दूसरी पृथ्वी ३२ हजार योजन मोटी है। इसके नीचे एक राजू आकाश जाकर इसके नीचे बालुकाप्रभा नामकी तीसरी पृथ्वी २८ हजार योजन मोटी है। इसके नीचे एक राजू आकाश जाकर पंकप्रभा नामकी २४ हजार योजन मोटी चौथी पृथ्वी है। इसके नीचे एक राजू आकाश जाकर २० हजार योजन मोटी धूमप्रभा नामकी पाँचवी पृथ्वी है। इसके नीचे एक राजू आकाश जाकर १६ हजार योजन मोटी तम प्रभा नामकी छठवी पृथ्वी है। इसके नीचे एक राजू आकाश जाकर ८ हजार योजन मोटी महातम-नामकी ७वी पृथ्वी है। इसके नीचे एक राजू प्रमाण आकाश है।

प्रश्न २२८– क्या पृथ्वीका माप ७ राजू क्षेत्रसे अतिरिक्त है ?

उत्तर—पृथ्वी राजूसे अतिरिक्त क्षेत्र नही है, किन्तु राजूके सामने पृथ्वीका बाहुल्य न कुछसा है, इसलिये नीचे एक एक राजू आकाशका वर्णन किया है।

प्रश्न २२९– इन पृथ्वियोके बिल किस प्रकार है ?

उत्तर– इन पृथ्वियोके इस प्रकार पटल (बिलरचना भाग) है—पहिलीमे १३, दूसरीमें ११, तीसरीमे ९, चौथीमे ७, पाँचवीमे ५, छठीमे ३, सातवीमे १। प्रत्येक पटलमे बिल है। पृथ्वीके भीतर ही भीतर यह क्षेत्र है। इन स्थानोका कही भी मुख नही है, जो पृथ्वीके ऊपर हो। इसलिये इन्हे बिल कहते है।

प्रश्न २३०– ये बिल कितने बडे है ?

उत्तर—कोई बिल सख्यात हजार योजनका है और कोई बिल असख्यात हजार योजनका है।

प्रश्न २३१– किस पृथ्वीमे कितने बिल है ?

उत्तर- पहिलीमे ३० लाख बिल है। दूसरीमे २५ लाख, तीसरीमे १५ लाख, चौथीमे १० लाख, पाँचवीमे ३ लाख, छठीमे ९९९९५ व सातवीमे केवल ५ बिल है। इन सबका वर्णन धर्मग्रन्थोसे देख लेना चाहिये। विस्तार भयसे यहाँ नही लिखते है।

प्रश्न २३२-- इन बिलोमे रहने वाले नारकी कैसे जीव होते है ?

उत्तर-- जो जीव जीवहिंसक, चुगल, दगाबाज, चोर, डाकू, व्यभिचारी और अधिक तृष्णा वाले होते है वे मरकर नरकगतिमे जन्म लेते है। इन नारकियोको शीत, उष्ण, भूख, प्यास आदिकी तीव्र वेदना रहती है। वेदना मेटनेका वहाँ जरा भी साधन नही है। इनकी खोटी देह होती है। ये परस्पर लड़ते, काटते, छेदते रहते है। इनका शरीर ही हथियार बन

जाता है, ऐसी खोटी विक्रिया है। इनकी आयु कमसे कम दस हजार वर्ष और अधिकसे अधिक ३३ सागरकी होती है। लडते-लड़ते शरीरके खण्ड-खण्ड हो जाते है और पारेकी तरह फिर मिल जाते है। इनकी बीचमे मृत्यु भी नही होती।

प्रश्न २३३-- जीव जिस कर्मके उदयसे नारकी होता है ?

उत्तर-- नरकायु, नरकगति आदि कर्मोके उदयसे जीव नारकी होता है। इन कर्मोका बध निजस्वभावके श्रद्धानसे च्युत रहकर विषयोकी लम्पटताके परिणामके निमित्तसे होता है।

प्रश्न २३४-- नरकभवके दुःखोसे बचनेका क्या उपाय है ?

उत्तर-- निज स्वभावकी प्रतीति करना नरकभवसे मुक्त होनेका उपाय है।

प्रश्न २३५-- मध्यलोककी क्या-क्या रचनाये है ?

उत्तर-- मध्यलोक एक राजू तिर्यग्विस्तार वाला है इसके ठीक बीचमे सुदर्शन नामक मेरूपर्वत है। यह जम्बूद्वीपके ठीक बीचमे है। जिस द्वीपमे हम रहते है यह वही जम्बूद्वीप है, इसका विस्तार एक लाख योजनका है। इस द्वीपकी दक्षिण दिशामे किनारेपर जम्बूद्वीपके १/१९० भागमे भरतक्षेत्र है। इस भरतक्षेत्रके आर्यखण्डमे हम रहते है। इसके उत्तरकी ओर २/१९० विस्तारमे हिमवान पर्वत है। ४/१९० विस्तारमे हैमवत्क्षेत्र है, इसमे सदा जघन्य-भोगभूमि रहती है। ८/१९० विस्तारमे महाहिमवान पर्वत है। १६/१९० विस्तारमे हरिक्षेत्र है, यहाँ सदा मध्यम भोगभूमि रहती है। ३२/१९० विस्तारमे निषध पर्वत है। ६४/१९० विस्तारमे विदेहक्षेत्र है। इसके थोडेसे देवकुरु उत्तरकुरु क्षेत्रको छोडकर जिसमे कि सदा उत्तमभोगभूमि रहती है, समस्त विदेह क्षेत्रमे सदा मुक्तिका मार्ग चलता रहता है तथा अनेक भव्य जीव मुक्त होते रहते है। यहाँ तीर्थंकर भी सदा पाये जाते है। इसके पश्चात् उत्तरकी ही ओर ३२/१९० विस्तारमे नील पर्वत है। १६/१९० विस्तारमे रम्यक्क्षेत्र है। यहाँ सदा मध्यमभोगभूमि रहती है। ८/१९० विस्तारमे रुक्मि पर्वत है। ४/१९० विस्तारमे हैरण्य-वत्क्षेत्र है, इसमे सदा मध्यमभोगभूमि रहती है। २/१९० विस्तारमे शिखरी पर्वत है। १/१९० विस्तारमे ऐरावत क्षेत्र है, इसमे भरतक्षेत्रवत् रचना रहती है। भरत ऐरावत क्षेत्रोमे बीचमे विजयार्द्ध पर्वत भी है। विदेहमे निषध व नीलसे मेरूके समीप तक दो-दो गजदन्त पर्वत है। कुलाचल आदि पर्वतोपर अकृत्रिम जिनभवन व जिनचैत्यालय है।

प्रश्न २३६-- जम्बूद्वीपमे आगे क्या है ?

उत्तर-- जम्बूद्वीपसे आगे चारो ओर लवणसमुद्र है। इसके दोनो तरफ वेदिका है। इस समुद्रका विस्तार एक ओर दो लाख योजन है। यह चूडीके आकारका गोल याने वृत्त है।

प्रश्न २३७-- लवण समुद्रके आगे क्या है ?

उत्तर—लवणसमुद्रसे आगे चारो ओर धातकी खण्ड नामका द्वीप है। इसमें दक्षिण और उत्तरमे वेदिकासे वेदिका तक एक-एक इष्वाकार पर्वत है, जिससे दो भाग इस द्वीपके हो जाते है। प्रत्येक भाग ७ क्षेत्र, ६ कुलाचल, १ मेरुपर्वत है। इस तरह धातकी खण्डमें १४ क्षेत्र, १२ कुलाचल, २ मेरु है। इनमे व्यवहारका वर्णन भरतके क्षेत्रोंकी तरह जानना। इस द्वीपका विस्तार एक ओर ४ लाख योजन है। यह भी चूडीके आकारका वृत्त है व आगे सभी द्वीप समुद्र इसी प्रकार गोल एक दूसरेको घेरे हुये है।

प्रश्न २३८— धातकी खण्ड द्वीपसे आगे क्या है?

उत्तर— धातकी खण्ड द्वीपसे आगे चारो ओर कालोद समुद्र है। इसके दोनों ओर दो वेदिकायें है। इसका विस्तार एक ओर ८ लाख योजम है।

प्रश्न २३९—कालोद समुद्रमे आगे क्या है?

उत्तर—कालोद समुद्रसे आगे पुष्करवर द्वीप है। इसका एक ओर विस्तार १६ लाख योजन है। इसके बीच चारो ओर गोल मानुषोत्तनामा पर्वत है। इस पूर्वार्द्धमे धातकी खण्ड द्वीप जैसी रचना है। यहाँ तक ही मनुष्यलोक है। इससे परे उत्तरार्द्धमे तथा आगे आगे द्वीप और समुद्र असंख्यात है। उनमेसे अन्तिम द्वीप व समुद्रको छोडकर सबमे कुभोगभूमि जैसा व्यवहार है।

प्रश्न २४०—अन्तिम द्वीपमे व सागरमे क्या रचना है?

उत्तर—स्वयभूरमण नामक अन्तिम द्वीप और स्वयभूरमण नामक अन्तिम समुद्रमे कर्मभूमि जैसी रचना है, किन्तु उसमे है तिर्यञ्च ही। इसी द्वीप व समुद्रमे बहुत बडी अवगाहना वाले भ्रमर, बिच्छू, मत्स्य आदि पाये जाते है।

मध्यलोकका वर्णन भी बहुत बडा है, इसे धर्मग्रन्थोसे देख लेना चाहिये। विस्तारभय से यहा नही लिखा है।

प्रश्न २४१—मध्यलोकके वर्णनसे हमे क्या प्रेरणा मिलती है?

उत्तर—विदेहकी रचनासे यह बोध हुआ कि साक्षात् मोक्षमार्ग सदा खुला हुआ है। मध्यलोकमे ढाई द्वीपमे, नन्दीश्वरद्वीपमे व तेरहवें द्वीपमे व अन्यत्र अकृत्रिम चैत्यभवन है। उनके बोधसे भक्ति उमडती है। तथा सर्वसारकी बात यह है कि यदि निज शुद्ध आत्मतत्त्व का श्रद्धान ज्ञान आचरणरूप समाधिभाव हो गया तो ससारके दुःखोसे मुक्त हुआ जा सकता है अन्यथा मध्यलोकमे भी अनेक प्रकारके कुमानुप व तिर्यञ्च भव धारण करके भी ससार ही बढेगा। यह मनुष्यजन्म अनुपम जन्म है, इसे पाकर भेदरत्नत्रय व यथायोग्य अभेदरत्नत्रय की भावनासे अपना निज निश्चयलोक सफल करो।

प्रश्न २४२—ऊर्ध्वलोककी क्या-क्या रचनायें है?

उत्तर– मेरुकी चूलिकासे ऊपर लोकके अन्त तक ऊर्ध्वलोक कहलाता है। जिसकी ७ राजू त्रसनालीमे देवोके विमान है और कई सर्वोपरि सिद्धलोक है। ऊर्ध्वलोककी त्रसनाली मे पहिले ऊपर ऊपर ८ कल्पोमे १६ स्वर्ग है। इसके ऊपर ग्रैवेयकविमान है, इसके ऊपर अनुदिश विमान है, इसके ऊपर अनुत्तरविमान है, इसके ऊपर सिद्धशिला है और इसके आगे ऊपर सिद्धलोक है।

प्रश्न २४३– प्रथमकल्पमे कैसी रचना है ?

उत्तर— सुदर्शन मेरुकी चूलिकाके ऊपर १॥ राजू तक प्रथम कल्प है। इस कल्पमे ३१ पटल है अर्थात् ऊपर ऊपर ३१ जगह विमानोकी अवस्थिति है। जैसे पहिले पटलमें मध्यमे ऋतुनामक इन्द्रक विमान है, यह विमान मेरु चूलिकाके ऊपर बालकी मोटाई प्रमाण अन्तर छोडकर अवस्थित है। इसकी चारो दिशाओमे ६३-६३ विमान है, विदिशाओमे ६२-६२ विमान है, मध्यमे अनेक विमान है। ये विमान कई सख्यात योजन विस्तार वाले है और कई असख्यात योजन विस्तार वाले है। इसी तरह ऊपरके पटलोमे रचना जानना, केवल दिशावोमे व विदिशावोमे १-१ विमान कम होते गये है। प्रकीर्णक विमानोकी भी संख्या यथासम्भव कम होती गई है।

उक्त ३१ पटलोमे उत्तरदिशा, आग्नेयदिशा, वायव्यदिशाकी पक्तिके विमानो व आग्नेय उत्तरके बीच व वायव्य उत्तर दिशाके मध्यके प्रकीर्णक विमानोका अधिपति ईशान इन्द्र है और शेष सब विमानोका याने दक्षिण, पूर्व, पश्चिम, ईशान, नैऋत–इन पाँच दिशाओ की पक्तिके विमानो व छहो अन्तरालोके प्रकीर्णक विमानोका अधिपति सौधर्म इन्द्र है। सौधर्म इन्द्र दक्षिणेन्द्र कहलाता है और ईशानइन्द्र उत्तरेन्द्र कहलाता है। दक्षिणेन्द्रके विमान अधिक होते है, उत्तरेन्द्रके विमान कम होते है। इन सब विमानोमे देव देविया रहती है। इन देवोकी आयु प्रायः दो सागर तकको होती है। देवियोकी आयु अनेक पल्य प्रमाण होती है। ऊपरके स्वर्गों आदिके देवोकी आयु बढती जाती है। देविया ८ कल्पो तक ही होती हैं और उनकी आयु पल्यो प्रमाण ही बढकर भी रहती है। सब देवियोकी उत्पत्ति पहिले कल्पमें ही होती है। सब विमानोमे अकृत्रिम जिनचैत्यभवन भी है।

प्रश्न २४४—द्वितीय कल्पमें कैसी रचना है ?

उत्तर—प्रथम कल्पसे ऊपर १॥ राजू पर्यन्त रहने वाले द्वितीय कल्पमे ७ पटल है। इनमें दक्षिणेन्द्र सनत्कुमार इन्द्र है और उत्तरेन्द्र महेन्द्र इन्द्र है। दक्षिण विभागका नाम सानत्कुमार स्वर्ग है और उत्तर विभागका नाम माहेन्द्र स्वर्ग है।

प्रश्न २४५– तृतीय कल्पमें क्या रचना है ?

उत्तर—तृतीय कल्पमे ४ पटल है—दक्षिण विभागका नाम ब्रह्म स्वर्ग है और उत्तर

विभागका नाम ब्रह्मोत्तर स्वर्ग है। यह कल्प द्वितीय कल्पसे ऊपर आधा राजू पर्यन्त अवस्थित है। इस कल्पका ब्रह्म नामक एक ही इन्द्र है।

प्रश्न २४६– चतुर्थ कल्पकी कैसी रचना है ?

उत्तर– तृतीय कल्पसे ऊपर आधा राजू पर्यन्त आकाशमे चतुर्थ कल्प है। इसमें दो पटल है। इनके दक्षिणविभागका नाम लान्तव स्वर्ग है व उत्तर विभागका नाम कापिष्ठ स्वर्ग है। इस कल्पका इन्द्र लान्तव नामक एक ही है।

प्रश्न २४७– पञ्चम कल्पकी कैसी रचना है ?

उत्तर—चतुर्थ कल्पसे ऊपर आधा राजू पर्यन्त आकाशमे पञ्चम कल्प है। इसमें पटल एक है। इसके दक्षिण विभागका नाम शुक्र स्वर्ग है और उत्तर विभागका नाम महाशुक्र स्वर्ग है। इसमे शुक्र नामक एक ही इन्द्र है।

प्रश्न २४८– छठे कल्पकी कैसी रचना है ?

उत्तर– पञ्चम कल्पसे ऊपर आधा राजू पर्यन्त आकाशमें छठा कल्प है। इसमें भी पटल एक है। इसके दक्षिण विभागका नाम शतार स्वर्ग है और उत्तर विभागका नाम सहस्रार स्वर्ग है। इस कल्पमे शतार नामक एक ही इन्द्र है।

प्रश्न २४९—सातवे कल्पकी कैसी रचना है ?

उत्तर—छठे कल्पसे ऊपर आधा राजू पर्यन्त आकाशमें सातवा कल्प है। इसमे ३ पटल हैं। जिनके दक्षिण विभागका नाम आनत स्वर्ग है और अधिपति आनतनामक इन्द्र है। उत्तर विभागका नाम प्राणत स्वर्ग है और अधिपति प्राणत इन्द्र है।

प्रश्न २५०—आठवे कल्पकी कैसी रचना है ?

उत्तर– सातवें कल्पके ऊपर आधा राजू पर्यन्त आकाशमे आठवां कल्प है। इसमे ३ पटल है। जिनके दक्षिण विभागका नाम आरण स्वर्ग है और अधिपति आरणनामक इन्द्र है। उत्तर विभागका नाम अच्युत स्वर्ग है और अधिपति अच्युत इन्द्र है।

प्रश्न २५१– ग्रैवेयकविमानोकी कैसी रचना है ?

उत्तर– आठवे कल्पके ऊपर १ राजू पर्यन्त आकाशमे ग्रैवेयक, अनुदिश, अनुत्तर व सिद्धशिला एवं सिद्धलोक है। जिसमे ग्रैवेयककी रचना इस प्रकार है–ग्रैवेयकमे पटल ९ है। भव्यमिथ्यादृष्टि जीव व अभव्य भी ग्रैवेयको तकके देवोमे ही जन्म ले सकते है। किन्तु अभव्य जीव दक्षिणेन्द्र, लोकान्तिक देव, लोकपाल व प्रधान दिक्पाल नही हो सकते है। ग्रैवेयकोमे उत्पत्ति मुनिलिङ्ग धारण करने वाले तपस्वी साधुवोकी ही हो सकती है, चाहे वे द्रव्यलिङ्गी हो या भावलिङ्गी। ग्रैवेयकवासी देव सब अहमिन्द्र है।

प्रश्न २५२—अनुदिश विमानोकी कैसी रचना है ?

उत्तर– ग्रैवेयकसे ऊपर अनुदिश है। इसमे १ पटल है व कुल विमान ९ हैं—१ मध्यमे और ८ दिशाओमे। इन विमानोमे सम्यग्दृष्टि मुनि ही उत्पन्न हो सकता है। ये सब अहमिन्द्र होते है। इनकी आयु जघन्य ३१ सागर व उत्कृष्ट ३२ सागरकी होती है।

प्रश्न २५३– अनुत्तर विमानोकी कैसी रचना है ?

उत्तर– अनुदिशसे ऊपर अनुत्तर है। इसमे १ पटल है व विमान केवल ५ है। मध्यमे तो सर्वार्थसिद्ध नामक विमान है, पूर्वमे विजय, दक्षिणमे वैजयन्त, पश्चिममे जयन्त और उत्तरमे अपराजित विमान है। सर्वार्थसिद्धिके देवोकी आयु ३३ सागर है। ये १ भव मनुष्यका धारण कर मोक्षको प्राप्त होते है। विजयादिक ४ विमानोके वासी देवोकी आयु जघन्य ३२ सागर व उत्कृष्ट ३३ सागरकी होती है। ये दो भवावतारी होते है। ये सब अहमिन्द्र है।

प्रश्न २५४—सिद्धशिला कहाँपर और कैसी है ?

उत्तर—सर्वार्थसिद्धि विमानकी चोटीसे १२ योजन ऊपर सिद्धशिला है। यह मनुष्य लोकके सीधमे ऊपर है और ४५ लाख योजनकी विस्तार वाली है, इसकी मोटाई ८ योजन है। इसका आकार छत्रकी तरह है। इसपर सिद्धभगवान तो विराजमान नही है, किन्तु इसके कुछ ऊपर इस सिद्धशिलाके विस्तार प्रमाण क्षेत्रमे सिद्धभगवान विराजमान है। बीचमे वातवलयोके सिवाय अन्य कोई रचना नही है, अतः इसे सिद्धशिला कहते है।

प्रश्न २५५—सिद्धलोकका सक्षिप्त विवरण क्या है ?

उत्तर—सिद्धशिलाके ऊपर योजन बाहुल्य वाला घनोदधि वातवलय है। इसके ऊपर योजन बाहुल्य वाला घनवातवलय है, इसके ऊपर बाहुल्य प्रमाण तनुवातवलय है। इस तनुवातवलयके अन्तमे सिद्धभगवान विराजमान है। जो साधु मनुष्यलोकमे जिस स्थानसे कर्ममुक्त हुए है उसकी सीधमे ऊपर एक समयमे ही आकर लोकके अत तक यहाँ स्थित है। यही लोकका भी अन्त हो जाता है।

प्रश्न २५६—यह ३४३ घनराजूप्रमाण लोक किसके आधारपर स्थित है ?

उत्तर—इस लोकके सब ओर घनोदधिवातवलय है। उसके बाद घनवातवलय है, उसके बाद तनुवातवलय है। इन वातवलयोके आधारपर सब लोक अवस्थित है। ये वातवलय भी लोकमे ही शामिल है। वातवलय वायुस्वरूप होनेसे ये किसीके आधारपर नही है, मात्र आकाश ही उनका आधार है।

प्रश्न २५७—इस लोकानुप्रेक्षासे विशेष लाभ क्या है ?

उत्तर– लोकके आकार रचनाओके बोधरूप विशेष परिचयसे उत्कृष्ट वैराग्य होता है

और इसको सस्थानका विचय होनेसे सस्थानविचय नामका उत्कृष्ट धर्मध्यान होता है।

प्रश्न २५८—बोधिदुर्लभानुप्रेक्षा किसे कहते है ?

उत्तर— निज शुद्धआत्मतत्त्वका श्रद्धान, ज्ञान, आचरणरूप बोधिका पाना अत्यन्त दुर्लभ है। इस प्राप्त हो रही बोधिकी वृद्धि और दृढता करना चाहिये, ऐसे चिन्तवन करने और समाधिकी और उन्मुख होनेको बोधिदुर्लभानुप्रेक्षा कहते है।

प्रश्न २५९—बोधि अत्यन्त दुर्लभ कैसे है ?

उत्तर— इस जीवने अनादिकालमे तो एकेन्द्रिय (साधारणवनस्पति) मे ही रहकर अनन्त काल व्यतीत किया, उसके पश्चात् सुयोग हुआ तो उत्तरोत्तर दुर्लभ द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असज्ञी पचेन्द्रिय, संज्ञी पचेन्द्रिय, पर्याप्त, सज्ञी, मनुष्य, उत्तम देश, उत्तम कुल, इन्द्रियोका सामर्थ्य, दीर्घआयु, प्रतिभा, धर्मश्रवण, धर्मग्रहण, धर्मश्रद्धान, विपयसुखोकी निवृत्ति, कपायोकी निवृत्ति व रत्नत्रयकी प्राप्ति होती है। अत: आत्मश्रद्धान, आत्मज्ञान व आत्माचरण रूप बोधिदुर्लभ है।

प्रश्न २६०— इस जीवने निम्न दशाओमे रहकर अनन्त परिवर्तन क्यो किये ?

उत्तर— मिथ्यात्व, विषयासक्ति, कषाय आदि परिणामोके कारण इस जीवकी निम्न दशा हुई।

प्रश्न २६१—बोधि प्राप्त करके यदि प्रमाद रहा तो क्या हानि होगी ?

उत्तर—अत्यन्त दुर्लभ रत्नत्रयरूप बोधिको पाकर यदि प्रमाद किया तो संसाररूपी भयानक बनमे दीन होकर चिरकाल तक भ्रमणकर दु:ख भोगना पड़ेगा।

प्रश्न २६२—बोधि और समाधिमे क्या अन्तर है ?

उत्तर—जिस जीवके सम्यग्दर्शन नही है उस जीवको सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्रकी प्राप्ति होना सो तो बोधि है और रत्नत्रय बनाये रहना, वृद्धि करना तथा भवान्तरमे ले जाना सो समाधि है। निर्वाण प्राप्त कर लेना यह परमसमाधि है।

प्रश्न २६३—धर्मानुप्रेक्षा किसे कहते है ?

उत्तर—धर्मके विना ही यह जीव सहजसुखसे दूर रह कर इन्द्रियाभिलापाजनित दु:खोको सहना हुआ ८४ लाख योनियोमे भ्रमण करता हुआ चला आया है। जब इस जीव को धर्मका शरण हो जाता है तब राजाधिराज चक्रवर्ती देवेन्द्र जैसे उत्कृष्ट पदोके सुख, भोगा कर अभेदरत्नत्रयभावनारूप परमधर्मके प्रसादसे अरहन्त होकर सिद्ध अवस्थाको प्राप्त होता है। इत्यादि धर्मकी उत्कृष्टताके चिन्तवन करने और धर्माचरणको धर्मानुप्रेक्षा कहते है।

प्रश्न २६४—धर्मका क्या स्वरूप है ?

उत्तर— धर्मके स्वरूपका कई प्रकारोसे वर्णन है, उन्हें क्रमसे लिखते है। उनमे प्राय:

उत्तरोत्तर पहिलेकी अपेक्षा आगेको व्यवहार या बहिरङ्गरूप लक्षण जानने चाहियें:—

(१) अखण्ड चैतन्यस्वभावको धर्म कहते है।

(२) अखण्ड चैतन्यस्वभावके पूर्ण अनुरूप परिणमनको धर्म कहते है।

(३) मोह, क्षोभसे सर्वथा मुक्त आत्मपरिणमनको धर्म कहते है।

(४) रागद्वेषकी बाधारहित परमअहिंसाको धर्म कहते है।

(५) निज शुद्धात्माके श्रद्धान, ज्ञान, आचरणरूप अभेदरत्नत्रयको धर्म कहते है।

(६) शुद्धात्माके सवेदनको धर्म कहते है।

(७) शुद्धात्माके अवलम्बनको धर्म कहते है।

(८) शुद्धात्मतत्त्वके उपयोगको धर्म कहते है।

(९) शुद्धात्मतत्त्वकी भावनाको धर्म कहते है।

(१०) शुद्धात्मतत्त्वकी प्रतीति, दृष्टिको धर्म कहते है।

(११) उत्तम क्षमादि दस विशुद्ध भावोको धर्म कहते है।

(१२) जीवादि तत्त्वोके यथार्थ श्रद्धान, यथार्थ ज्ञान और अव्रतत्यागरूप भेदरत्नत्रय को धर्म कहते है।

(१३) जो दुःखोसे छुटाकर उत्तम सुखमे ले जावे उसे धर्म कहते है।

(१४) समता, वन्दनादिक साधुके षट् आवश्यकोके पालन करनेको धर्म कहते है।

(१५) देवपूजा गुरूपास्ति आदिक श्रावकके ६ कर्तव्योके पालन करनेको धर्म कहते है।

(१६) जीवदया करनेको धर्म कहते है।

प्रश्न २६५– परीषहजय नामक भावसम्वर विशेष किसे कहते है ?

उत्तर—अनेक परीषहो, वेदनाओका तीव्र उदय होनेपर भी सुख-दुःख, लाभ, अलाभ आदिमे समतापरिणामके द्वारा जो कि सम्वर और निर्जराका कारण है, निज शुद्धात्मतत्त्वकी भावनासे उत्पन्न सहज आनन्दसे चलित नही होनेको परीषहजय कहते है।

प्रश्न २६६– परीषहजय कितने प्रकारके है ?

उत्तर– परीषहजय २२ प्रकारके है—(१) क्षुधापरीषहजय, (२) तृषापरीषहजय, (३) शीतपरीषहजय, (४) उष्णपरीषहजय, (५) दशमशकपरीषहजय, (६) नाग्न्यपरीषहजय, (७) अरतिपरीषहजय, (८) स्त्रीपरीषहजय, (९) चर्यापरीषहजय, (१०) निषद्यापरीषहजय, (११) शय्यापरीषहजय, (१२) आक्रोशपरीषहजय, (१३) बधपरीषहजय, (१४) याचनापरीषहजय, (१५) अलाभपरीषहजय, (१६) रोगपरीषहजय, (१७) तृणस्पर्शपरीषहजय, (१८) मलपरीषहजय, (१९) सत्कारपुरस्कारपरीषहजय, (२०) प्रज्ञापरीषहजय, (२१) अज्ञानपरीषहजय, (२२) अदर्शनपरीषहजय।

प्रश्न २६७– क्षुधापरीषहजयका क्या स्वरूप है ?

उत्तर– मास दो मास, चार मास, छः मास तकके उपवास होनेपर भी अथवा एक वर्ष तक आहार न करनेपर भी अथवा अनेक प्रकारकी तपस्याओसे शरीर कृश होनेपर भी क्षुधावेदनाके कारण अपने विशुद्ध ध्यानसे च्युत न होना और मोक्षमार्गमे विशेष उत्साहसे लगना सो क्षुधापरीषहजय है। ये साधु ऐसे समय ऐसा भी चिन्तवन करते है कि परतन्त्र होकर नरकगतिमे सागरो पर्यन्त क्षुधा सही। तिर्यंच पर्यायमें परके वश होकर मनुष्य पर्यायमें जेलखाने आदिमे रहकर अनेक क्षुधावेदनाये सही। यहा तो यह वेदना क्या है जब कि मै आत्माधीन, स्वतन्त्र हू आदि।

प्रश्न २६८—तृषापरीषहजय किसे कहते है ?

उत्तर– प्रतिदिन भ्रमण करते रहनेपर भी कडुवा, तीखा आदि यथाप्राप्त भोजन करने पर भी आतापनयोग आदि अनेक तपस्या करनेपर भी स्नान, परिसेचन आदिका परित्याग करने वाले साधुके आत्मध्यानसे विचलित न होने और सतोषजलसे तृप्त रहनेको तृषापरीषहजय कहते है।

प्रश्न २६९—शीतपरीषहजयका क्या स्वरूप है ?

उत्तर– तीव्र शीत ऋतुमे हवा, तुषारके बीच मैदानमे, बनमे आत्मसाधनाके अर्थ आवास करने पर भी पूर्वके आरामोका स्मरण न करते हुए नरकादिकी शीतवेदनाओका परिज्ञान रखने वाले साधुके शीतवेदनाके कारण आत्मसाधनासे चलित न होनेको शीतपरीषहजय कहते है।

प्रश्न २७०– उष्णपरीषहजय किसे कहते है ?

उत्तर-- तीव्र ग्रीष्मकालमे तप्त मार्ग पर विहार करने पर भी, जलते हुये बनके बीच रहने पर भी एव अन्य ऐसे अनेक प्रसङ्ग होने पर भी भेदविज्ञानके बलसे समतापरिणाममे स्थिर रहनेको उष्णपरीषहजय कहते है।

प्रश्न २७१– दशमशकपरीषहजय किसे कहते है ?

उत्तर– डास, मच्छर, बिच्छू, चीटी आदि कीटोके काटनेसे उत्पन्न हुई वेदनाको आत्मीय आनन्दके अनुरागवश समतासे सहन करनेको दशमशकपरीषजय कहते है।

प्रश्न २७२– नाग्न्यपरीषह जय किसे कहते है ?

उत्तर—कामिनी निरीक्षण आदि चित्तको मलिन करने वाले अनेक कारणोके मिलने पर भी सहजस्वरूपके साधक नग्नस्वरूप रहनेकी प्रतिज्ञामे स्थिर रहने और निर्विकार रहनेको नाग्न्यपरीषहजय कहते है।

प्रश्न २७३--अरतिपरीषहजय किसे कहते हैं ?

उत्तर—अनिष्ट पदार्थोका समागम हो जाने पर भी पूर्व रतिका स्मरण न करते हुये अरति याने विरोध, ग्लानि न करने और आत्मसाधनामे बने रहनेको अरतिपरीषहजय कहते है ।

प्रश्न २७४– स्त्रीपरीषहजय किसे कहते है ?

उत्तर– रूपयौवनगर्वोन्मित्त युवतीके द्वारा एकान्तमे नाना अनुकूल प्रयत्न करने पर भी निर्विकार रहनेको स्त्रीपरीषहजय कहते है ।

प्रश्न २७५– चर्यापरीषहजय किसे कहते है ?

उत्तर—गुरुजनोकी चिरकाल तक सेवा करनेसे जिनका ज्ञान, ब्रह्मचर्य और वैराग्य दृढ हो गया, ऐसे साधुके गुरु आज्ञासे एकाकी विहार करते हुये पैरमे काटा, ककड आदि तीक्ष्ण नुकीली चीजके छिद जानेपर भी पूर्वानुभूत सवारीके आरामका स्मरण न करते हुये समतासे वेदनाके सहन कर लेने और आत्मचर्यामे उद्यत रहनेको चर्यापरीषहजय कहते है ।

प्रश्न २७६—निषद्यापरीषहजय किसे कहते हैं ?

उत्तर—भयङ्कर बनमे, कङ्करीले व स्थडिल प्रदेशपर ध्यान करते समय व्याधि, उपसर्ग आदिकी बाधाओको समतासे सहकर आसनसे, कायोत्सर्गसे चलायमान न होने और अपने आपमे स्थित होनेको निषद्यापरीषहजय कहते है ।

प्रश्न २७७– शय्यापरीषहजय किसे कहते है ?

उत्तर—स्वाध्याय आदि आवश्यक कर्तव्योके करनेसे हुये शारीरिक थकानके निराकरणार्थ तिकोने, गठीले, ककरीले आदि भूमि पर एक करवट, दण्डवत् आदिसे शयन करते हुये खेद न माननेको शय्यापरीषहजय कहते है । साधु इस समय कोई आकुलता नही करते हैं । जैसे– यह बन हिसक जन्तुओसे व्याप्त है, जल्दी निकल जाना चाहिये अथवा कब रात खत्म होती है आदि ।

प्रश्न २७८– आक्रोशपरीषहजय किसे कहते है ?

उत्तर—किसीके द्वारा बाणोकी तरह मर्मभेदी दुर्वचन, गाली आदिके प्रयोग किये जाने पर भी प्रतीकारमे समर्थ होकर भी उन्हे क्षमा कर देने और अपनेमे विकार उत्पन्न न होने देनेको आक्रोशपरीषहजय कहते है ।

प्रश्न २७९—वधपरीषहजय किसे कहते है ?

उत्तर– किसी चोर, डाकू, वैरी आदिके द्वारा मारे पीटे व प्राणघात किये जानेपर भी अबध्य शुद्धात्मद्रव्यके अनुभवमे स्थिर रहनेको वधपरीषहजय कहते है ।

प्रश्न २८०– याचनापरिषहजय किसे कहते है ?

उत्तर—कितनी ही व्याधि अथवा क्षुधादिकी वेदना होने पर भी औषधि आहार

आदिकी याचना व इशारा आदि न करने और अपने चैतन्यस्वभाव वैभवकी दृष्टिसे संतुष्ट रहनेको याचनापरीषहजय कहते है।

प्रश्न २८१– अलाभपरीषहजय किसे कहते है ?

उत्तर—कितनी ही वेदनाका प्रसङ्ग होनेपर भी आहार, औषधि आदिका अलाभ होने पर, लाभसे अलाभको श्रेयस्कर समझकर धैर्यसे विचलित न होने और आत्मलाभसे तृप्त रहने को अलाभपरीपहजय कहते है।

प्रश्न २८२– रोगपरीपहजय किसे कहते है ?

उत्तर—कष्ट आदि अनेक दुःख रोगोके होनेपर उनके निवारण करनेका ऋद्धि बलसे सामर्थ्य होनेपर भी निर्विकल्पसमाधिकी रुचिके कारण प्रतीकार न करने, समतासे उसे सहने और निरामय आत्मस्वरूपके लक्ष्यसे चलित न होनेको रोगपरीषहजय कहते है।

प्रश्न २८३– तृणस्पर्शपरीषहजय किसे कहते है ?

उत्तर– नुकीला तृण, ककरीली भूमि, पत्थरकी शिला आदिपर विहार व्याधि आदि के कारण हुए देहजश्रमके निवारणार्थ शयन आसन करते हुये खेद न मानने और स्वरूपस्पर्श की ओर ध्यान बनाये रहनेको तृणस्पर्शपरीषहजय कहते है।

प्रश्न २८४– मलपरीपहजय किसे कहते है ?

उत्तर– पसीनेके मलसे दाद, खाज, छाजन आदि तककी वेदनायें हो जानेपर भी पीडा की ओर लक्ष्य न देने, जीवदयाके भावसे रगडना, उबटन आदि न करने और कर्ममल दूर करने वाले स्वानुभवके तपमे लीन रहनेको मलपरीषहजय कहते है।

प्रश्न २८५—सत्कारपुरस्कारपरीषहजय किसे कहते है ?

उत्तर– दूसरोके द्वारा प्रशसा, सम्मान किये जानेपर प्रसन्न न होने व निन्दा अपमान किये जानेपर रुष्ट न होने तथा अनेक चातुर्य तप होनेपर भी कोई मेरी मान्यता नही करता, ऐसा भाव न लाने और निज चैतन्यस्वभावकी महिमामे लगे रहनेको सत्कारपुरस्कारपरीषहजय कहते है।

प्रश्न २८६– प्रज्ञापरीषहजय किसे कहते है ?

उत्तर—मिथ्याप्रवादियोपर विजय प्राप्त करनेपर भी, अनेक विद्यावोके पारगामी होने पर भी गर्व न करने और निज विज्ञानघनस्वभावमे उपयुक्त रहनेको प्रज्ञापरीपहजय कहते है।

प्रश्न २८७—अज्ञानपरीषहजय किसे कहते है ?

उत्तर– अनेक तपोको चिरकालसे करते रहनेपर भी मुझे अवधिज्ञान आदि कोई प्रकृष्ट ज्ञान नही हुआ, बल्कि मुझे लोग मदबुद्धि, मूर्ख आदि कहते है, इस प्रकारके अज्ञान-जनित खेद न करने और ज्ञानसामान्य स्वभावकी दृष्टि द्वारा प्रसन्न रहनेको अज्ञानपरीषहजय

कहते है ।

प्रश्न २८८— अदर्शनपरीषहजय किसे कहते है ?

उत्तर— महोपवासादि अनेक तपस्यावोके करने पर भी अब तक कोई अतिशय या प्रातिहार्य प्रकट नही हुआ । मालूम होता है कि जो यह शास्त्रोमे वर्णित है कि महोपवासादि तपके माहात्म्यसे प्रातिहार्य या ज्ञानातिशय हो जाते है यह मिथ्या है, तप करना व्यर्थ है ऐसे दुर्भाव न होने व सत्यश्रद्धानसे चलित न होकर आत्मदर्शनकी ओर बने रहनेको अदर्शन-परीषहजय कहते है ।

प्रश्न २८९— साधुके एक समयमे अधिकसे अधिक कितनी परीषहोका विजय हो जाता है ?

उत्तर—साधुके एक समयमे अधिकसे अधिक १९ परीषहोका विजय हो जाता है । तीन परीषहे इसलिये कम हो जाती है कि एक समयमे शीत, उष्णसे एक ही होगा व निषद्या, चर्या, शय्यामे से एक ही होगा ।

प्रश्न २९०—परीषहजयसे क्या क्या लाभ है ?

उत्तर— परीषहजयके लाभ इस प्रकार है—

(१) बिना दुःखके अभ्यास किया हुआ ज्ञान दुःख उपस्थित होने पर भ्रष्ट हो सकता है, किन्तु दुःखोमे धैर्य बनाने वाले परीषहजयके अभ्यासीका ज्ञान भ्रष्ट नही हो सकता, अत. परीषहजयसे ज्ञानकी दृढताका लाभ है ।

(२) कर्मोका उदय निष्फल टल जाना ।

(३) पूर्वस्थित कर्मोकी निर्जरा होना ।

(४) नवीन अशुभ कर्मोका व यथोचित शुभ कर्मोका सवर होना ।

(५) सदा निःशङ्क रहना ।

(६) आगामी भयसे मुक्त रहना ।

(७) धैर्य, क्षमा, सतोप आदिकी वृद्धिसे इस लोकमे सुखी रहना ।

(८) पापप्रकृतियोका नाश होनेसे परलोकमे नाना अभ्युदय मिलना ।

(९) सर्व ससार दुःखोसे रहित परमानन्दमय मोक्षपद मिलना इत्यादि अनेक लाभ परीषहजयसे होते है ।

प्रश्न २९१— चारित्रनामक भावसवरविशेष किसे कहते है ?

उत्तर—निज शुद्ध आत्मस्वरूपमे अवस्थित रहनेको चारित्र कहते है ।

प्रश्न २९२—चारित्रके कितने भेद हैं ?

उत्तर—चारित्र तो वस्तुतः एक ही प्रकारका होता है, किन्तु उसके अपूर्ण पूर्ण आदि

की विपक्षासे ५ प्रकारके होते है– (१) सामायिक, (२) छेदोपस्थापना, (३) परिहारविशुद्धि। (४) सूक्ष्मसाम्पराय, (५) यथाख्यातचारित्र।

प्रश्न २९३-- सामायिकचारित्र किसे कहते है ?

उत्तर—सर्व जीव चैतन्यसामान्यस्वरूप है, सब समान है--इस भावनाके द्वारा समता परिणाम होने, स्वरूपानुभवके बलसे शुभ अशुभ सङ्कल्प विकल्प जालसे शून्य समाधिभावके होने, निर्विकार निज चैतन्यस्वरूपके अवलम्बनसे रागद्वेषसे शून्य होने, सुख–दुःख, जीवनमरण लाभ अलाभमे मध्यस्थ होने व विकल्परहित परमनिवृत्तिरूप व्रतके पालनेको सामायिक चारित्र कहते है।

प्रश्न २९४– छेदोपस्थापना चारित्र किसे कहते है ?

उत्तर– सर्वविकल्पपरित्यागरूप सामायिकमे स्थित न रह सकने पर अहिसा व्रत, सत्यव्रत, अचौर्यव्रत, ब्रह्मचर्यव्रत, अपरिग्रहव्रत—इन पाँच प्रकारके व्रतोके द्वारा पापोसे निवृत्त होकर अपने आपको शुद्धात्मतत्त्वकी ओर उन्मुख करनेको छेदोपस्थापनाचारित्र कहते है।

अथवा, उक्त पाँच प्रकारके महाव्रतोमे कोई दोष लगने पर व्यवहार प्रायश्चित व निश्चय प्रायश्चित द्वारा शुद्ध होकर निज शुद्ध आत्मतत्त्वकी ओर उन्मुख होनेको छेदोपस्थापनाचारित्र कहते है ?

प्रश्न २९५– परिहारविशुद्धिचारित्र किसे कहते है ?

उत्तर—रागादि विकल्पोके विशेप पद्धतिसे परिहारके द्वारा आत्माकी ऐसी निर्मलता प्रकट होना जिससे एक ऋद्धिविशेष प्रकट होती है, जिसके कारण विहार करते हुये किसी जीवको रच भी बाधा न हो, उसे परिहारविशुद्धि चारित्र कहते है।

प्रश्न २९६—सूक्ष्म साम्परायचारित्र किसे कहते है ?

उत्तर– सूक्ष्म और स्वानुभवगम्य निज शुद्धात्मतत्त्वके सम्वेदने रूप जिस चारित्रसे अवशिष्ट संज्वलनसूक्ष्मलोभका भी उपशम या क्षय हो उसे सूक्ष्मसाम्परायचारित्र कहते है।

प्रश्न २९७—यथाख्यातचारित्र किसे कहते है ?

उत्तर—जैसा स्वभावसे सहज शुद्ध, कषायरहित आत्माका स्वरूप है वैसे ख्यात याने प्रकट हो जानेको यथाख्यातचारित्र कहते है ?

प्रश्न २९८– उक्त भावसवरविशेषोके द्वारा क्या पापकर्मका ही सवर होता है या पुण्यकर्मका भी सवर होता है ?

उत्तर—निश्चयरत्नत्रयके साधक व्यवहाररत्नत्रयरूप शुभोपयोगमे हुये भावसवरविशेष मुख्यतया पापकर्मके सवरके कारण है, और व्यवहाररत्नत्रय द्वारा साध्य निश्चयरत्नत्रयरूप शुद्धोपयोगमे हुये भावसवरविशेष पाप, पुण्य दोनो कर्मोंके सवर करने वाले होते हैं।

इस प्रकार सवरतत्त्वका वर्णन करके अब निर्जरातत्त्वका वर्णन करते है ।

जह कालेण तवेण य भुत्तरस कम्मपुग्गल जेण ।
भावेण सडदि णेया तस्सडण चेदि णिज्जरा दुविहा ॥३६॥

अन्वय—जेण भावेण जहकालेण य तवेण भुत्तरस कम्मपुग्गल सडदि च तस्सडणं इति णिज्जरा दुविहा णेया ।

अर्थ– जिस आत्मपरिणामसे समय पाकर या तपस्याके द्वारा भोगा गया है रस जिसका, ऐसा कर्मपुद्गल झडता है वह और कर्म पुद्गलोका झडना– इस प्रकार निर्जरा दो प्रकारकी जानना चाहिये ।

प्रश्न १—किस आत्मपरिणामसे कर्मपुद्गलकी निर्जरा होती है ?

उत्तर—निर्विकार चैतन्यचमत्कारमात्र निजस्वभावके सम्वेदनसे उत्पन्न सहज आनद-रसके अनुभव करने वाले परिणामसे कर्म पुद्गलोकी निर्जरा होती है ।

प्रश्न २—अपने समयपर फल देकर झड़ने वाले कर्मोंकी निर्जरामे भी क्या इस शुद्धात्मसम्वेदनपरिणामकी आवश्यकता है ?

उत्तर—आवश्यकता तो नही है, किन्तु यथाकाल होने वाली निर्जरा भी यदि शुद्धा-त्मसवेदन परिणामके रहते हुये होती है तो वह सवरपूर्वक निर्जरा होनेसे मोक्षमार्ग वाली निर्जरा कहलाती है ।

प्रश्न ३– यदि अशुद्ध सम्वेदनाके रहते हुये यथाकाल निर्जरा हो तो क्या वह निर्जरा नही है ?

उत्तर– अशुद्ध सवेदनके होते हुये जो यथाकाल निर्जरा होती है वह अज्ञानियोके होती है । ऐसी निर्जराको उदय शब्दसे कहनेकी प्रधानता है । इसमे थोडा कर्मद्रव्य तो झडता है और बहुत अधिक कर्मद्रव्य बध जाता है । यह मोक्षमार्ग सम्बन्धी निर्जरा नही है और न इस निर्जराका यह प्रकरण है ।

प्रश्न ४– अज्ञानी जीवके बिना कालके, पहिले भी तो निर्जरा हो जाती है, उसे क्या कहेगे ?

उत्तर– उदयकालसे पहिले इस तरह झडनेको उदीरणा कहते हैं । यह उदीरणा भी अशुभ प्रकृतियोकी होती है, क्योकि अज्ञानी जीवके उदीरणा सक्लेशपरिणामवश होती है और अधिक वेदना उत्पन्न करती हुई होती है ।

प्रश्न ५– तपसे कर्म समयसे पहिले क्यो झड जाते है ?

उत्तर–तप इच्छानिरोधको कहते है । जब इच्छा = स्नेहकी चिकनाई या गीलाई नही रहती तब कर्मपुञ्ज बालू रेतकी तरह स्वय झड जाते है ।

प्रश्न ६– क्या कर्मपुञ्ज अटपट झडते है या किसी व्यवस्थासहित झडते है ?

उत्तर—कर्मद्रव्य श्रेणिनिर्जराके क्रमसे निर्जराको प्राप्त होते है । इस श्रेणिनिर्जराका वर्णन लब्धिसार क्षपणसार ग्रथसे देखना । यहाँ विस्तार भयसे नही लिख रहे है ।

प्रश्न ७– निर्जरा कितने प्रकारकी है ?

उत्तर—निर्जरा दो प्रकारकी है—(१) भावनिर्जरा और (२) द्रव्यनिर्जरा ।

प्रश्न ८– भावनिर्जरा किसे कहते हैं ?

उत्तर– जिस आत्मपरिणामसे कर्म झडते है उस आत्मपरिणामको भावनिर्जरा कहते है ।

प्रश्न ९– द्रव्यनिर्जरा किसे कहते है ?

उत्तर– कर्मोके झडनेको द्रव्यनिर्जरा कहते है ।

प्रश्न १०– सवरपूर्वक निर्जराका मुख्य कारण क्या है ?

उत्तर—सवरपूर्वक निर्जराका मुख्य कारण तप है और जितने परिणाम सवरके कारण है वे सब निर्जराके भी कारण है ।

प्रश्न ११– निर्जरा क्या केवल पापकर्मोकी होती है या पाप, पुण्य दोनो कर्मोंकी ?

उत्तर– सरागसम्यग्दृष्टि जीवोके प्रायः पापकर्मोकी निर्जरा होती है और वीतराग सम्यग्दृष्टियोके पाप व पुण्य दोनो कर्मोकी निर्जरा होती है ।

प्रश्न १२– सरागसम्यग्दृष्टियोके पापके निर्जराकी तरह पुण्यकी निर्जराकी तरह पुण्य निर्जरा न होनेसे क्या ससारकी वृद्धि होगी ?

उत्तर—ससारके मूल कारण पाप है । उनकी तो विशेषतया निर्जरा सम्यग्दृष्टि करता ही है, अत ससारकी वृद्धि नही होती तथा पापकर्मकी निर्जरा होनेसे कर्मभारसे लघु हुआ यह अन्तरात्मा शीघ्र वीतराग सम्यग्दृष्टि हो जाता है और तब पाप पुण्यका नाश कर शीघ्र ससारच्छेद कर सकता है ।

इस प्रकार निर्जरातत्त्वका वर्णन करके अब मोक्षतत्त्वका वर्णन करते है—

सव्वस्स कम्मणो जो खयहेदू अप्पणो हु परिणामो ।
णेयो स भावमोक्खो दव्वविमोक्खो य कम्मपुदभावो ॥३७॥

अन्वय—हु अप्पणो जो परिणामो सव्वस्स कम्मणो खयहेदू स भावमोक्खो य कम्मपुदभावो दव्वविमोक्खो णेयो ।

अर्थ—निश्चयसे आत्माका जो परिणाम समस्त कर्मके क्षयका कारण है उसे तो भावमोक्ष और कर्मोके पृथक् हो जानेको द्रव्यमोक्ष जानना चाहिये ।

प्रश्न १– आत्माका कौनसा परिणाम कर्मक्षयका कारण है ?

उत्तर—निश्चयरत्नत्रयात्मक कारणसमयसाररूप आत्माका परिणाम कर्मक्षयका कारण है।

प्रश्न २—कारणसमयसार क्या है ?

उत्तर—कारणसमयसार २ प्रकारसे जानना चाहिये–(१) सामान्यकारणसमयसार, (२) विशेषकारणसमयसार।

प्रश्न ३—सामान्यकारणसमयसार किसे कहते है ?

उत्तर– अनाद्यनन्त, अखण्ड, अहेतुक चैतन्यस्वभावको सामान्यकारणसमयसार कहते है। इसका दूसरा नाम पारिणामिक भाव या परमपारिणामिक भाव है।

प्रश्न ४– क्या सामान्यकारणसमयसार मोक्षका कारण नही है ?

उत्तर– सामान्यकारणसमयसारकी अशुद्ध शुद्ध नाना परिणतियाँ होती रहती है, केवल मोक्षका ही कारण हो ऐसा नही है अथवा उसका स्वय स्वरूप पर्याय आदि भेद कल्पनासे रहित है अत. वह मोक्षहेतु नही है।

प्रश्न ५– सामान्यकारणसमयसारकी दृष्टि हुये बिना तो मोक्षमार्गका भी प्रारम्भ नही होता, फिर वही मोक्षहेतु कैसे नही है ?

उत्तर—सामान्यकारणसमयसारकी दृष्टि, प्रतीति, आलम्बन, अनुभूति ये सब मोक्षके हेतु है, किन्तु सामान्यकारणसमयसार स्वय न हेतु है और न कार्य है तथा न अन्य कल्पनागत है। यह तो सामान्यस्वरूप है।

प्रश्न ६ – विशेषकारणसमयसार किसे कहते है ?

उत्तर—सामान्यकारणसमयसारकी दृष्टि, प्रतीति, आलम्बन, भावना, अनुभूति, अनुरूप परिणति ये सब विशेषकारणसमयसार है।

प्रश्न ७– मोक्षका साक्षात् हेतु क्या है ?

उत्तर—सामान्यकारणसमयसारके अनुरूप परिणमनरूप विशेष कारणसमयसार मोक्षका साक्षात् हेतु है। (इसके दूसरे नाम निश्चयरत्नत्रय, अभेदरत्नत्रय, एकत्व वितर्क अवीचार शुक्लध्यान, परमसमाधि, वीतरागभाव आदि है)।

प्रश्न ८—तब तो विशेषकारणसमयसारका ही ध्यान करना चाहिये ?

उत्तर—नही ध्येय तो सामान्यकारणसमयसार होता है। विशेषकारणसमयसार तो कही ध्यानरूप और कही ध्यानके फलरूप है।

प्रश्न ९—भावमोक्ष किस गुणस्थानमे है ?

उत्तर– भावमोक्ष १३ वे गुणस्थानमे है और आत्मद्रव्यकी अपेक्षा भावमोक्ष याने

जीवमोक्ष अतीत गुणस्थान होते ही हो जाता है।

प्रश्न १०– द्रव्यमोक्ष किस गुणस्थानमे होता है ?

उत्तर– घातक कर्मोंकी अपेक्षासे द्रव्यमोक्ष १३वे गुणस्थानमे है और समस्त कर्मकी मुक्तिकी अपेक्षा द्रव्यमोक्ष अतीत गुणस्थान होते ही हो जाता है।

प्रश्न ११-- मुक्तावस्थामे आत्माकी क्या स्थिति है ?

उत्तर– मुक्त परमात्मा केवलज्ञानके द्वारा तीन लोक, तीन कालवर्ती सर्वद्रव्य गुण-पर्यायोको जानते रहते है, केवलदर्शनके द्वारा सर्वज्ञायक आत्माके स्वरूपको निरन्तर चेतते रहते है, अनन्त आनन्दके द्वारा पूर्ण निराकुलतारूप सहज परमआनन्दको भोगते रहते है। इसी प्रकार समस्त गुणोके शुद्ध विकासका अनुभव करते रहते है।

प्रश्न १२– किन कर्मप्रकृतियोका किस गुणस्थानमे पूर्ण क्षय हो जाता है ?

उत्तर– जिस मनुष्यभवसे आत्मा मुक्त होता है उसमे नरकायु, देवायु व तिर्यगायुकी तो सत्ता ही नही है। अनन्तानुबन्धी ४ व दर्शनमोहकी ३, इन सात प्रकृतियोका चौथेसे लेकर सातवें तक किसी भी गुणस्थानमे क्षय हो जाता है। नवमे गुणस्थानमे पहिले स्त्यान-गृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला व नामकर्मकी १३ इस तरह १६ का क्षय, पश्चात् अप्रत्या-ख्यानावरण व प्रत्याख्यानावरण सम्बन्धी ८, पश्चात् नपुसकवेद, पश्चात् स्त्रीवेद, पश्चात् ६ नोकपाय, पश्चात् पुरुषवेद, पश्चात् सज्वलनक्रोध, पश्चात् सज्वलनमान, पश्चात् संज्व-लन माया, इन ३६ प्रकृतियोका क्षय होता है। १०वे गुणस्थानमे सज्वलनलोभका क्षय होता है। १२वें गुणस्थानमे ज्ञानावरणकी ५, अन्तरायकी ५, दर्शनावरणकी अवशिष्ट ६— इन १६ प्रकृतियोका क्षय हो जाता है। इस तरह ३ + ७ + ३६ + १ + १६ = ६३ तरेसठ प्रकृतियोका नाश हो जाता है और सकलपरमात्मत्व हो जाता है। पश्चात् शेपकी ८५ प्रकृ-तियोका क्षय १४वें गुणस्थानमे होता है और गुणस्थानातीत होकर आत्मा निकलपरमात्मा हो जाता है।

इस प्रकार मोक्षतत्त्वके वर्णनके साथ साथ तत्त्वोका वर्णन समाप्त हुआ। इन सात तत्त्वोमे पुण्य और पाप मिलानेसे ९ पदार्थ हो जाते है। उन पुण्य और पाप पदार्थोका कथन इस गाथामे बताते है—

सुहअसुहभावजुत्ता पुण्य पाव हवति खलु जीवा।
साद सुहाउ णाम गोद पुण्ण पराणि पाव च ॥३८॥

अन्वय—सुहअसुहभावजुत्ता जीवा खलु पुण्ण पाव हवति। साद सुहाउ णाद गोद पुण्ण, च पराणि पाव।

अर्थ— शुभ व अशुभ भावसे युक्त जीव पुण्य और पाप होते है। सातावेदनीय, तिर्य-

गायु, मनुष्यायु, देवायु, नामकर्मकी ६३ शुभ प्रकृतियाँ, उच्च गोत्र ये तो पुण्यरूप हैं और वाकी सब पापप्रकृतिया है।

प्रश्न १—क्या जीव स्वभावसे पुण्य, पापरूप है ?

उत्तर—परमार्थसे जीव सहज ज्ञान और आनन्दस्वभाव वाला है इसमे तो वन्धमोक्ष के भी विकल्प नही है, फिर पुण्य पापकी तो चर्चा ही क्या है ?

प्रश्न २—फिर जीव पुण्यपापरूप कैसे होते है ?

उत्तर—अनादिवन्ध परम्परागत कर्मके उदयसे जीव पुण्यरूप व पापरूप होते है।

प्रश्न ३—पुण्यरूप जीवका क्या लक्षण है ?

उत्तर—कपायकी मन्दता होना, आत्मदृष्टि करना, देव गुरुकी भक्ति करना, देव गुरु के वचनोमे प्रीति करना, व्रत तप सयमका पालन करना, जीवदया करना, परोपकार करना आदि पुण्यरूप जीवके लक्षण है।

प्रश्न ४—पापरूप जीवके लक्षण क्या है ?

उत्तर—कपायकी तीव्रता होना, मोह करना, देव गुरुसे विरोध करना, कुगुरु कुदेव की प्रीति करना, हिंसा करना, झूठ बोलना, चुगली निन्दा करना, चोरी डकैती करना, व्यभिचार करना, परिग्रहकी तृष्णा करना, विषयोमे आसक्ति करना आदि पापरूप जीवके लक्षण है।

प्रश्न ५—पुण्यके कितने भेद है ?

उत्तर—पुण्यके दो भेद हे—(१) भावपुण्य और (२) द्रव्यपुण्य।

प्रश्न ६—भावपुण्य किसे कहते है ?

उत्तर—शुभ भावो करि युक्त जीवको अथवा जीवके शुभ भावोको भावपुण्य कहते हैं।

प्रश्न ७—द्रव्यपुण्य किसे कहते है ?

उत्तर—साता आदि शुभ फल देनेके निमित्तभूत पुद्गल कर्मप्रकृतियोको द्रव्यपुण्य कहते है।

प्रश्न ८—पुण्य प्रकृतियाँ कितनी है ?

उत्तर—पुण्य प्रकृतियाँ ६८ है—(१) सातावेदनीय, (२) तिर्यंगायु, (३) मनुष्यायु, (४) देवायु, (५) मनुष्यगति, (६) देवगति, (७) पचेन्द्रियजाति, (८–१२) पाँच शरीर, (१३-१७) पाँच बन्धन, (१८–२२) पाँच संघात, (२३–२५) तीन अगोपाग, (२६) समचतुरस्रसस्थान, (२७) वज्रऋषभनाराचसहनन, (२८–३५) आठ शुभ स्पर्श, (३६–४०) पाँच शुभ रस, (४१–४२) दो शुभ गध, (४३–४७) पाँच शुभ वर्ण, (४८) मनुष्यगत्यानुपूर्व्य, (४९) देवगत्यानुपूर्व्य, (५०) अगुरुलघु, (५१) परघात, (५२) आतप, (५३) उद्योत, (५४) उच्छ्-

वास, (५५) प्रशस्त विहायोगति, (५६) प्रत्येक शरीर, (५७) त्रस, (५८) सुभग, (५९) सुस्वर, (६०) शुभ, (६१) वादर, (६२) पर्याप्ति, (६३) स्थिर, (६४) आदेय, (६५) यश:-कीर्ति, (६६) तीर्थंकर, (६७) निर्माणनामकर्म, (६८) उच्चगोत्र।

प्रश्न ९—पापके कितने भेद है?

उत्तर—पापके दो भेद है—(१) भावपाप और (२) द्रव्यपाप।

प्रश्न १०—भावपाप किसे कहते है?

उत्तर—अशुभ भाव करि युक्त जीवको अथवा जीवके अशुभ भावको भावपाप कहते है।

प्रश्न ११—द्रव्यपाप किसे कहते है?

उत्तर—असाता आदि अशुभ फल देनेके निमित्तभूत पुद्गलकर्मप्रकृतियोंको द्रव्यपाप कहते है।

प्रश्न १२—पापप्रकृतियां कितनी है?

उत्तर—पापप्रकृतियाँ १०० है—(१-५) पाँच ज्ञानावरण, (६-१४) नौ दर्शनावरण, (१५-४२) अट्ठाइस मोहनीय, (४३-४७) पाँच अन्तराय, (४८) असातावेदनीय, (४९) नर-कायु, (५०) नरकगति, (५१) तिर्यग्गति, (५२) एकेन्द्रियजाति, (५३) द्वीन्द्रियजाति, (५४) त्रीन्द्रियजाति, (५५) चतुरिन्द्रिय जाति, (५६) न्यग्रोधपरिमडलसस्थान, (५७) स्वातिसस्थान, (५८) वामनसस्थान, (५९) कुब्जकसस्थान, (६०) हुडकसस्थान, (६१) वज्रनाराचसहनन, (६२) नाराचसहनन, (६३) अर्द्धनाराचसहनन, (६४) कीलकसहनन, (६५) असंप्राप्तसृपाटि-कासहनन, (६६-७३) आठ अशुभस्पर्श, (७४-७८) पाँच अशुभरस, (७९-८०) दो अशुभगध, (८१-८५) पाँच अशुभवर्ण, (८६) नरकगत्यानुपूर्व्य, (८७) तिर्यग्गत्यानुपूर्व्य, (८८) उपघात, (८९) अप्रशस्तविहायोगति, (९०) साधारणशरीर, (९१) स्थावर, (९२) दुर्भग, (९३) दु स्वर, (९४) अशुभ, (९५) सूक्ष्म, (९६) अपर्याप्ति, (९७) अस्थिर, (९८) अनादेय, (९९) अयश:-कीर्तिनामकर्म, (१००) नीचगोत्रकर्म।

प्रश्न १३—पुण्यप्रकृति ६८ व पापप्रकृति १००, ये मिलकर १६८ कैसे हो गई? प्रकृतियाँ तो कुल १४८ ही है।

उत्तर—आठ स्पर्श, पाँच रस, दो गध, पाँच वर्णनामकर्म, ये २० प्रकृतियाँ पुण्यरूप भी होती है और पापरूप भी होती है, अतः इन बीसको दोनो जगह गिननेसे १६८ हुई है, सामान्य विवक्षा करके बीस निकाल देनेसे १४८ ही सिद्ध हो जाती है।

प्रश्न १४—पुण्यप्रकृतियोमे सबसे विशिष्ट और प्रकृष्ट पुण्यप्रकृति कौन है?

उत्तर—तीर्थङ्करनामकर्म प्रकृति समस्त पुण्यप्रकृतियोमे विशिष्ट और प्रकृष्ट पुण्य-

प्रकृति है ।

प्रश्न १५—तीर्थङ्करप्रकृतिका लाभ कैसे होता है ?

उत्तर—दर्शनविशुद्धि आदि १६ भावनाओके निमित्तसे तीर्थङ्करप्रकृतिका लाभ होता है, किन्तु सम्यग्दृष्टि समस्त प्रकृतियोको हेय अथवा अनुपादेय माननेके कारण इसका लक्ष्य नही करता है अर्थात् इसे भी उपादेय नही समझता है ।

प्रश्न १६—पापप्रकृतियोमे सबसे अधिक निकृष्ट पापप्रकृति कौन है ?

उत्तर—मिथ्यात्वप्रकृति समस्त पापप्रकृतियोमे निकृष्ट पापप्रकृति है । मिथ्यात्वप्रकृति के उदयसे होने वाले मिथ्यात्व परिणामसे ही ससार व ससार दुखोकी वृद्धि है ।

प्रश्न १७—मिथ्यात्वप्रकृतिका लाभ कैसे होता है ?

उत्तर—मोह, विषयासक्ति, देव शास्त्र गुरुकी निन्दा, कुगुरु कुदेव कुशास्त्रकी प्रीति आदि खोटे परिणामोसे मिथ्यात्वप्रकृतिका लाभ होता है ।

प्रश्न १८— मिथ्यात्वका अभाव कैसे होता है ?

उत्तर—मिथ्यात्वका अभावका मूल उपाय भेदविज्ञान है, क्योकि भेदविज्ञानके न होने से ही मिथ्यात्व हुआ करता है ।

प्रश्न १९— भेदविज्ञानका सक्षिप्त आशय क्या है ?

उत्तर— धन, वैभव, परिवार, शरीर, कर्म, रागादि भाव, ज्ञानादिका अपूर्ण विकास, ज्ञानादिका पूर्ण परिणमन—इन सबसे भिन्न स्वरूप वाले चैतन्यमात्र निजशुद्धात्मतत्त्वको पहिचान लेना भेदविज्ञान है ।

प्रश्न २०—सम्यग्दृष्टिको तो पुण्यभाव और पापभाव दोनो हेय हैं, फिर पुण्यभाव क्यो करता है ?

उत्तर—जैसे किसीको अपनी स्त्रीसे विशेष राग है । वह स्त्री पितृगृहपर है और उस गाँवसे कोई पुरुष आये हो, तो स्त्रीकी ही वार्तादि जाननेके अर्थ उन पुरुषोको दान सन्मान आदि करता है, किन्तु उसका लक्ष्य तो निज भामिनीकी ओर ही है । इसी तरह सम्यग्दृष्टि उपादेयरूपसे तो निज शुद्धात्मतत्त्वकी भावना करता है। जब वह चारित्रमोहके विशिष्ट उदय-वश शुद्धात्मतत्त्वके उपयोग करनेमे असमर्थ होता है तो "हम शुद्धात्मभावनाके विरोधक विषय कषायमे न चले जायें व शीघ्र शुद्धात्मभावना करनेके उन्मुख हो जायें" एदर्थ जिनके शुद्ध स्वभावका विकास हो गया है, जो विकास कर रहे है ऐसे परमात्मा गुरुओकी पूजा, गुण-स्तुति, दान आदिसे भक्ति करता है, किन्तु लक्ष्य शुद्धात्मतत्त्वका ही रहता है । इस प्रकार सम्यग्दृष्टिके पुण्यभाव हो जाता है ।

प्रश्न २१—क्या इस पुण्यके फलमे सम्यग्दृष्टियोका ससार नही बढता है ?

उत्तर—सम्यग्दृष्टियोके भी पुण्यके फलमे मिलता तो ससार ही है, किन्तु ससारकी वृद्धिका कारण नही होता। सम्यग्दृष्टि मरण करके इस पुण्यके फलमे देव होता है तो उस पर्यायमे तीर्थङ्करोके साक्षात् दर्शन कर "ये वही देव है, वही समवशरण है जिसे पहिले सुना था आदि" भावोसे धर्म प्रमोद बढाते है, और कदाचित् भवोका अनुभव करने पर भी आसक्ति नही करते है। पश्चात् स्वर्गसे चयकर मनुष्य होकर यथासंभव तीर्थंकरादि पद प्राप्त कर पुण्यपापरहित इस निज शुद्धात्मतत्त्वके विशेष ध्यानके बलसे मोक्ष प्राप्त करते है।

प्रश्न २२—पुण्य व पाप तत्त्वोमे क्यो नही दिखाये ?

उत्तर—पुण्य व पापका अन्तर्भाव आस्रवतत्त्वमे हो जाता है। आस्रव दो प्रकारके होते है—एक पुण्यास्रव दूसरा पापास्रव। अतः सामान्य विवक्षा करके एक आस्रव तत्त्व ही कह दिया है।

प्रश्न २३—यदि आस्रवके ही भेद पुण्य पाप है और कोई अन्तर नही, तो पदार्थ भी ८ ही कहलायेगे ९ नही ?

उत्तर—आस्रव और पुण्यपापमे कथचित् अन्तर है—आस्रव तो अकर्मत्वसे कर्मत्व अवस्था प्राप्त होनेको कहते है। इसकी तो क्रियापर प्रधानता है और पुण्य पापमे प्रकृतित्वकी प्रधानता है। इसी कारण पदार्थकी सख्या कहते समय पुण्य पाप कहकर भी आस्रवका ग्रहण नही हो सकनेसे आस्रवको भी पदार्थमे गिना तब पदार्थ ९ कहना युक्तियुक्त ही है।

इस प्रकार सात तत्त्व और नव पदार्थका व्याख्यान करने वाला यह तृतीय अधिकार समाप्त हुआ।
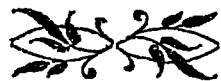
चतुर्थ अधिकार

सम्मद्दंसणणाणं चरणं मोक्खस्स कारणं जाणे ।
ववहारा णिच्चयदो तत्तियमइयो णिओ अप्पा ॥३९॥

अन्वय—ववहारा सम्मद्दंसणणाणं चरणं मोक्खस्सकारणं जाणे, णिच्छयदो तत्तियमइओ णिओ अप्पा ।

अर्थ—व्यवहारनयसे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्रको मोक्षका कारण जानो । निश्चयनयसे तत्त्रिकमय अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र—इन तीनों स्वरूप निज आत्माको मोक्षका कारण जानो ।

प्रश्न १– मोक्षमार्गके दो भेद क्यो कहे गये ?

उत्तर– मोक्षमार्ग तो वास्तवमे एक है, किन्तु उसका साधक जो अन्य भाव है उसे भी बताना आवश्यक है, उसको व्यवहारसे मोक्षमार्ग कहते है । इस प्रकार मोक्षमार्ग दो हो जाते है– (१) निश्चयमोक्षमार्ग, (२) व्यवहारमोक्षमार्ग ।

प्रश्न २– इन दो प्रकारके मोक्षमार्गोमे से क्या किसी एकसे मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है ?

उत्तर– मोक्ष तो निश्चयमोक्षमार्गसे ही प्राप्त होता है । व्यवहारमोक्षमार्गसे निश्चयमोक्षमार्ग प्राप्त किया जा सकता है । मोक्षमार्ग त्रितयात्मक होनेसे उन तीनोके भी निश्चय व व्यवहार सम्बन्धी दो-दो भेद हो जाते है । इस तरह इस प्रकरणमे ६ तत्त्व ज्ञातव्य हैं—(१) व्यवहारसम्यग्दर्शन, (२) निश्चयसम्यग्दर्शन, (३) व्यवहारसम्यग्ज्ञान, (४) निश्चयसम्यग्ज्ञान, (५) व्यवहारसम्यक्चारित्र, (६) निश्चयसम्यक्चारित्र ।

प्रश्न ३– व्यवहारसम्यग्दर्शन किसे कहते है ?

उत्तर– जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल–इन छह द्रव्योका व जीव, अजीव पुण्य, पाप, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष– इन नव तत्त्वोका यथार्थ श्रद्धान करना व्यवहारसम्यग्दर्शन है ।

प्रश्न ४—निश्चयसम्यग्दर्शन किसे कहते है ?

उत्तर– समस्त परद्रव्योसे भिन्न, रागादि उपाधिसे परे, निरञ्जन, चिच्चमत्कारमात्र निज शुद्धात्मतत्त्वस्वरूप अपनी प्रतीति होनेको निश्चयसम्यग्दर्शन कहते है ।

प्रश्न ५– व्यवहारसम्यग्ज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो पदार्थ जिस रूपसे अवस्थित है उसे उस प्रकारसे जाननेको व्यवहार सम्यग्ज्ञान कहते है।

प्रश्न ६— निश्चयसम्यग्ज्ञान किसे कहते है ?

उत्तर— शुद्धात्मतत्त्वकी भावनासे उत्पन्न सहज आनन्दसे तृप्त होते हुये अपने द्वारा अपना निर्विकल्परूपसे सवेदन करनेको निश्चयसम्यग्ज्ञान कहते है।

प्रश्न ७— व्यवहारसम्यक्चारित्र किसे कहते है ?

उत्तर— जिससे अशुभ भावसे निमित्त व शुभभावमे प्रवृत्ति हो ऐसे तप, व्रत, समिति गुप्ति, आदिके पालन करनेको व्यवहारसम्यक्चारित्र कहते है।

प्रश्न ८— निश्चयसम्यक्चारित्र किसे कहते है ?

उत्तर— रागादि विकल्पोके परिहारपूर्वक रागद्वेषादि विभावशून्य शुद्ध चैतन्यतत्त्वके उपयोगकी स्थिरताको निश्चयसम्यक्चारित्र कहते है।

प्रश्न ९— क्या व्यवहाररत्नत्रयके पाये बिना निश्चयरत्नत्रय नही हो सकता ?

उत्तर— निश्चयरत्नत्रयके पूर्व व्यवहाररत्नत्रय होता ही है। व्यवहाररत्नत्रय पाये बिना निश्चयरत्नत्रयकी प्राप्ति नही होती। इसी कारण व्यवहाररत्नत्रय साधक है और निश्चयरत्नत्रय साध्य है।

प्रश्न १०— क्या व्यवहाररत्नत्रय द्वारा निश्चयरत्नत्रयकी प्राप्ति अवश्य होती है ?

उत्तर— यदि व्यवहाररत्नत्रयको पालता हुआ उस व्यवहारमे ही अपनी एकता जोडे तो निश्चयरत्नत्रय नही हो सकता। यदि व्यवहाररत्नत्रयके पालन द्वारा विषयकषायसे निवृत्ति पाकर निज ज्ञायकस्वभावसे अपनी एकता जोडे तो निश्चयरत्नत्रय अवश्य होता है।

प्रश्न ११—निश्चयरत्नत्रय व व्यवहाररत्नत्रय दोनो क्या एक साथ रह सकते है ?

उत्तर— निश्चय व व्यवहाररूप दोनो रत्नत्रय एक साथ रह सकते है।

प्रश्न १२— तब तो व्यवहाररत्नत्रय निश्चयरत्नत्रयके साथ रहे, उसे ही व्यवहार-रत्नत्रय कहना चाहिये ?

उत्तर— जो व्यवहाररत्नत्रय निश्चयरत्नत्रयके साथ रह सकता है वह तो फलित व्यवहाररत्नत्रय है और जो निश्चयरत्नत्रयके पहिले व्यवहाररत्नत्रय रहता है वह निमित्त व्यवहाररत्नत्रय है।

प्रश्न १३—क्या व्यवहाररत्नत्रयके बिना भी निश्चयरत्नत्रय रह सकता है ?

उत्तर—निर्विकल्प चारित्र वाले उच्च गुणस्थानोमे उक्त व्यवहाररत्नत्रयके विना निश्चयरत्नत्रय रह सकता है। यही अभेदरत्नत्रय सम्यक्त्व, ज्ञान और चारित्र गुणकी परि-णति होनेसे व्यवहार कहलाता है।

प्रश्न १४—निश्चयरत्नत्रयको निश्चयरूप तीनोको न कहकर एक आत्माको ही क्यो कहा ?

उत्तर—निश्चयनय अभेदको ग्रहण करता है, अत. निश्चयरत्नत्रय एक अभेद शुद्ध पर्यायपरिणत आत्मा ही है।

अब इस ही १४वे प्रश्न उत्तरसे सम्बन्धित विषयको स्पष्ट समझनेके लिये ४०वी गाथा कहते है।

रयणत्तय ण वट्टइ अप्पाण मुइत्तु अण्णदवियह्मि।
तम्हा तत्तियमइओ होदि हु मोक्खस्स कारण आदा ॥४०॥

अन्वय—अप्पाण मुइत्तु अण्णदवियह्मि रयणत्तय ण वट्टइ। तम्हा हु तत्तियमइओ आदा मोक्खस्स कारणं होदि।

अर्थ—आत्माको छोडकर अन्य द्रव्यमे रत्नत्रय नही रहता है। इस कारणसे रत्नत्रयात्मक आत्मा ही निश्चयसे मोक्षका कारण है।

प्रश्न १– रत्नत्रय अन्य द्रव्यमे क्यो नही रह सकता ?

उत्तर—रत्नत्रय याने सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र, ये तीनो पर्यायें है। ये जिस गुणकी पर्यायें है वे गुण जिसमे रहते है उसीमे रत्नत्रय है।

प्रश्न २—सम्यग्दर्शन आत्माके सम्यक्त्व गुणकी पर्याय है। सम्यक्त्व एक निर्मल पर्यायका भी नाम है व सम्यक्त्व गुणका भी नाम है। प्राचीन परम्परामे इसी प्रकार वर्णन है। सम्यक्त्व गुणका पर्यायवाची श्रद्धागुण भी है।

प्रश्न ३—सम्यग्दर्शनकी उत्पत्तिके क्या कारण है ?

उत्तर– सम्यग्दर्शनका उपादान कारण सम्यग्दर्शनके पूर्वकी पर्यायसे परिणत व इस प्रकारकी विशिष्ट योग्यता वाला आत्मा है। अन्तरग निमित्त कारण दर्शनमोह व अनन्तानुबन्धी कषायका उपशम, क्षयोपशम या क्षय है। बाह्य निमित्त कारण जिन-सूत्रका उपदेश है। उपचरित बाह्य कारण जिन-सूत्रके जानने वाले वे पुरुष है जिनसे यथार्थ उपदेश प्राप्त होता है तथा जिनबिम्बके दर्शन, तपस्वी, ध्यानी साधुवोके दर्शन आदि है।

प्रश्न ४-- सम्यग्ज्ञान किस गुणकी पर्याय है ?

उत्तर– सम्यग्ज्ञान आत्माके ज्ञान गुणकी पर्याय है। ज्ञान पर्याय अपने स्वरूपसे न सम्यक् है और न मिथ्या है, किन्तु दर्शनमोहके उदयके निमित्तसे होने वाले विपरीत अभिप्राय के सम्बन्धसे ज्ञान भी मिथ्या कहलाता है तथा दर्शनमोहके उपशम, क्षयोपशम या क्षयके निमित्तसे होने वाली सम्यक् प्रतीतिके सम्बन्धसे ज्ञान भी सम्यक् कहलाता है।

प्रश्न ५– सम्यक्चारित्र किस गुणकी पर्याय है ?

उत्तर– सम्यक्चारित्र आत्माके चारित्रगुणकी पर्याय है।

प्रश्न ६—सम्यक्त्व, ज्ञान व चारित्र गुण आत्मामे ही क्यो होते हैं ?

उत्तर—ऐसा आत्माका स्वभाव ही है। इन गुणोका एक पुञ्ज ही आत्मा है। आत्मा तो एक स्वभाववान् है, किन्तु व्यवहारनयसे उस स्वभावको समझने वाली ये शक्तियाँ है।

प्रश्न ७— एक आत्मा त्रितयात्मक कैसे है ?

उत्तर—मैं इस शुद्ध आत्माका अपने आपमे निराकुल सहज आनन्द स्वरूप हूं—ऐसी प्रतीतिवे स्वभावसे बर्तना सम्यग्दर्शन है, निराकुल आनन्दके सवेदनसे बर्तना सम्यग्ज्ञान है और ऐसी ही स्थितिका स्थितिकरण होना सम्यक्चारित्र है। ये तीनो अभेदनयसे एक शुद्ध आत्मद्रव्य ही हुआ।

प्रश्न ८—निराकुल सहज आनन्दके सवेदनका उपाय क्या है ?

उत्तर— अविकार चिच्चमत्कारमात्र निज स्वभावकी भावना सहज आनन्दकी उत्पत्ति का उपाय है।

प्रश्न ९— निजस्वभावकी दृष्टि बनी रहे एतदर्थ अपनी वृत्ति कैसी बनानी चाहिये ?

उत्तर—निज स्वभावकी दृष्टिकी उपयुक्तताके लिये माया, मिथ्या, निदान—इन तीन शल्योसे रहित अपनी वृत्ति होनी चाहिये।

प्रश्न १०— मायाशल्य किसे कहते है ?

उत्तर— मेरे अपध्यानको कोई नही जानता है या न जाने, इस अभिप्रायसे बाह्य वेश का आचरण करके लोकोका आकर्षण प्राप्त करते हुये चित्तकी मलीनता रखनेको मायाशल्य कहते है।

प्रश्न ११—अपध्यान किसे कहते है ?

उत्तर— रागवश परनारी आदिकी अयोग्य इच्छायें करने व द्वेषवश परका वध, बधन आदि अनिष्ट चिन्तवन करनेको अपध्यान कहते है।

प्रश्न १२— मिथ्याशल्य किसे कहते है ?

उत्तर--अविकार निज परमात्मतत्त्वकी रुचि न होनेके कारण बाह्य पदार्थोका आश्रय करके विपरीत बुद्धि बनानेको मिथ्याशल्य कहते है।

प्रश्न १२-- निदानशल्य किसे कहते है ?

उत्तर-- पाँच इन्द्रिय और मनके विषयोमे, भोगोमे निरन्तर चित्त देनेको निदानशल्य कहते है।

प्रश्न १४— मुक्तिका कारणभूत यह रत्नत्रयभाव ५ भावोमे से कौनसा है ?

उत्तर— यह रत्नत्रयभाव औदयिक तो है ही नही। और पारिणामिक भाव अकारण व अकार्य होता है, अत. यह रत्नत्रयभाव पारिणामिक भी नही है, किन्तु यथास्थान यह भाव औपशमिक है, क्षायोपशमिक है और एक देश क्षायिक है। समस्त कर्मोका क्षय हो जाना तो

मोक्षमार्गफल है, अतः उससे पहिलेका एक देश क्षायिक भाव है।

प्रश्न १५-- तब तो औपशमिक, क्षायोपशमिक व क्षायिकभाव ध्येय मानना चाहिये ?

उत्तर-- ध्येय तो परमपारिणामिक भाव शुद्ध चैतन्यस्वरूप निजकारणपरमात्मत्व है। इस ही के दर्शन, आश्रय, उपयोग द्वारा निर्मल पर्यायका विकास होता है।

इस प्रकार निश्चयमोक्षमार्गका वर्णन करके अब सम्यग्दर्शन विशेषका वर्णन करते है—

जीवादीसद्दहणं सम्मत्त रूवमप्पणो त नु।
दुरभिणिवेसविमुक्क णाणं सम्म खु होदि सदि जह्मि ॥४१॥

अन्वय-- जीवादीसद्दहणं सम्मत्त, त तु अप्पणोरूव। जह्मि सदि णाण खु दुरभिणिवेसविमुक्कं सम्म होदि।

अर्थ-- जीवादि नव तत्त्वोका यथार्थ श्रद्धान करना सम्यक्त्व (सम्यग्दर्शन) है। और वह आत्माका स्वाभाविक रूप है। जिसके होने पर ज्ञान निश्चयसे विपरीत अभिप्राय रहित होता हुआ सम्यक् हो जाता है।

प्रश्न १-- सम्यग्दर्शन कितने प्रकारका होता है ?

उत्तर-- सम्यग्दर्शन स्वरूपसे तो एक प्रकारका ही है और वह अवक्तव्य है, किन्तु सम्बन्ध, निमित्त आदि भेदसे अनेक प्रकारका होता है। जैसे अन्तरङ्ग बाह्य निमित्तकी दृष्टि से ३ प्रकारका है-- (१) औपशमिक सम्यक्त्व, (२) क्षायोपशमिक सम्यक्त्व, (३) क्षायिक सम्यक्त्व। सम्बन्धादि दृष्टिसे १० प्रकारका है-- (१) आज्ञासम्यक्त्व, (२) मार्गसम्यक्त्व, (३) उपदेशसम्यक्त्व, (४) अर्थसम्यक्त्व, (५) बीजसम्यक्त्व, (६) सक्षेपसम्यक्त्व, (७) सूत्रसम्यक्त्व (८) विस्तारसम्यक्त्व, (९) अवगाढसम्यक्त्व, (१०) परमावगाढसम्यक्त्व।

प्रश्न २-- औपशमिक सम्यक्त्व किसे कहते है ?

उत्तर-- अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, व मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति-- इन ७ प्रकृतियोके उपशम होनेपर जो सम्यक्त्व प्रकट होता है उसे औपशमिक सम्यक्त्व कहते है।

विशेष यह है कि जिनके सम्यक्प्रकृति व सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिकी उद्वेलना हो चुकी है उन जीवोके व अनादिमिथ्यादृष्टि जीवके सम्यग्मिथ्यात्व व सम्यक्प्रकृतिके बिना शेष ५ प्रकृतियोके उपशम होने पर औपशमिक सम्यक्त्व होता है, क्योकि उन जीवोके इन २ प्रकृतियोकी सत्ता ही नही है।

प्रश्न ३-- क्षायोपशमिक सम्यक्त्व किसे कहते है ?

उत्तर-- अनन्तानुबन्धी ४ कषाय, मिथ्यात्व व सम्यग्मिथ्यात्व, इन ६ प्रकृतियोंका

उदयाभावी क्षय व सदवस्था रूप उपशम एवं सम्यक्प्रकृतिका उदय होनेपर जो सम्यक्त्व प्रकट होता है उसे क्षायोपशमिक सम्यक्त्व कहते है। इसका दूसरा नाम वेदकसम्यक्त्व है। द्वितीयोपशम या क्षायिक सम्यक्त्व होनेके अति निकट पूर्व क्षायोपशमिक सम्यक्त्वमे, इन प्रकृतियोकी कुछ और विशिष्ट अवस्था होती है।

प्रश्न ४– क्षायिकसम्यक्त्व किसे कहते है ?

उत्तर-- अनन्तानुबन्धी ४ कषाय, मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्प्रकृति, इन सात प्रकृतियोके क्षय होनेपर जो सम्यक्त्व प्रकट होता है उसे क्षायिकसम्यक्त्व कहते है।

प्रश्न ५-- आज्ञासम्यक्त्व किसे कहते है ?

उत्तर– केवल वीतराग देवकी आज्ञाके अनुसार तत्त्वोमे रुचि होनेको आज्ञासम्यक्त्व कहते है।

प्रश्न ६-- मार्गसम्यक्त्व किसे कहते हैं ?

उत्तर—बाह्याभ्यन्तर परिग्रहसे रहित निर्दोष निर्ग्रन्थ मार्ग देखकर तत्त्वमे रुचि होनेको मार्गसम्यक्त्व कहते है।

प्रश्न ७—उपदेशसम्यक्त्व किसे कहते है ?

उत्तर– तीर्थंकरादि महापुरुषोके चरित्र सुनकर अथवा उपदेश सुनकर तत्त्वमे रुचि होनेको उपदेशसम्यक्त्व कहते है।

प्रश्न ८—अर्थसम्यक्त्व किसे कहते है ?

उत्तर– किसी पदार्थको देखकर या किसी उपदेशके अर्थ या दृष्टान्तादिका अनुभव करके तत्त्वमे रुचि होनेको अर्थसम्यक्त्व कहते है।

प्रश्न ९– बीजसम्यक्त्व किसे कहते है ?

उत्तर-- शास्त्रमे प्ररूपित गणित नियमोको या बीजपदोके तात्पर्यको जानकर तत्त्वमे रुचि होनेको बीजसम्यक्त्व कहते है।

प्रश्न १०-- सक्षेपसम्यक्त्व किसे कहते है ?

उत्तर– पदार्थोको सक्षेपसे ही जानकर तत्त्वमे रुचि होनेको सक्षेपसम्यक्त्व कहते है।

प्रश्न ११—सूत्रसम्यक्त्व किसे कहते है ?

उत्तर—साधुवोकी चारित्रविधि बताने वाले आचारसूत्रको सुनकर तत्त्वमे रुचि होनेको सूत्रसम्यक्त्व कहते है।

प्रश्न १२—विस्तारसम्यक्त्व किसे कहते है ?

उत्तर– समस्त श्रुतको सुनकर तत्त्वमे रुचि होनेको विस्तारसम्यक्त्व कहते है ?

प्रश्न १३– अवगाढसम्यक्त्व किसे कहते है ?

उत्तर–समस्त द्वादशाङ्गका ज्ञान होनेपर होने वाली तत्त्व-प्रतीतिको अवगाढसम्यक्त्व कहते है।

प्रश्न १४– परमावगाढ सम्यक्त्व किसे कहते है ?

उत्तर– केवलज्ञान प्रकट हो जानेपर वर्तते हुये सम्यक्त्वको परमावगाढ सम्यक्त्व कहते है।

प्रश्न १५—उक्त सम्यक्त्वोमे क्या सभी सम्यक्त्व निर्दोप है ?

उत्तर—औपशमिक सम्यक्त्व, क्षायिकसम्यक्त्व व परमावगाढसम्यक्त्व—ये तीन तो निर्दोष ही है, क्षायोपशमिकसम्यक्त्व (वेदकसम्यक्त्व) चल, मलिन अगाढ नामक सूक्ष्म दोप सहित है। शेषके सम्यक्त्व यदि क्षायोपशमिक सम्यक्त्व रूपमे हो तो इन सूक्ष्म दोपोकर सहित हैं और यदि वे औपशमिक या क्षायिक है तो निर्दोप है।

प्रश्न १६– सम्यग्दृष्टिकी परिस्थिति कैसी होती है ?

उत्तर– इसका विवरण सम्यक्त्वके अङ्ग और सम्यक्त्वके दोष जाननेमे हो जाता है। अङ्गोके ज्ञानसे तो यह विदित होता है कि सम्यक्त्वमे ऐसे गुण होते है और दोषोंके ज्ञानसे यह विदित होता कि सम्यक्त्व इन दोषोसे रहित होता है।

पश्न १७– सम्यक्त्वके अङ्ग कौन-कौन है ?

उत्तर—सम्यक्त्वके अग ८ हैं—नि शकित, (२) नि काक्षित, (३) निर्विचिकित्सित, (४) अमूढदृष्टि, (५) उपगूहन, (६) स्थितिकरण, (७) वात्सल्य प्रभावना।

प्रश्न १८—नि शङ्कित अङ्ग क्या है ?

उत्तर—समस्त अगोका विवरण व्यवहार और निश्चय दोनो दृष्टियोसे होता है। अत नि शङ्कित अङ्गको भी व्यवहारनिःशङ्कित अङ्ग और निश्चयनि.शङ्कित अङ्ग इस प्रकार दोनो प्रकारसे जानना चाहिये।

प्रश्न १९-- व्यवहारनिःशङ्कित अङ्ग किसे कहते है ?

उत्तर-- वीतराग सर्वज्ञदेवसे प्रणीत हुए तत्त्वमे सन्देह (शका) नही करनेको व्यवहारनि शङ्कित अङ्ग कहते है।

प्रश्न २०-- यदि वीतरागसर्वज्ञ प्रणीत तत्त्वोमे कोई असत्य निरूपण हो तो उसे क्यो मान लेना चाहिये ?

उत्तर– वीतराग सर्वज्ञदेवके वचन असत्य कभी नही हो सकते, क्योकि असत्यवचनके दो कारण हुआ करते है—(१) रागादिक दोप और (२) अज्ञान, परन्तु वीतराग सर्वज्ञदेवमे न तो रागादि दोष है व अज्ञानका अश भी उनमे नही है, अत वे सर्वज्ञ है। यही कारण है कि उनके प्रणीत तत्त्वोमे असत्यता कभी नही हो सकती।

प्रश्न २१– निश्चयनि शकित अङ्ग किसे कहते है ?

उत्तर-- इहलोकभय, परलोकभय, अत्राणभय, अगुप्तिभय, मरणभय, वेदनाभय और आकस्मिकभय, इन सात भयोसे मुक्त होकर घोर उपसर्ग व परीषहका प्रसङ्ग आनेपर भी निज निरञ्जन निर्दोष परमात्मतत्त्वकी प्रतीतिसे चलित न होनेको निश्चयनि शंकित अङ्ग कहते है ।

प्रश्न २२– इहलोकभय किसे कहते है ?

उत्तर—इस लोकमे मेरा कैसे जीवन गुजरेगा– धनकी आयका उपाय कम होता जा रहा है, कानून अनेक ऐसे बनते जा रहे है जिससे सपत्तिका रहना कठिन है आदि भय होनेको इहलोकभय कहते है । यह भय सम्यग्दृष्टिके नही होता, क्योकि वह चैतन्यतत्त्वको ही लोक समझता है, उसमे परभावका प्रवेश नही ।

प्रश्न २३– परलोकभय किसे कहते है ?

उत्तर– अगले भवमे कौनसी गति मिलेगी, कही खोटी गति न मिल जाय, परलोकमे कष्टोका सामना न करना पडे आदि भयको परलोकभय कहते है । यह भय सम्यग्दृष्टिके नही होता, क्योकि वह चैतन्यभावको ही लोक समझता है, उसमे कोई विघ्न नही होता ।

प्रश्न २४-- अत्राणभय किसे कहते है ?

उत्तर-- मेरा रक्षक, सहाय, मित्र कोई नही है, मेरी कैसे रक्षा होगी—इस प्रकारके भयको अत्राणभय कहते है । यह भय सम्यग्दृष्टिके नही है, क्योकि वह निजस्वरूपको ही अपना शरण समझता है और वह सदा पास है ।

प्रश्न २५—अगुप्तिभय किसे कहते है ?

उत्तर-- मेरे रहनेका स्थान सुरक्षित नही है, मकान, किला आदि भी नही है, मेरा क्या हाल होगा इत्यादि भयको अगुप्तिभय कहते है । यह सम्यग्दृष्टिके नही होता, क्योकि उसे द्रव्योकी स्वतन्त्रताकी यथार्थ प्रतीति है । किसी द्रव्यमे किसी अन्य द्रव्यका, अन्य द्रव्य गुण या पर्यायका प्रवेश ही नही हो सकता, अत सर्व द्रव्य स्वय गुप्त है ।

प्रश्न २६-- मरणभय किसे कहते है ?

उत्तर-- मरणका भय माननेको मरणभय कहते है । यह भय सम्यग्दृष्टि आत्माके नही होता है, क्योकि उसकी यथार्थ प्रतीति है कि "मेरे प्राण तो ज्ञान और दर्शन है, उनका कभी वियोग ही नही होता, अत मेरा मरण होता ही नही है ।"

प्रश्न २७-- वेदनाभय किसे कहते है ?

उत्तर—मुझे कभी रोग न हो जावे या यह रोग बढ न जावे, ऐसा भाव करना अथवा व्याधिकी पीडा भोगते हुए भयभीत होना सो वेदनाभय है । यह भय भी सम्यग्दृष्टि

जीवके नही होता है, क्योकि उसके यह प्रतीति है कि मैं सर्वज्ञ ज्ञानका ही वेदन करता हू, रोग आदिका नही।

प्रश्न २८—आकस्मिकभय किसे कहते है ?

उत्तर— संभव, असभव अनेक आकस्मिक आपत्तियोकी कल्पना करके भयभीत होनेको आकस्मिक भय कहते है। यह भय भी सम्यग्दृष्टि जीवोके नही होता है, क्योकि सम्यग्दृष्टि को यह प्रतीति है कि मेरी ही पर्याय मेरेमे आ सकती है, अन्य कुछ मेरेमे आ ही नही सकता तथा जो कुछ होना है वह होता ही है आकस्मिक कुछ नही होता।

प्रश्न २९— व्यवहारनि काक्षित अङ्ग किसे कहते है ?

उत्तर—भोग वैभवकी आशा व निदानके त्याग सहित निजशुद्धिके ही अर्थ पूजादि धर्मानुष्ठान करनेको व्यवहारनि·काक्षित अङ्ग कहते है।

प्रश्न ३०— निश्चयनि·काक्षित अङ्ग किसे कहते है ?

उत्तर— समस्त भोगविकल्पोका त्याग करके निज शुद्ध अन्तस्तत्त्वकी भावनासे उत्पन्न सहज आनन्दमे तृप्ति करनेको निश्चयनि·काक्षित अङ्ग कहते है।

प्रश्न ३१— व्यवहारर्निर्विचिकित्सित अङ्ग किसे कहते है ?

उत्तर— धर्मभूषित भव्य आत्मावोके मलिन व व्यथित शरीरको देखकर ग्लानि न करने और यथाशक्ति सेवाचिकित्सा करनेको व्यवहारनिर्विचिकित्सित अङ्ग कहते है अथवा स्वयपर आई हुई क्षुधा आदि वेदनाओमे विषाद न करनेको निर्विचिकित्सित अङ्ग कहते है।

प्रश्न ३२—निश्चयनिर्विचिकित्सित अङ्ग किसे कहते है ?

उत्तर—रागद्वेषादि विकल्पोका परित्याग कर निज समयसारके उन्मुख रहनेको निश्चय-निर्विचिकित्सित अङ्ग कहते है।

प्रश्न ३३— व्यवहारअमूढदृष्टि अङ्ग किसे कहते है ?

उत्तर— मोक्षमार्गसे बहिर्भूत कुगुरुवोके द्वारा प्रणीत क्षुद्रविद्या, व्यन्तरकृत आदि विस्मयकारक चमत्कारोको देखकर या सुनकर भी मूढभावसे या धर्मभावसे उनमे रुचि, भक्ति न करनेको व्यवहारअमूढदृष्टि अङ्ग कहते है।

प्रश्न ३४— निश्चयअमूढदृष्टि अङ्ग किसे कहते है ?

उत्तर—शरीर, कर्ममिथ्यात्व, राग, द्वेष, सकल्प, विकल्पोमे इष्टबुद्धि, उपादेयबुद्धि, अहबुद्धि व ममत्वको छोडकर निज शुद्ध स्वरूपकी दृष्टि करनेको निश्चयअमूढदृष्टि अग कहते हैं।

प्रश्न ३५—व्यवहारउपगूहन अग किसे कहते है ?

उत्तर—अज्ञानी या असमर्थ जीवोके निमित्तसे यदि धर्मका अपवाद होता हो तो

धर्मोपदेशसे, दोषके आच्छादनसे, दण्ड आदि यथोचित उपायसे अपवाद दूर करनेको व्यवहार-उपगूहन अग कहते है ।

प्रश्न ३६– निश्चयउपगूहन अङ्ग किसे कहते है ?

उत्तर– अविकार चैतन्यस्वभावमय निजधर्मके आच्छादन करने वाले, विकारक मिथ्यात्व, रागादि दोषोको निज शुद्ध अन्तस्तत्त्वके ध्यान द्वारा दूर करनेको निश्चयउपगूहन अङ्ग कहते है ।

प्रश्न ३७—व्यवहारस्थितिकरण अङ्ग किसे कहते है ?

उत्तर—कर्मोदयवश किसी धर्मात्मा जनका धर्मसे चलित हो रहा देखकर उसे धर्मोपदेशसे, आर्थिक सहयोगसे, अन्य सामर्थ्य आदि उपायसे धर्ममे स्थिर कर देनेको व्यवहार-स्थितिकरण अङ्ग कहते है ।

प्रश्न ३८– निश्चयस्थितिकरण अङ्ग किसे कहते है ?

उत्तर– मोह, राग, द्वेष आदि अधर्मोको त्यागकर परमसमताके सवेदन द्वारा शुद्धोपयोगरूप धर्ममे स्वके स्थिर करनेको निश्चयस्थितिकरण अङ्ग कहते है ।

प्रश्न ३९—व्यवहारवात्सल्य अङ्ग किसे कहते है ?

उत्तर—धर्मात्मा जनोमे निश्छल स्नेह करनेको व्यवहारवात्सल्य अङ्ग कहते है ।

प्रश्न ४०—निश्चयवात्सल्य अङ्ग किसे कहते है ?

उत्तर—विषय कषायोसे सर्वथा प्रीति छोडकर ध्रुव चैतन्यस्वभावमय निजपरमात्मतत्त्वके सवेदनसे उत्पन्न हुए सहज आनन्दमे रुचि करनेको निश्चयवात्सल्य अङ्ग कहते है ।

प्रश्न ४१ —व्यवहारप्रभावनाङ्ग किसे कहते है ?

उत्तर—दान, पूजा, धर्मोपदेश, तपस्या आदिसे धर्ममार्गकी प्रभावना करनेको व्यवहारप्रभावनाग कहते है ।

प्रश्न ४२– निश्चयप्रभावनाङ्ग किसे कहते है ?

उत्तर– निजशुद्धस्वरूपके सवेदनके बलसे रागादि परभावोका प्रभाव नष्ट करके निज चैतन्य तत्त्वका शुद्ध विकास करनेको निश्चयप्रभावनाङ्ग कहते है ।

प्रश्न ४३– सम्यक्त्वके दोष कितने है ?

उत्तर– सम्यक्त्वके दोष नही होता, किन्तु जिन भावोके होनेपर सम्यक्त्वमे बाधा आती है, वे सम्यक्त्वके दोष कहे जाते है । ये दोष २५ है– मल (अङ्गविरोधी) ८, मद ८, अनायतन ६ और मूढता ३ ।

प्रश्न ४४-- अङ्गविरोधी ८ मल-दोष कौन-कौन है ?

उत्तर-- मल दोष ८ ये है—(१) शका, (२) काक्षा, (३) विचिकित्सा, (४) मूढदृष्टि, (५) अनुपगूहन, (६) अस्थितिकरण, (८) अवात्सल्य, (८) अप्रभावना।

प्रश्न ४५—शङ्कादोष किसे कहते है ?

उत्तर— भगवत्प्रणीत तत्त्वोमे सदेह करने व इह लोकादि भय करनेको शङ्कादोष कहते है।

प्रश्न ४६—काक्षादोष किसे कहते है ?

उत्तर—निज स्वभावदृष्टिमे अनुत्साह करके विषयोमे, धन-वैभव सन्मान प्रतिष्ठामे रुचि करनेको काक्षादोष कहते है।

प्रश्न ४७— विचिकित्सा दोष किसे कहते है ?

उत्तर—धर्मात्मावोके मलिन शरीरको देखकर ग्लानि करने व अपने क्षुधा आदि वेद-नावोके होनेपर खिन्न रहनेको विचिकित्सा दोष कहते है।

प्रश्न ४८—मूढदृष्टि दोष किसे कहते है ?

उत्तर— कुमार्ग व कुमार्गस्थ जीवोकी भक्ति, रुचि प्रशसा करनेको मूढदृष्टि दोष कहते है।

प्रश्न ४९— अनुपगूहन दोष किसे कहते है ?

उत्तर—अज्ञानी अशक्त जीवो द्वारा होने वाले धर्मके अपवादको दूर करना व अपने गुण प्रकट करना और अपने दोषोको ढाकना, दूसरेके दोषोको प्रकट करना व गुणोका उप-घात करना ये सब अनुपगूहन दोष है।

प्रश्न ५०— अस्थितिकरण दोष किसे कहते है ?

उत्तर—धर्मसे डिगते हुये स्वयको व जीवोको सामर्थ्य होते हुये भी धर्ममे स्थिर न करने और च्युत होनेमे सुखका अनुभव करनेको अस्थितिकरण दोष कहते है।

प्रश्न ५१— अवात्सल्य दोष किसे कहते है ?

उत्तर— धर्मात्मावोके प्रति वात्सल्य न रखने या मात्सर्य करनेको अवात्सल्य दोष कहते है।

प्रश्न ५२— अप्रभावना दोष किसे कहते है ?

उत्तर— सामर्थ्य होते हुये भी धर्मकी प्रभावना न करने या अपने असत्यादि व्यवहार से धर्मकी अप्रभावना करने को अप्रभावना दोष कहते है।

प्रश्न ५३— मद आठ कौन-कौन है ?

उत्तर—मद आठ ये है— (१) ज्ञानमद, (२) प्रतिष्ठामद, (३) कुलमद, (४) जाति-मद, (५) बलमद, (६) वैभवमद, (७) तपोमद, (८) रूपमद।

प्रश्न ५४—ज्ञानमद किसे कहते है ?

उत्तर– पाये हुये ज्ञानपर अभिमान करने, अन्य ज्ञानी पुरुषोंको तुच्छ समझनेको ज्ञानमद कहते है ।

प्रश्न ५५—प्रतिष्ठामद किसे कहते हैं ?

उत्तर– पूजा, स्तुति, लोकाकर्षण आदिसे प्राप्त प्रतिष्ठापर अहङ्कार करनेको प्रतिष्ठामद कहते है ।

प्रश्न ५६—कुलमद किसे कहते है ?

उत्तर– पाये हुये श्रेष्ठ कुलका मद करनेको कुलमद कहते हैं । कुल पिताके गोत्रको कहते है ।

प्रश्न ५७– जातिमद किसे कहते है ?

उत्तर—पाई हुई श्रेष्ठ जातिका मद करनेको जातिमद कहते है । जाति माताके पिता के कुलको कहते है ।

प्रश्न ५८—बलमद किसे कहते है ?

उत्तर– पाई हुई शक्तिका अहङ्कार करनेको बलमद कहते है ।

प्रश्न ५९-- वैभवमद किसे कहते है ?

उत्तर-- पाई हुई ऋद्धि या सपत्तिका घमड करनेको वैभवमद कहते है ।

प्रश्न ६०-- तपोमद किसे कहते है ?

उत्तर-- अपनी तपस्याका घमड करनेको तपोमद कहते है ।

प्रश्न ६१-- रूपमद किसे कहते है ?

उत्तर-- पाये हुये शरीरके सुन्दर रूपपर घमड करनेको रूपमद कहते है ।

प्रश्न ६२-- अनायतन ६ कौन-कौन है ?

उत्तर-- अनायतन अर्थात् अधर्मके स्थान ६ ये है--- (१) कुगुरु, (२) कुगुरुसेवक, (३) कुधर्म, (४) कुधर्मसेवक, (५) कुदेव, (६) कुदेवसेवक ।

प्रश्न ६३– कुगुरु अनायतन किसे कहते है ?

उत्तर– मोक्षमार्गके विरुद्ध आचरण करने वाले कुगुरुओकी सेवा, भक्ति प्रमाण, रुचि आदि आदि करनेको कुगुरु अनायतन कहते है ।

प्रश्न ६४-- कुगुरुसेवक अनायतन किसे कहते है ?

उत्तर-- कुगुरुके सेवक जनोकी सगति करने, धर्मविषयक सम्मति लेने, प्रीति करने, अनुमोदन आदि करनेको कुगुरुसेवक अनायनन कहते है ।

प्रश्न ६५– कुधर्म अनायतन किसे कहते है ?

उत्तर– अहिंसासे विपरीत आचरणोको धर्म मानकर उस कुधर्मकी सेवा, उपासना, अनुष्ठान करनेको कुधर्म अनायतन कहते है।

प्रश्न ६६– कुधर्मसेवक अनायतन किसे कहते है ?

उत्तर– कुधर्मका आचरण करने वालोकी संगति, सम्मति, प्रीति, अनुमति आदि करनेको कुधर्मसेवक अनायतन कहते है।

प्रश्न ६७ —कुदेव अनायतन किसे कहते है ?

उत्तर-- काम, क्रोध, माया आदिका आचरण करने वाले और देव नामसे प्रसिद्ध जीवोकी सेवा, भक्ति, उपासना स्तुति आदि करनेको कुदेव अनायतन कहते है।

प्रश्न ६८—कुदेवसेवक अनायतन किसे कहते है ?

उत्तर—कुदेवोकी सेवा, भक्ति करने वाले जनोको संगति, सम्मति, प्रीति, अनुमति आदि करनेको कुदेवसेवक अनायतन कहते है।

प्रश्न ६९— निश्चयसे अनायतन क्या है ?

उत्तर– निश्चयसे मिथ्यात्व, राग, द्वेषादि विभाव अनायतन हैं। इन विभावोकी रुचि, प्रवृत्तिका त्याग ही अनायतन सेवाका त्याग है।

प्रश्न ७०– मूढता तीन कौन-कौन हैं ?

उत्तर—(१) देवमूढता, (२) लोकमूढता, (३) पाखण्डिमूढता ये तीन मूढता हैं।

प्रश्न ७१-- देवमूढता किसे कहते हैं ?

उत्तर– निर्दोष, सर्वज्ञ, सहजानन्दमय परमात्माके स्वरूपको न जानकर लौकिक प्रयोजनके अर्थ रागी द्वेषी क्षेत्रपाल, भैरव, भवानी, शीतला आदि कुदेवालयोकी आराधना करना देवमूढता कहते हैं ?

प्रश्न ७२—लोकमूढता किसे कहते है ?

उत्तर—नदीस्नान, तीर्थस्नान, बटपूजा, अग्निपात, गिरिपात आदिको पुण्यका कारण मानना और करना सो लोकमूढता है।

प्रश्न ७३-- पाखण्डिमूढता किसे कहते है ?

उत्तर– वीतरागमार्गका शरण छोडकर रागी द्वेषी पाखण्डियोकी, उनके उपदेशकी भयादिसे या लौकिक प्रयोजनवश या धर्म मान कर भक्ति पूजा वन्दन आदि करनेको पाखण्डिमूढता कहते हैं।

प्रश्न ७४-- मूढतारहित सम्यग्दृष्टिकी क्या स्थिति होती है ?

उत्तर– उक्त समस्त मूढताओका परिहार कर निज शुद्ध अन्तस्तत्व रूप देव धर्म गुरुमे अवस्थिति सम्यग्दृष्टि जीवकी होती है।

प्रश्न ७५-- सम्यग्दर्शनसे क्या लाभ होते है ?

उत्तर– सम्यग्दर्शनका साक्षात् लाभ अविकार निजचैतन्यस्वरूपके सवेदनसे उत्पन्न सहज आनन्दके अनुभवका अनुपम लाभ है और नैमित्तिक लाभ कर्मोके भारका हट जाना है तथा औपचारिक लाभ देवेन्द्र, चक्रवर्ती, तीर्थङ्कर आदि पदो और वैभवोकी प्राप्ति है।

प्रश्न ७६—उत्तम पदो और वैभवोका कारण सम्यग्दर्शन कैसे हो सकता है ?

उत्तर—यद्यपि तीर्थङ्करादि उत्तम पदो और वैभवोका कारण पुण्यकर्मका उदय है तथापि ऐसे विशिष्ट पुण्यकर्मोका बन्ध ऐसे निर्मल आत्मावोके ही होता है जो सम्यग्दृष्टि है और जिनके विशिष्टशुभोपयोग होता है। सम्यक्त्वके होनेपर ही शुभ रागके ऐसे वैभवरूप फलनेसे सम्यक्त्वकी महिमा प्रकट हुई। अत. सम्यग्दर्शनका औपचारिक लाभ उत्तम पद और वैभव बताते है।

प्रश्न ७७– सम्यग्दृष्टि जीव मरकर किन किन गतियोमे जाता है ?

उत्तर-- सम्यक्त्वके होनेपर यदि आयुर्बन्ध हो तो सम्यग्दृष्टि नारकी मनुष्यगतिमे जन्म लेता है, सम्यग्दृष्टि देव मनुष्यगतिमे जन्म लेता है, तिर्यञ्च सम्यग्दृष्टि देवगतिमे जन्म लेता है, सम्यग्दृष्टि मनुष्य देवगतिमे जन्म लेता है। केवल इस अवस्थामे कि मनुष्यने पहिले नरकायुका बन्ध कर लिया हो, पश्चात् औपशमिक सम्यक्त्व व पुनः क्षायोपशमिक सम्यक्त्व उत्पन्न करके अथवा केवल क्षायोपशमिक सम्यक्त्व उत्पन्न करके क्षायिक सम्यक्त्व उत्पन्न करले तो वह मनुष्य सम्यग्दृष्टि मर कर पहिले नरकमे उत्पन्न होगा, नीचेके नरकोमे नही।

प्रश्न ७८-- सम्यग्दर्शन की प्राप्तिका साक्षात् उपाय क्या है ?

उत्तर—भूतार्थनयसे तत्त्वोका जानना सम्यग्दर्शनका साक्षात् उपाय है।

प्रश्न ७९—भूतार्थनय क्या है ?

उत्तर—किसी एक द्रव्यको अभिन्नषट्कारकपद्धतिसे जानकर अभेदद्रव्यकी ओर ले जाने वाले अभिप्रायको भूतार्थनय कहते है।

प्रश्न ८०—सम्यग्दर्शन किसके निकट होता है ?

उत्तर– औपशमिक सम्यग्दर्शन व क्षायोपशमिक (वेदक) सम्यग्दर्शन कही भी हो जावे, इसका कोई नियम नही, किन्तु क्षायिक सम्यग्दर्शन केवली या श्रुतकेवलीके निकटमे (पादमूलमे) होता है।

प्रश्न ८१—क्या क्षायिक सम्यग्दर्शन केवलिद्विकके पादमूल विना नही हो सकता ?

उत्तर– निम्नलिखित स्थितियोंमे केवलिद्विकके पादमूल बिना भी क्षायिक सम्यग्दर्शन हो सकता है—

(१) किसी मनुष्यने पहिले नरकायु बाध ली पश्चात् क्षायोपशमिक सम्यक्त्व हुआ। क्षायोपशमिक सम्यक्त्वके होते हुये तीर्थङ्कर प्रकृतिका बन्ध कर लिया। (यह जीव मनुष्यभव के अन्त तक तो क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि रहेगा) किन्तु मरण समयसे लेकर पर्याप्त नारकी होने तक अन्तर्मुहूर्तको मिथ्यादृष्टि होगा। पश्चात् क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि होगा। नरकमे अन्त तक क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि रहेगा। मनुष्यभवमे तीर्थङ्कर होनेके लिये जन्म लेने पर भी क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि रहेगा। मुनि अवस्था होने तक क्षायोपशमिक दृष्टि रहेगा। मुनि अवस्था होने पर यह जीव केवलिद्विकके पादमूल विना क्षायिक सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लेता है।

(२) स्वय श्रुतकेवली भी कोई विना केवलिद्विकके पादमूलके क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त कर सकता है।

इस प्रकार सम्यग्दर्शनका वर्णन करके अब सम्यग्ज्ञानका वर्णन करते है—

ससयविमोहविब्भमविवज्जिय अप्पपरसरूवस्स।
गहणं सम्मण्णाणं सायारमणेयभेय च ॥४२॥

अन्वय—अप्पपरसरूवस्स ससयविमोहविब्भमविवज्जिय गहण सम्मण्णाण, तु सायार-मणेयभेय।

अर्थ—अपने आत्माके व परपदार्थोके स्वरूपका सशय, अनध्यवसाय और विपर्यय-रूप मिथ्याज्ञानसे रहित ग्रहण करने अर्थात् जाननेको सम्यग्ज्ञान कहते है। यह ज्ञान साकार और अनेक भेद वाला है।

प्रश्न १— आत्माका स्वरूप कैसा है ?

उत्तर—आत्मा निश्चयसे ध्रुव चैतन्यस्वरूप है, व्यवहारसे जानना देखना आदि परिणमनरूप है। परमार्थसे आत्मा अवक्तव्य है, किन्तु ज्ञेय अवश्य है।

प्रश्न २— परपदार्थोमे किन-किनका ग्रहण है ?

उत्तर—एक ज्ञाताके स्वय आत्माको छोडकर शेष समस्त अनन्तानन्त आत्मा, समस्त अनन्तानन्त पुद्गल द्रव्य, एक धर्मद्रव्य, एक अधर्मद्रव्य, एक आकाशद्रव्य, असख्यात कालद्रव्य ये सब परपदार्थ है।

प्रश्न ३—इन सबका प्रयोजनभूत स्वरूप क्या जानना चाहिये ?

उत्तर—समस्त पदार्थ स्वतन्त्र हैं, प्रत्येक परस्पर अत्यन्त भिन्न हैं। इस प्रयोजनभूत प्रतीति सहित उन सबके साधारण असाधारण गुणोको जानना चाहिये। साथ ही यह भी जानना चाहिये कि एक मुझ आत्माको छोडकर शेष समस्त अनन्तानन्त आत्मा, अनन्तानन्त पुद्गल, एक धर्मद्रव्य, एक अधर्मद्रव्य, एक आकाशद्रव्य, असख्यात कालद्रव्य—ये सर्व मुझसे

भिन्न है ।

प्रश्न ४—संशय किसे कहते है ?

उत्तर—अनेक कोटियोके स्पर्श करने वाले ज्ञानको सशय कहते है । जैसे किसी चमकीली चीजमे अनेक कोटिके विकल्प उठना कि यह सीप है या चाँदी या काँच, अथवा धर्मका स्वरूप जिनेन्द्रदेव द्वारा प्रणीत ठीक है या अन्य मतो द्वारा कहा हुआ ठीक है, अथवा ब्रह्म कूटस्थ है या परिणामी इत्यादि ।

प्रश्न ५—अनध्यवसाय किसे कहते है ?

उत्तर— जिसमे न तो यथार्थ ज्ञानकी झलक हो, न सशयके भी विकल्प उठ सकें और न विपर्यज्ञान भी हो सके, ऐसे अनिश्चित बोधको अनध्यवसाय कहते है । जैसे कभी चलते हुये पुरुषके पैरमे तृण छू जाय तो साधारण पता तो रहे, किन्तु यह कुछ ख्याल भी नही जमे कि यह क्या है, अथवा जीवका साधारण पता तो रहे कि मै हू, किन्तु यह कुछ भी ख्याल न जमे कि मै क्या हू इत्यादि ।

प्रश्न ६—विपर्ययज्ञान किसे कहते है ?

उत्तर—विपरीत एक कोटिके ज्ञानको विपर्ययज्ञान कहते है । जैसे रस्सीको साँप जान लेना, अथवा आत्माको भौतिक जान लेना अथवा परमात्माको ऐसा समझना कि वह जीवोसे पुण्य अथवा पाप कराता है या जीवोको सुख या दुःख देता है इत्यादि ।

प्रश्न ७—ज्ञान साकार होता है, इसका तात्पर्य क्या है ?

उत्तर—यह जीव है, यह पुद्गल है, यह मनुष्य है, यह तिर्यञ्च है इत्यादि रूपसे निश्चय करने वाले, ग्रहण करने वाले ज्ञानको साकार कहते है । ज्ञानमे ज्ञेय जैसा जाननरूप आकारका ग्रहण होता है, इसलिये ज्ञानको साकार कहते है ।

प्रश्न ८—ज्ञानके कितने भेद है ?

उत्तर—ज्ञानके अनेक दृष्टियोसे अनेक भेद है । जैसे ज्ञान दो प्रकारका है—एक प्रत्यक्ष और दूसरा परोक्ष । ज्ञान ५ प्रकारका है—मति, श्रुत, अवधि, मन पर्यय व केवलज्ञान । ज्ञान आठ प्रकारका है, कुमति, कुश्रुत, कुअवधि, ये ३ मिथ्याज्ञान और मति, श्रुत, अवधि, ये ३ सम्यग्ज्ञान और मन.पर्यय व केवलज्ञान । इनके प्रत्येकके भी अनेक भेद है । इन सबका वर्णन ५वी गाथामे विस्तारपूर्वक कहा है, इसलिये इनका वर्णन यहाँ नही किया जाता है ।

प्रश्न ९—वस्तुतः सम्यग्ज्ञानका क्या लक्षण है ?

उत्तर—निज गुण पर्यायमे एकत्वरूपसे रहने वाले, सहज शुद्ध ज्ञान दर्शन स्वभावमय निज आत्मस्वरूपका ग्रहण करना सम्यग्ज्ञानका लक्षण है ।

प्रश्न १०—शुद्ध स्वभावके अतिरिक्त अन्य भावो व द्रव्योका यथार्थ ज्ञान करना

क्या सम्यग्ज्ञान नही है ?

उत्तर—जिनमे एकता जोडने वाले ज्ञानके होनेपर अन्य पदार्थों व भावोका भी ज्ञान सम्यग्ज्ञान कहलाता है ।

प्रश्न ११—आत्मस्वरूपको जाने या न जाने, केवल बाह्य पदार्थोको यथार्थ जानना सम्यग्ज्ञान क्यो नही कहलाता ?

उत्तर—आत्मस्वरूपमे एकता जोड़े बिना जो भी बाह्यपदार्थ ज्ञानमें आवेंगे उन्हे जानेगा तो किन्तु उनमे एकता जोडकर जानेगा । परमे अपना कुछ भी है, ऐसा वस्तुका स्वरूप ही नही है । अत· वह सम्यग्ज्ञान नही कहलाता । लोकमे लौकिक दृष्टिसे बाह्य पदार्थोका ज्ञान सम्यग्ज्ञान कहलाता है ।

प्रश्न १२—ज्ञानका फल क्या है ?

उत्तर—ज्ञानका फल निश्चयनयमे तो अज्ञाननिवृत्ति है और व्यवहारनयसे उपेक्षा होना, उपादेय एव हेयकी बुद्धि होना फल है ।

प्रश्न १३– सम्यग्ज्ञान होनेपर किससे उपेक्षा हो जाती है ?

उत्तर—सम्यग्ज्ञान होनेपर समस्त अध्रुव भावोसे उपेक्षा हो जाती है ।

प्रश्न १४– सम्यग्ज्ञानीके किसमे उपादेय एव हेय बुद्धि हो जाती है ?

उत्तर– सम्यग्ज्ञान जीवके निज शुद्ध आत्मतत्त्वमे उपादेय बुद्धि होती है और इस ध्रुव निज चैतन्यतत्त्वके अतिरिक्त जितने भी भेद दर्शक, विकल्प, औपाधिक भाव व अन्य सभी पर्याय व परद्रव्य—इन सबमे हेयबुद्धि रहती है ।

प्रश्न १५—निश्चय, व्यवहाररूप उक्त फलोकी तरह क्या ज्ञान भी दो प्रकारका होता है ?

उत्तर—ज्ञानके भी दो भेद है—(१) निश्चयज्ञान और (२) व्यवहारज्ञान ।

प्रश्न १६—निश्चयज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर– जो ज्ञान ज्ञानमय आत्माके साथ एकत्व जोड रहा हो अथवा जो ज्ञान निर्विकल्परूपसे अपना अनुभव न कर रहा हो उसे निश्चयज्ञान कहते है ।

प्रश्न १७– व्यवहारज्ञान किसे कहते है ?

उत्तर—जिस ज्ञानके परपदार्थोकी ओर वासना, विचार एव विकल्प है उस ज्ञानको व्यवहारज्ञान कहते है ।

प्रश्न १८– उक्त दोनो प्रकारके ज्ञानोमे कौन सम्यग्ज्ञान है और कौन मिथ्याज्ञान है ?

उत्तर-- निश्चय ज्ञान तो सम्यग्ज्ञान ही है, किन्तु व्यवहारज्ञान सम्यग्ज्ञान व मिथ्याज्ञान दोनो प्रकारके हो सकते है ।

प्रश्न १९-- ज्ञानको तो सविकल्प ही बताया गया है, ज्ञान निर्विकल्प कैसे हो सकता है ?

उत्तर– ज्ञान अर्थाकारको जाननरूप ग्रहण करता है, अत· सविकल्प है, किन्तु इस लक्षणके अनुसार निश्चयज्ञानके भी स्वसवेदनरूप आकारका ग्रहण होनेसे सविकल्प होनेपर भी बाह्य अर्थविषयक विकल्प न होनेसे अथवा उनका प्रतिभासमात्र होनेके हेतु मुख्यपना न होने से निर्विकल्पपना माना गया है ।

इस प्रकार ज्ञानके वर्णनके पश्चात् अब दर्शनका वर्णन किया जाता है—

ज सामण्ण गहण भावाणं णेव कट्टु आयार ।
अविसेसिदूण अट्ठे दसणमिदि भण्णये समये ।।४३।।

अन्वय—अट्ठे अविसेसिदूण आयार णेव कट्टु जं भावाण सामण्णं गहण त दसणं इदि समये भण्णये ।

अर्थ– पदार्थोंको भेदरूप न करके और उनके आकार आदि विकल्पोको न करके जो पदार्थोंका सामान्य ग्रहण है वह दर्शन है, ऐसा सिद्धान्तोमे कहा गया है ।

प्रश्न १—पदार्थोंके सामान्य ग्रहणका क्या अर्थ है ?

उत्तर—पदार्थोंके सामान्यग्रहणका तर्क दृष्टिसे तो यह अभिप्राय है कि पदार्थोंकी सामान्यसत्ताका अवलोकन दर्शन है । इसमे किसी भी प्रकारका विकल्प, विचार व विशेषका ज्ञान नही है, और सिद्धान्तदृष्टिसे दर्शनका यह अभिप्राय है कि अन्तर्मुख चैतन्यमात्रका जो प्रकाश है अथवा आत्मावलोकन है वह दर्शन है ।

प्रश्न २—इन दोनो लक्षणोमे तो परस्पर विरोध हो गया ?

उत्तर—इन दोनो लक्षणोमे परस्पर विरोध नही है, क्योकि दोनोमे विषय आत्मा ही होता है ।

प्रश्न ३– पदार्थोंकी सामान्यसत्ता आत्मविषय कैसे बन सकती है ?

उत्तर– सर्व पदार्थोंमे तो सामान्य अस्तित्व गुण है वह तो महासत्तारूप है । उस सामान्यसत्ताके प्रतिभासमे कोई नियत पदार्थ सामान्यसत्तासे विशेषित नही होता है । अन्यथा वह आवान्तरसत्ता कहलावेगी, सामान्यसत्ता नही । इसलिये सामान्यसत्तामे कोई पदार्थ विषयभूत नही होता, किन्तु सामान्यसत्ताका प्रतिभास करने वाला है आत्मा, और आत्मा वास्तवमे अपनेको ही देखता जानता है, सो सामान्यसत्ताका प्रतिभास करने वाला स्वयं विषय होता ही है । इस प्रकार पदार्थोंकी सामान्यसत्ताके अवलोकनमे आत्मा ही विषय होता है ।

प्रश्न ४—पदार्थोंकी सामान्यसत्ताका ग्रहण, यह अर्थ गाथामे कैसे निकला ?

उत्तर– गाथामे तो यह शब्द है "ज सामण्ण गहण"। जो सामान्य ग्रहण है वह दर्शन है। यदि "सामण्ण" से पहिले "भावाणं" शब्द लगाते है तो अर्थ निकलता है कि "पदार्थोंका सामान्य ग्रहण"। पदार्थोंका सामान्य धर्म है सामान्यसत्ता, जो कि सबमे व्यापक है। इस प्रकार अर्थ निकला कि पदार्थोंकी सामान्यसत्ताका अवलोकन (ग्रहण) दर्शन है।

प्रश्न ५—यदि "सामण्ण" शब्दसे पहिले "भावाण" शब्द न जोडा जाय तब क्या अर्थ होगा ?

उत्तर—यदि "सामण्ण" से पहिले 'भावाणं' शब्द न जोडा जाय तब यह 'भावाण' शब्द "आयाराण" से पहिले जुडेगा। तब गाथाका यह अन्वय होगा "अट्ठे अविसेसिदूण भावाण आयार णेव कट्टु ज सामण्णं गहणं त दसण इदि समए भण्णये"। इसका अर्थ हुआ कि पदार्थोंको भेदरूप न देख करके और उन भावोका (पदार्थोंका) आकार ग्रहण न करके जो सामान्य रूपसे ग्रहण (प्रतिभास) है वह दर्शन है। ऐसा सिद्धान्तमे कहा गया है।

प्रश्न ६ – सामान्य रूपसे ग्रहण क्या होता है ?

उत्तर—आत्माका अवलोकन ही सामान्यरूपसे ग्रहण कहलाता है अथवा सामान्य के ग्रहणको सामान्य ग्रहण कहते है। सामान्यके मायने है आत्मा, सो आत्माके ग्रहणको सामान्यग्रहण कहते है।

प्रश्न ७– सामान्यका अर्थ आत्मा कैसे हो जाता है ?

उत्तर– "मानेन ज्ञानेन प्रमाणेन सहित समान, समानस्य भाव सामान्यम्" इस व्युत्पत्तिसे यह अर्थ हुआ कि जो द्रव्य ज्ञान करिके सहित है उसे समान कहते है और समानके भावोको सामान्य कहते है। सो समान हुआ चेतन (आत्मा) व समानका भाव हुआ चैतन्य। चैतन्यका चेतन (आत्मा)से अभेद है, अत सामान्यका अर्थ आत्मा हुआ।

अथवा आत्माका जाननेके सबन्धमे समान भाव है अर्थात् आत्माके ऐसा पक्ष नही है कि मैं इसको नही जानने दूगा और इस विषयको जानने दूंगा। क्योकि आत्माका जानन-स्वभाव है, अत जब जैसी योग्यता होती है उसके अनुकूल जानता ही है। अत समानभाव होनेसे सामान्यका अर्थ आत्मा हुआ।

प्रश्न ८– वस्तु सामान्यविशेषात्मक है। उसमे सामान्यका ग्रहण करना दर्शन है व विशेषका ग्रहण करना ज्ञान है, क्या यह अर्थ ठीक प्रतीत होता है ?

उत्तर– नही, वस्तुके सामान्य अशका ग्रहण करने वाला दर्शन और विशेष अशको ग्रहण करने वाला ज्ञान माना जावे तो ज्ञान अप्रमाण हो जावेगा। क्योकि ज्ञानने एक अश ही जाना, अन्य अशोका उसे ज्ञान ही नही है। पूर्ण वस्तुको जानना सो ज्ञान कहलाता है। ज्ञानका विषय अपूर्ण वस्तु नही होता

प्रश्न ९– व्यवहारनय या निश्चयनय भी तो ज्ञान है और वे एक अंशको जानते हैं ?

उत्तर– व्यवहारनय या निश्चयनय यद्यपि ज्ञान है और वे एक अशको जानते है, तथापि कोई भी नय ज्ञान प्रमाण नही माना गया है। क्योकि नय पूर्ण वस्तुको नही जानते है।

प्रश्न १०– तो क्या नय अप्रमाण है ?

उत्तर– नय न तो प्रमाण है और न अप्रमाण है, किन्तु प्रमाणाश है। जैसे कि समुद्रकी बिन्दु न तो समुद्र है और न असमुद्र है, किन्तु समुद्राश है।

प्रश्न ११– निर्विकल्प स्वसवेदन दर्शन कहा जायगा या ज्ञान ?

उत्तर– निर्विकल्प स्वसंवेदन ज्ञानकी ही अवस्था है, अतः ज्ञान कहा जायगा।

प्रश्न १२—ज्ञानका विषय तो परपदार्थ होता है। इस निर्विकल्प स्वसवेदनका विपय कौनसा परपदार्थ है ?

उत्तर– ज्ञानका विषय परपदार्थ ही होता है। ऐसा विपय नही, किन्तु परपदार्थ ज्ञानका ही विषय होता है यह नियम है। इसी प्रकार जिस प्रतिभासका विषय आत्मा हो वह दर्शन हो होता है ऐसा नियम नही है, किन्तु दर्शनका विषय आत्मा ही होता है यह नियम है। ज्ञानका विषयभूत आत्मा भी निराकार आत्मतत्त्वके समक्षपर है।

प्रश्न १३– जब निर्विकल्प, स्वसवेदन और दर्शन—इन दोनोका विपय आत्मा है, तब यह कैसे पहिचाना कि निर्विकल्प स्वसवेदन ज्ञान है, दर्शन नही ?

उत्तर– निर्विकल्प स्वसवेदन सर्वथा निर्विकल्प नही है, किन्तु उसमे निराकुल सहज आनन्दका अनुभव आदि अनेक आकारोका ग्रहण है, अत स्वरूपसे सविकल्प है। निर्विकल्प स्वसवेदनके कालमे अनिहित, ज्ञान प्रयोज्य अनेक सूक्ष्म विकल्प है, किन्तु उनकी मुख्यता नही है, सो वह निर्विकल्प कहा जाता है। जहाँ अर्थ विकल्प है वह ज्ञान है, अतः निर्विकल्प स्वसवेदन ज्ञान है।

दर्शन सर्वथा निर्विकल्प होता है। यह किसी भी गुण, पर्याय, सामान्य, विशेष आदि आकारोका ग्रहण नही करता है। सरल शब्दोमे यह कहा जा सकता है कि कुछ भी ज्ञान करनेके लिये जो प्रतिभासात्मक उद्योग है उसे दर्शन कहते है।

इस प्रकार यद्यपि निर्विकल्प स्वसवेदन व दर्शनका विषय आत्मा है तथापि स्वरूपकृत महान् अन्तर है।

प्रश्न १४—यदि दर्शनका विषय आत्मा है और वह भी अविशेषरूपसे, तो चक्षुर्दर्शन आदिका क्या तात्पर्य रहा ?

उत्तर– चक्षुर्दर्शनका अर्थ चक्षुरिन्द्रियसे देखना, यह अर्थ नही है। चक्षुरिन्द्रियसे देखना

तो ज्ञान कहलाता है। चक्षुर्दर्शनका तात्पर्य तो यह है कि चक्षुरिन्द्रियजन्य ज्ञानने पहिले चाक्षुषज्ञानके लिये किया गया जो आत्मप्रतिभासरूप प्रयत्न (शक्तिग्रहण) है वह चक्षुर्दर्शन है। इसी प्रकार अचक्षुर्दर्शन आदिके सम्बन्धमे जानना।

प्रश्न १५– ज्ञानको तो "स्वपरप्रकाशक" कहा गया है, फिर यहाँ ज्ञानको केवल परग्राहक क्यो कहा जा रहा है ?

उत्तर—जो लोग ज्ञान और दर्शन ऐसी दो शक्तियाँ नही मानकर आत्मामे मात्र ज्ञानशक्ति मानते है और फिर उस ज्ञानको केवल परग्राहक मानते हे उन्हे प्रतिबोध करनेके अर्थ ज्ञानको स्वपरप्रकाशक बताया है अर्थात् ज्ञानको आत्मा व पर दोनोका प्रकाशक कहा है।

प्रश्न १६—यदि ज्ञान वास्तवमे परको ही जानता है, आत्माको नही, तब तो ज्ञान अस्वसवेदी हो जायगा और तब यह ज्ञान सच्चा है, इसके ज्ञानके लिये अन्य ज्ञानकी अपेक्षा करनी पडेगी ?

उत्तर– ज्ञान परको भी जानता है और जिस ज्ञानने परको जाना वह ज्ञान ठीक ही है ऐसी जानकारी सहित जानता है अन्यथा परके ज्ञानमे नि शङ्कता नही आ सकती। अत. ज्ञान अस्वसवेदी नही हो जाता।

प्रश्न १७—"ज्ञान स्वपर-प्रकाशक है" यह क्या बिल्कुल असत्य है या किसी दृष्टि से सत्य है ?

उत्तर– आत्माका असाधारण भाव चैतन्य है। चैतन्यके विकासकी दो पद्धतियाँ है– (१) आत्माके ग्राहकरूपसे प्रवृत्त होना, (२) परद्रव्यके ग्राहक रूपसे प्रवृत्त होना। इनमे पहिली कलाको दर्शन कहते हैं और दूसरी कलाको ज्ञान कहते हैं। आत्माकी समस्त कलावो और शक्तियोका निश्चायक ज्ञान होना है और ज्ञानसे ही समस्त व्यवहार होते है। अत व्यवहार व व्यवहारके प्रसङ्गमे समस्त चैतन्य और ज्ञानमे अभेद विवक्षा करके पश्चात् प्रतिबोध किया जाता है तब "ज्ञान स्वपर-प्रकाशक है" यह बात सत्य ही कथित होती है।

प्रश्न १८– दर्शन सर्वपदार्थोका सामान्य प्रतिभास करता है, यदि यह बात अनुपयुक्त है तो ऐसा कहा ही क्यो गया ?

उत्तर– दर्शन आत्माका प्रतिभास करता है। आत्माके प्रतिभासमे आत्माकी समस्त शक्तियोका विकास भी निर्विकल्परूपसे प्रतिभासमे आ जाता है। इस रीतिसे ज्ञानने जितने परपदार्थोका ग्रहण किया था वे सब पदार्थ भी दर्शनमे गृहीत हो जाते है। इस नयसे "दर्शन सर्वपदार्थोका सामान्य अवलोकन करता है" यह बात उपयुक्त हो जाती है।

प्रश्न १९—जो लोग आत्मामे सिर्फ ज्ञान गुण मानते है उन्हे "ज्ञान आत्मप्रकाशक है" इस कथनके बजाय "आत्मामे दर्शन गुण भी है वह आत्माका प्रकाशक है" ऐसा सीधा

क्यो नही कह दिया जाता है ?

उत्तर — आत्मा ग्राहक दर्शन है, इसको स्वीकार करनेके लिये विशेष मननकी और अनुभवकी आवश्यकता है। तार्किक प्रसङ्गोमे इसका अवसर नही है। वहाँ तो उनकी प्रतीतिके लिये स्थूल रीतिसे निरूपण करके यही बताना कि "ज्ञान स्व व परका प्रकाशक है" उपयुक्त हो जाता है। विवक्षावश इसमे दूषण नही आता है।

प्रश्न २०— जो लोग दर्शन व ज्ञान दोनो गुण मानते है उन्हे "दर्शन पदार्थोंका सामान्य ग्रहण करता है" इस कथनके बजाय "दर्शन आत्माका प्रकाशक है" ऐसा क्यो नही कह दिया जाता ?

उत्तर—स्वसमय सम्बन्धी सूक्ष्म व्याख्यानमे रुचि न रखने वाले जनोकी प्रतीतिके अर्थ व्यवहारनयका उक्त कथन दोष उत्पन्न नही करता है।

इस प्रकार दर्शनके स्वरूपका वर्णन करके अब यह कहा जाता है कि दर्शन और ज्ञान — इन दोनोका उपयोग जीवोमे एक साथ पाया जाता है या क्रमसे ?

दसणपुव्व णाण छदुमत्थाण ण दुण्णि उवओगा।
जुगव जम्हा केवलिणाहे जुगव तु ते दो वि ॥४४॥

अन्वय— छदुमत्थाणं दसणपुव्व णाण, जम्हा दुण्णि उवओगा जुगव ण, तु केवलिणाहे ते दो वि जुगव।

अर्थ—छद्मस्थ जीवोके दर्शनपूर्वक ज्ञान होता है, क्योकि ये दोनो उपयोग वहाँ एक साथ नही होते है, किन्तु केवली भगवान्मे वे दोनो ही उपयोग एक साथ होते है।

प्रश्न १ — छद्मस्थ किसे कहते है ?

उत्तर— छद्मका अर्थ है अज्ञान याने अपूर्ण ज्ञान अथवा ज्ञानावरण, दर्शनावरण ये दो आवरण उसमे जो स्थ कह रहे उसे छद्मस्थ कहते है।

प्रश्न २—छद्मस्थोमे कितने गुणस्थान आ जाते है ?

उत्तर— मिथ्यात्व, सासादनसम्यक्त्व, मिश्रसम्यक्त्व, अविरतसम्यक्त्व, देशविरत, प्रमत्तविरत, अप्रमत्तविरत, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसाम्पराय, उपशान्तमोह, क्षीणमोह—ये १२ गुणस्थान छद्मस्थोमे आते है अर्थात् इन बारह गुणस्थानवर्ती जीवोको छद्मस्थ कहते है।

प्रश्न ३— छद्मस्थोका ज्ञान दर्शनपूर्वक क्यो होता है ?

उत्तर—छद्मस्थ जीवोका ज्ञान अपूर्ण रहता है और जब तक ज्ञान अपूर्ण रहता है तब तक यह योग्यता नही होती कि अन्तर्मुख चित्प्रकाशका उपयोग और बहिर्मुख चित्प्रकाशका उपयोग एक साथ रह सके।

प्रश्न ४– किन-किन दर्शनोपूर्वक कौन-कौनसे ज्ञानोपयोग होते हैं ?

उत्तर—मतिज्ञानसे पहिले चक्षुर्दर्शन व अचक्षुर्दर्शन होते हैं और अवधिज्ञानसे पहिले अवधिदर्शन होता है।

प्रश्न ५— श्रुतज्ञानसे पहिले कौनसा दर्शन होता है ?

उत्तर– श्रुतज्ञान मतिज्ञानपूर्वक होता है, उस मतिज्ञानसे पहिले जो दर्शन हुआ था वही दर्शन श्रुतज्ञानका पूर्वभावी कहना चाहिये, अथवा श्रुतज्ञानसे पहिले होने वाला मतिज्ञान उपचारसे दर्शन कहा जाता है।

प्रश्न ६– श्रुतज्ञानसे साक्षात् पहिले दर्शन न होकर मतिज्ञान ही क्यो होता है ?

उत्तर—श्रुतज्ञान विशेषतया सविकल्प है, इस कारण श्रुतज्ञानसे साक्षात् पहिले दर्शन नही होता है। श्रुतज्ञान मतिज्ञानसे कुछ जाननेपर ही हो सकता है।

प्रश्न ७—दर्शन, मति और श्रुतकी इस पूर्वोत्तरभाविताका उदाहरण क्या है ?

उत्तर—जैसे किसी पुरुषको घटज्ञान होना है उससे पहिले वह कट (चटाई) का ज्ञान कर रहा था। तो वह पुरुष कटज्ञानको छोड़ देता है और घटज्ञानके लिये उद्योग करता है इस स्थितिमे घटका और चक्षुरिन्द्रियका सन्निपात होता है अर्थात् जैसे वह घटको जानेगा उस रूप इन्द्रियकी प्रवृत्तिका उद्योग होता है यह तो दर्शन हुआ। यहां अभी बाह्यपदार्थका ग्रहण नही है। इसके अनन्तर यह पीत कृष्ण आदिरूप है इत्यादि रूपसे अवग्रहादिज्ञान होते है पश्चात् यह घट किसने बनाया, कैसे बनाया, कहा बना, कितनी इसकी स्थिति है आदि ज्ञान हो वे सब श्रुतज्ञान है।

प्रश्न ८—मन पर्ययज्ञानसे साक्षात् पहिले दर्शन क्यो नही होता ?

उत्तर– मन पर्ययज्ञान दूसरेके मनमे होने वाले परिणमनको याने विचार, विकल्पो को जानता है, अत. यह ज्ञान पर्यायज्ञाता है। पर्यायज्ञाता ज्ञानसे पहिले ईहादिरूप मतिज्ञान ही होता है।

प्रश्न ९-- कुज्ञानोसे पहिले कौन-कौनसे दर्शन होते है ?

उत्तर-- कुमतिज्ञानसे पहिले चक्षुर्दर्शन या अचक्षुर्दर्शन होता है। कुश्रुतज्ञानसे साक्षात् पहिले कुमतिज्ञान होता है और परम्परया पहिले चक्षुर्दर्शन या अचक्षुर्दर्शन होता है। कुअवधिज्ञानसे पहिले कुमतिज्ञान होता है।

प्रश्न १० - कुअवधिज्ञानसे पहिले दर्शन क्यो नही होता है ?

उत्तर– कुअवधिज्ञान सम्यग्दृष्टि जीवके नही होता है, अत: उससे पहिले अवधिदर्शन नही होता। सम्यग्दृष्टि अवधिज्ञानी जीवके ही अवधिज्ञानसे पहिले अवधिदर्शन होता है। अथवा किन्ही आचार्योके मतमे कुअवधिसे पहिले भी अवधिदर्शन हो जाता है।

प्रश्न ११– केवली भगवान्‌के दर्शनोपयोग और ज्ञानोपयोग दोनो एक साथ क्यो होते है ?

उत्तर – केवली भगवान्‌के ज्ञानावरण व दर्शनावरण– इन दोनो आवरणोका अभाव होनेसे और वीर्यान्तराय कर्मके अभाव होनेके कारण पूर्ण प्रकट होनेसे दोनो उपयोगोका सहज परिणमन निरन्तर होता रहता है, अत केवली भगवान्‌के दोनो उपयोग एक साथ होते है ।

प्रश्न १२—दर्शन व सम्यग्दर्शनमे क्या अन्तर है ?

उत्तर—ज्ञानोपयोगकी प्रवृत्तिके अर्थ आत्माका अन्तरंगमे आत्मग्रहणरूप जो प्रयत्न होता है उसे दर्शन कहते है । यह दर्शन भव्य, अभव्य, सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि, छद्मस्थ, भगवान सभी आत्माओमे होता है ।

दर्शनके विषयभूत निज आत्माके सहजस्वभावका अनुभव जिस निर्मलताके कारण होता है उसे सम्यग्दर्शन कहते है । सम्यग्दर्शन निकट ससारी भव्य जीव एव भगवानके होता है ।

प्रश्न १३– जब दर्शन सभी जीवोके होता है तो सम्यग्दर्शन सब जीवोके क्यो नही हो जाता है ?

उत्तर —दर्शन तो कुछ भी जाननेके लिये होने वाला अन्तर्मुख प्रयत्न है । यह तो सभी जीवोंके होना ही होता है, चाहे वे मिथ्यादृष्टि हो या सम्यग्दृष्टि । किन्तु सम्यग्दर्शन विपरीत अभिप्रायके नष्ट हुये बिना नही होता है । अतः जिनके विपरीत अभिप्राय है उनके दर्शन होना तो आवश्यक है, परन्तु सम्यग्दर्शन होना उस समय असभव है ।

प्रश्न १४– दर्शन उपयोगके समय तो आत्माका आश्रय रहता है, फिर उसे सम्यक्त्व क्यो नही होता है ?

उत्तर– बाह्य पदार्थोकी जिनके रुचि पाई जाती है वे बाह्य पदार्थके जानने और हितकर माननेकी धुनमे रहते है । अतः दर्शनोपयोग द्वारा आत्ममुख होकर भी उन्हे आत्माकी प्रतीति नही होती, अत दर्शनोपयोगमे होने वाला आत्माश्रय सम्यक्त्वमे होने वाले अथवा सम्यक्त्वके लिये होने वाले आत्माश्रयसे भिन्न है ।

इस प्रकार दर्शनोपयोगके वर्णन तक सम्यग्ज्ञानका अन्तराधिकार समाप्त करके अब सम्यक्चारित्रका निरूपण करते है—

असुहादो विणिवित्ती सुहे पवित्ती य जाण चारित्तं ।
वदसमिदि गुत्तिरूवं ववहारणया दु जिणभणियं ॥४५॥

अन्वय—असुहादो विणिवित्ती य सुहे पवित्ती वदसमिदि गुत्तिरूवं चारित्तं जाण, ववहारणया दु जिणभणियं ।

अर्थ— अशुभक्रियासे निवृत्त होने और शुभक्रियामे प्रवृत्त होनेको व्रत, समिति, गुप्ति स्वरूप चारित्र जानो, ऐसा व्यवहारनयसे जिनेन्द्रदेवने कहा है ।

प्रश्न १– शुक्लध्यानी साधुवोके यह लक्षण न पाया जानेसे यह लक्षण तो अव्यापक रहा ।

उत्तर—यह लक्षण व्यवहारचारित्रका है, चारित्रसामान्यका नही अथवा निश्चय-चारित्रका नही । अत. यह लक्षण व्यवहारचारित्रमे पूर्ण प्रकारसे घटित होता है ।

प्रश्न २– अहिंसा महाव्रतके पालनमे यह लक्षण कैसे घटित होता है ?

उत्तर—अहिसा महाव्रतमे हिंसामे निवृत्ति और दयामे प्रवृत्ति होती है, अतः अहिंसा व्रतमे अशुभनिवृत्ति व शुभप्रवृत्ति सिद्ध हे ।

प्रश्न ३—सत्यमहाव्रतके पालनमे यह लक्षण कैसे घटित होता ?

उत्तर– सत्यमहाव्रतमे असत्य, अहित, चुगलीके, निन्दाके वचनोसे निवृत्ति होती है और सत्य, हितरूप, भक्तिभरे वचनोमे प्रवृत्ति होती है, अत इसमे भी व्यवहारचारित्रका लक्षण सिद्ध है ।

प्रश्न ४– अचौर्यमहाव्रतमे किससे निवृत्ति और किसमे प्रवृत्ति है ?

उत्तर– अचौर्यमहाव्रतमे चोरी व जबरदस्तीसे तो निवृत्ति हे और आज्ञा लेकर स्वोचित वस्तु ग्रहण करने व भक्ति सहित दी हुई योग्य वस्तुके ग्रहण करने व आगमकी पद्धतिके अनुसार आहारादि ग्रहण करनेमे प्रवृत्ति है ।

प्रश्न ५—ब्रह्मचर्यमहाव्रतमे किससे निवृत्ति और किससे प्रवृत्ति है ?

उत्तर—सर्व प्रकारके मैथुन प्रसङ्गोसे निवृत्ति और शीलके साधक साधनोमे प्रवृत्ति इस महाव्रतमे होती है ।

प्रश्न ६—परिग्रहत्याग महाव्रतमे किससे निवृत्ति और किसमे प्रवृत्ति होती है ?

उत्तर—परिग्रहत्याग महाव्रतमे धन धान्य आदि सर्व परिग्रहोसे निवृत्ति और वन-निवास, नग्नत्व आदिमे प्रवृत्ति होती है ।

प्रश्न ७—ईर्यासमितिमे किससे निवृत्ति और किसमे प्रवृत्ति होती है ?

उत्तर—ईर्यासमितिमे सचित स्थानोसे निवृत्ति और पिच्छिका द्वारा शरीर शोधन, स्थानशोधन आदिमे पवृत्ति होती है ।

प्रश्न ८– भाषासमितिमे किससे निवृत्ति और किसमे प्रवृत्ति होती है ?

उत्तर– भाषासमितिमे अहित, अपरिमित व अप्रिय वचनोके बोलनेसे निवृत्ति और हित, मित प्रिय वचन बोलनेमे प्रवृत्ति होती है ।

प्रश्न ९—ऐषणासमितिमे किससे निवृत्ति और किसमे प्रवृत्ति होती है ?

उत्तर— ऐषणासमितिमे अयोग्यविधिसे चर्या करना, अयोग्य आहारपान करना आदिसे निवृत्ति और योगविधिसे चर्या, योग्य आहारपान आदिमे प्रवृत्ति होती है।

प्रश्न १०—आदाननिक्षेपणसमितिमे किससे निवृत्ति और किसमे प्रवृत्ति होती है ?

उत्तर— सचित्त पदार्थोके धरने उठानेसे निवृत्ति और पिच्छिकासे जीवोको सावधानी से हटाकर धरने उठानेमे प्रवृत्ति इस समितिमे होती है।

प्रश्न ११—प्रतिष्ठापना समितिमे किससे निवृत्ति और किसमे प्रवृत्ति होती है ?

उत्तर—प्रतिष्ठापनासमितिमे सचित्त (जीवसहित) स्थानपर मल मूत्र आदि क्षेपणसे निवृत्ति और पिच्छिकासे स्थान शोध कर मल-मूत्रादिक्षेपणमे प्रवृत्ति होती है।

प्रश्न १२—मनोगुप्तिमे किससे निवृत्ति और किसमे प्रवृत्ति होती है ?

उत्तर— विषयकषायोमे मनके लगानेसे निवृत्ति और आत्मतत्त्वके मनन, ध्यानमे मनकी प्रवृत्ति मनोगुप्तिमे होती है।

प्रश्न १३— वचनगुप्तिमे किससे निवृत्ति और किसमे प्रवृत्ति होती है ?

उत्तर— कठोर, अहित वचनोके बोलनेसे निवृत्ति और मौन धारणमे प्रवृत्ति वचन-गुप्तिमे होती है।

प्रश्न १४—कायगुप्तिमे किससे निवृत्ति और किसमे प्रवृत्ति होती है ?

उत्तर— खोटे कार्यमे शरीरकी क्रियासे निवृत्ति और उपसर्ग आदिमे आनेपर भी शरीरको निश्चल रखनेमे प्रवृत्ति कायगुप्तिमे होती है।

प्रश्न १५— उक्त १३ प्रकारके चारित्रके लक्षणोमे जो बाह्य विषयोका त्याग अथवा शुभक्रियामे अथवा अन्य शुभ साधनोमे प्रवृत्ति कही है वह आत्माका चारित्र कैसे हो सकता है ?

उत्तर— उक्त बाह्यविषयक प्रवृत्ति व निवृत्ति उपचरित असद्भूत व्यवहारनयसे चारित्र कहा जाता है।

प्रश्न १६— उक्त १३ प्रकारके चारित्रोमे जो रागद्वेषका परिहार अथवा आत्मतत्त्वके चिन्तन, अवलोकनमे उपयोग रहता है यह किस नयसे आत्माका चारित्र है ?

उत्तर— चारित्रमे जो रागादि परिहार व आत्मतत्त्वका मनन अवलोकन आदि यत्न है वह अनुपचरित व्यवहारनय अथवा अशुद्ध निश्चयनयमे चारित्र है।

प्रश्न १७— सयमासयमको चारित्र कहते है या नही ?

उत्तर - संयमासयम एक देश व्यवहारचारित्र है। जिस सम्यग्दृष्टि मनुष्य या तिर्यञ्च के त्रसवधका तो त्याग है और वह शेष पञ्च स्थावर जीवोके घातका त्याग न कर सके तो उसके सयमासयम होता है। समस्त सयमासयम सरागचारित्रका एक देश अग है।

प्रश्न १८-- क्या सयमासयमके सब स्थानोमे पञ्च स्थावरके घातत्याग नही हो पाता ?

उत्तर-- सयमासयमके ऊपरी स्थानोमे यद्यपि स्थावरका घात रुक जाता है तथापि सर्वथा त्यागका नियम महाव्रतमे होता है ।

प्रश्न १९-- सयमासयमके स्थान कितने है ?

उत्तर– सयमासयमके असंख्यात स्थान है, किन्तु यदि उन्हे सक्षेपमे श्रेणिबद्ध किया जावे तो उनकी श्रेणी ११ की जा सकती है । इन श्रेणियोको प्रतिमा (प्रतिज्ञा) भी कहते है ।

प्रश्न २०-- ग्यारह प्रतिमायें कौन-कौनसी है ?

उत्तर–श्रावककी ११ प्रतिमाये इस प्रकार है—(१) दर्शन प्रतिमा, (२) व्रत प्रतिमा, (३) सामायिक प्रतिमा, (४) प्रोषध प्रतिमा, (५) सचित्तत्याग प्रतिमा, (६) रात्रिभुक्तित्याग प्रतिमा या दिवामैथुनत्याग प्रतिमा, (७) ब्रह्मचर्य प्रतिमा, (८) आरम्भत्याग प्रतिमा, (९) परिग्रहत्यागप्रतिमा, (१०) अनुमतित्याग प्रतिमा, (११) उद्दिष्टाहारत्याग प्रतिमा ।

प्रश्न २१-- दर्शन प्रतिमा किसे कहते है ?

उत्तर-- जहाँ सम्यग्दर्शन प्रकट हो गया है एव ससार शरीर व भोगोसे वैराग्य हो चुका है और इसी कारण उन समस्त अभक्ष्य पदार्थोका जिनमे त्रसघात होता है, त्याग भी हो चुका है उसे दर्शनप्रतिमा कहते है । इस प्रतिमाका धारक श्रावक अनन्त स्थावर घात वाले अभक्ष्य, जैसे आलू, मूली आदि नही खाता है व मर्यादित भोजन सामग्रीका उपयोग करता है । यह दार्शनिक श्रावक परमेष्ठिभक्तिमे निज आत्मतत्त्वकी दृष्टिमे रहकर आगे चारित्रमे बढनेका उत्साह रखता है ।

प्रश्न २२– व्रत प्रतिमा किसे कहते है ?

उत्तर– अहिंसाणुव्रत, सत्याणुव्रत, अचौर्याणुव्रत, ब्रह्मचर्याणुव्रत, परिग्रहपरमाणुव्रत, इन पांच अणुव्रतोका निरतिचार पालन करना एव दिग्व्रत, देशव्रत, अनर्थदण्डव्रत, सामायिक प्रोषधोपवास, भोगोपयोगपरिमाणव्रत व अतिथिसविभागव्रत—इन ७ शीलोका पालन करना तो व्रतप्रतिमा है ।

प्रश्न २३– सामायिक प्रतिमा किसे कहते है ?

उत्तर—प्रात, मध्याह्न, अपराह्न, इन तीन कालोमे विधिपूर्वक निरतिचार कमसे कम २ घडी तक सामायिक करनेको सामायिक प्रतिमा कहते है ।

प्रश्न २४– प्रोषध प्रतिमा किसे कहते है ?

उत्तर—प्रत्येक अष्टमी व चतुर्दशीको उत्तम, मध्यम व जघन्य रूपसे प्रोषधोपव्रत करनेको प्रोषधप्रतिमा कहते है ।

प्रश्न २५– प्रोषधोपवासका उत्तम रूप क्या है ?

उत्तर– सप्तमीको एक बार आहारपान करके आहारपानका त्याग कर देना और फिर नवमीको एक बार ही आहारपान करना सो उत्तम प्रोषधोपवास है। इसी तरह त्रयोदशी को एक बार आहारपान करके आहारपानका त्याग कर देना और फिर पन्द्रसके दिन एक बार ही आहारपान करना उत्तम प्रोषधोपवास है। सप्तमी और त्रयोदशीको धारणाका दिन कहते है और नवमी व पन्द्रसको पारणाका दिन कहते है।

प्रश्न २६– प्रोषधोपवासका मध्यम रूप क्या है ?

उत्तर– धारणाके दिन एक बार ही आहारपान करना पर्वके दिन केवल जल ही लेना पश्चात् पारणाके दिन एक बार ही आहार करना यह प्रोषधोपवासका मध्यम रूप है।

प्रश्न २७– प्रोषधोपवासका जघन्य रूप क्या है ?

उत्तर—धारणाके दिन एक बार ही आहारपान करना, पर्वके दिन नीरस या एक दो रस सहित आहारपान करना, पश्चात् पारणाके दिन एक बार ही आहारपान करना यह प्रोषधोपवासका जघन्य रूप है।

प्रश्न २८– प्रोषधोपवासमें अन्य कर्तव्य क्या है ?

उत्तर– प्रोषधोपवासमे धारणाके आहारपान करनेके बादसे पारणाके आहारपान करनेसे पहिले तक आरम्भ, व्यापारका त्यागकर धर्मध्यान सहित समय व्यतीत करना विशेष कर्तव्य है।

प्रश्न २६–सचित्तत्याग प्रतिमा किसे कहते है ?

उत्तर—सचित्त जल एव वनस्पतिके खाने-पीनेका त्याग करना सो सचित्तत्याग प्रतिमा है। सचित्तत्याग प्रतिमाधारी बरसातमे पत्ते तथा बिना दले, बिना बटे अन्न व बीजको भी नही खाता है।

प्रश्न ३०– दिवामैथुनत्याग प्रतिमा किसे कहते है ?

उत्तर—दिनमे काम विकारके भाव व प्रयत्नोके त्याग करनेको दिवामैथुनत्याग प्रतिमा कहते है। इस छठी प्रतिमाका दूसरा नाम रात्रिभुक्तित्याग प्रतिमा भी है। इसका अर्थ है रात्रिको भोजन पान करने, कराने व अनुमोदना करनेका मन, वचन, कायसे त्याग होना।

प्रश्न ३१– स्वय रात्रिमे भोजन करनेका त्याग किस प्रतिमासे हो जाता है ?

उत्तर– रात्रिमे भोजन करनेका त्याग पहली प्रतिमासे हो जाता है, किन्तु पहली प्रतिमामे प्रात व सायकालकी आदि अन्तकी दो घडियोमे कभी कुछ अतिचार हो जाता था, लेकिन व्रत प्रतिमासे रात्रिभोजनत्यागका निरतिचार होता है।

प्रश्न ३२—ब्रह्मचर्य प्रतिमा किसे कहते है ?

उत्तर– मन, वचन, कायसे स्वस्त्रीविषयक भी कामभावका सर्वथा त्याग कर देना ब्रह्मचर्य प्रतिमा है।

प्रश्न ३३– आरम्भत्याग प्रतिमा किसे कहते है ?

उत्तर—आरम्भ, व्यापारका त्याग कर देनेको आरम्भत्यागद्रव्यसग्रह प्रतिमा कहते है। आरम्भत्यागप्रतिमाधारी श्रावक धनका नवीन उपार्जन नही करता और बैलगाडी, तागा, घोडा, ऊँट, हाथी आदि सवारियोका भी त्याग कर देता है।

प्रश्न ३४– परिग्रहत्याग प्रतिमा किसे कहते है ?

उत्तर– आवश्यक वस्त्र, पात्रके अतिरिक्त सर्वपरिग्रहका त्याग कर देनेको परिग्रहत्याग प्रतिमा कहते है।

प्रश्न ३५—अनुमतित्याग प्रतिमा किसे कहते है ?

उत्तर– गृहकार्य, आरम्भ, व्यापार, भोजनव्यवस्था आदिकी अनुमतिका भी त्याग कर देनेको अनुमतित्यागप्रनिमा कहते है।

प्रश्न ३६—उद्दिष्टाहारत्याग प्रतिमा किसे कहते है ?

उत्तर—दूसरोके उद्देश्यसे व केवल उस पात्रके उद्देश्यसे बनाये हुये आहारके त्याग कर देनेको उद्दिष्टाहारत्याग प्रतिमा कहते है। इस प्रतिमाके धारक दो प्रकारके होते है—(१) क्षुल्लक, (२) ऐलक। क्षुल्लक एक लगोट व एक चादर धारण करता है। जीवदयाके लिये पीछी या मृदुवस्त्र रखता है। कैंची उस्तरेसे बाल बनवा लेता है या केशलोच करता है। ऐलक केवल लगोट धारण करता है। जीवदयाके लिये केवल पीछी ही धारण करता है। केशलोच करता है, बाल नही बनवाता।

प्रश्न ३७—क्या ऐलक सकलचारित्रका धारक नही कहलाता ?

उत्तर—ऐलक यद्यपि मुनित्वके अधिक समीप है तथापि खण्डवस्त्रका परिग्रह होनेसे सकलचारित्रका धारक नही कहला सकता।

प्रश्न ३८-- क्या यह सकलचारित्रका पालन ही मुमुक्षुका ध्येय है ?

उत्तर– यह सकलचारित्र सरागचारित्र व व्यवहारचारित्र है, अत. साध्य नही है, किन्तु साध्य निश्चयचारित्रका साधन है।

अब इस व्यवहारचारित्र द्वारा साध्य जो निश्चयचारित्र है उसका वर्णन करते है—

बहिरब्भतरकिरियारोहो भवकारणप्पणासट्ठ ।
णाणिस्स ज जिणुत्त त परम सम्मचारित्त ॥४६॥

अन्वय—भवकारणप्पणासट्ठ णाणिस्स बहिरब्भतरकिरियारोहो ज जिणुत्त त परम सम्मचारित्त।

अर्थ—ससारके कारणोके नाशके अर्थ ज्ञानी जीवके बाह्य तथा आभ्यतर क्रियावोका निरोध जो जिनेन्द्रदेवने कहा है वह निश्चय सम्यक्चारित्र है।

प्रश्न १– ससार किसे कहते है ?

उत्तर– पुराने शरीरको छोडकर नये-नये शरीरोको ग्रहण कर नाना योनि और कुलो मे भ्रमण करते हुए विकल्पोके दुःख भोगनेको ससार कहते है ।

प्रश्न २– ससारके कारण क्या है ?

उत्तर– मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग ससारके कारण है ।

प्रश्न ३– सम्यक्चारित्रमे ससारके कारणोके विनाशका प्रयोजन क्यो निहित है ?

उत्तर– सम्यक्चारित्र शाश्वत, स्वाभाविक, सत्य आनन्दके विकासके लिये ही होता है, अतः ससारका विनाश होना व एतदर्थ ससारके कारणोका विनाश हो जाना इसमे आवश्यक ही है ।

प्रश्न ४—ससारके कारणोके विनाशका क्या उपाय है ?

उत्तर– बाह्य तथा आभ्यन्तर क्रियावोका निरोध ससारके कारणोके विनाशका उपाय है ।

प्रश्न ५—बाह्यक्रियायें किन्हे कहते है ?

उत्तर– वचन और शरीरको शुभ अथवा अशुभ सभी चेष्टाओको बाह्यक्रियाये कहते है ।

प्रश्न ६—आभ्यंतरक्रियाये किन्हे कहते है ?

उत्तर—मनके सभी विकल्पोको, चाहे वे शुभ या अशुभ हो, स्थूल या सूक्ष्म हो आभ्यन्तरक्रियाये कहते है ।

प्रश्न ७-- बाह्य व आभ्यतर क्रियावोके निरोध होनेपर आत्माकी क्या स्थिति होती है ?

उत्तर– मन, वचन, कायकी सर्वक्रियावोके निरोध होनेपर निर्विकार सहज चैतन्यस्वरूप स्वके सवेदन बलसे सहज आनदके अनुभवकी निर्विकल्प दशा आत्माके होती है ।

प्रश्न ८-- ऐसी निर्विकल्प दशा ज्ञानीकी कैसे होती है ?

उत्तर-- यह निर्विकल्प परमसमाधि निश्चयरत्नत्रयस्वरूप अभेद ज्ञानमे बर्तं रहे अभेदज्ञानीके होती है ।

प्रश्न ९—यह निश्चयसम्यक्चारित्र किन गुणस्थानोमे होता है ?

उत्तर– निश्चयसम्यक्चारित्रका प्रारम्भ तो सम्यक्त्व होते ही हो जाता है, क्योकि सम्यक्त्वके साथ सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रका प्रारम्भ हो जाता है । परन्तु जहाँ तक सरागचारित्र चलता हे वहा तक व्यवहारचारित्रकी मुख्यता रहती है, अतः मुख्यरूपसे निश्चय सम्यक्चारित्र ८वे गुणस्थानसे १४वे गुणस्थान तक रहता है । सज्वलन कषायका उदय मद

होनेसे सप्तम गुणस्थानमे भी निश्चयसम्यक्चारित्रको प्रधान कहा जाता है ।

प्रश्न १०—चतुर्थ आदि गुणस्थानोमे निश्चयसम्यक्चारित्र किस रूपमे रहता है ?

उत्तर—चतुर्थ आदि गुणस्थानोमे निश्चयसम्यक्चारित्र स्वरूपाचरण चारित्रके रूपमे रहता है ।

प्रश्न ११—क्या देशचारित्र व सकलचारित्रके समय स्वरूपाचरण चारित्र नही रहता है ?

उत्तर—देशचारित्र व सकलचारित्रके समय भी स्वरूपाचरण चारित्र रहता है । इसी कारण यहाँ भी निश्चयसम्यक्चारित्र है, किन्तु सरागचारित्र रूप व्यवहारचारित्रके कारण वह गौण रूपसे है ।

इस प्रकार सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्रका सक्षेपमे वर्णन करके अब उक्त मार्गके उपायभूत ध्यानके अभ्यासका उपदेश श्रीमत्सिद्धान्तचक्रवर्ती जी करते है—

दुविहंपि मोक्खहेऊ झाणे पाउणदि ज मुणी णियमा ।
तम्हा पयत्तचित्ता जूय झाण समब्भसह ॥४७॥

अन्वय—जं मुणी दुविहंपि मोक्खहेऊ झाणे णियमा पाउणदि, तम्हा पयत्तचित्ता जूय झाण समब्भसह ।

अर्थ—जिस कारणमे कि मुनि दोनो प्रकारके मोक्षके कारणोको ध्यानके द्वारा नियम प्राप्त कर लेता है, उस कारणसे प्रयत्नचित्त होकर तुम सब ध्यानका अभ्यास करो ।

प्रश्न १—रत्नत्रयकी प्राप्तिका उपाय ध्यान ही क्यो है ?

उत्तर—रत्नत्रय ज्ञानके दृढ एव स्थिर विकासको कहते है । ज्ञानका विकास ध्यानसे ही होता है । अत रत्नत्रयकी प्राप्तिका उपाय ध्यान ही है ।

प्रश्न २—सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र—ये तीनो ज्ञानस्वरूप क्यो है ?

उत्तर—भेददृष्टिसे तो ये तीन पृथक् पृथक् स्वरूप वाले है, किन्तु अभेददृष्टिसे श्रद्धान स्वभावसे ज्ञानके होनेको सम्यग्दर्शन कहते है । ज्ञान स्वभावसे ज्ञानके होनेको सम्यग्ज्ञान कहते है और रागादि परिहरणस्वभावसे ज्ञानके होनेको सम्यक्चारित्र कहते है ।

प्रश्न ३—ज्ञान गुण तो चेतन है, क्या श्रद्धान व चारित्र गुण भी चेतन है ?

उत्तर—यद्यपि चेतन तो ज्ञान गुण है और चेतनेका कार्य न करनेसे श्रद्धान व चारित्र गुण अचेतन है तथापि ये दोनो ज्ञानकी ही पद्धतियाँ होनेसे अभेददृष्टिसे चेतन ही है । एक श्रद्धान और चारित्र ही क्या, आत्माके सभी गुण अभेददृष्टिसे चेतन है ।

प्रश्न ४—किस ध्यानके प्रतापसे मोक्षहेतुकी सिद्धि होती है ?

उत्तर—धर्मध्यान और शुक्लध्यान—इन दोनो ध्यानके द्वारा ही मोक्षमार्गकी सिद्धि हो सकती है। इन दोनो ध्यान और इनके प्रभेदोमे उत्तरोत्तरके ध्यानसे मोक्षमार्गकी सिद्धि बढती चली जाती है।

प्रश्न ५—समस्त ध्यान कितने होते है ?

उत्तर— ध्यान १६ होते है–आर्तध्यान ४, रौद्रध्यान ४, धर्मध्यान ४, शुक्लध्यान ४।

प्रश्न ६—आर्तध्यान चार कौन-कौनसे है ?

उत्तर—इष्टवियोगज, अनिष्टसयोगज, वेदनाप्रभव और निदान ये चार आर्तध्यान है।

प्रश्न ७– इष्टवियोगज आर्तध्यान किसे कहते है ?

उत्तर—इष्ट वस्तु या इष्ट बन्धु मित्रके वियोग होनेमे जो उसके सयोगके लिये चिन्तवन रहता है उसे इष्टवियोगज आर्तध्यान कहते है।

प्रश्न ८—अनिष्टसंयोगज आर्तध्यान किसे कहते है ?

उत्तर—अनिष्ट वस्तु या अनिष्ट बन्धु आदिके सयोग होनेपर उसके वियोगके लिये जो चिन्तवन रहता है उसे अनिष्टसयोगज आर्तध्यान कहते है।

प्रश्न ९—वेदनाप्रभव आर्तध्यान किसे कहते है ?

उत्तर— व्याधि होनेपर जो उस वेदनाविषयक चिन्तवन रहना है उसे वेदनाप्रभव आर्तध्यान कहते है।

प्रश्न १०—निदान आर्तध्यान किसे कहते है ?

उत्तर— इस लोकसम्बन्धी अथवा परलोक सम्बन्धी आगामी कालमे भोग आदिकी वाञ्छा करनेको निदान आर्तध्यान कहते है।

प्रश्न ११– रौद्रध्यान चार कौन-कौनसे है ?

उत्तर— हिसानन्द मृषानन्द, चौर्यानन्द, विषयसरक्षणानन्द ये चार रौद्रध्यान है।

प्रश्न १२– हिसानन्द रौद्रध्यान किसे कहते है ?

उत्तर—हिसाके करने कराने व अनुमोदनामे आनन्द माननेको हिसानन्द रौद्रध्यान कहते है।

प्रश्न १३—मृषानन्द रौद्रध्यान किसे कहते है ?

उत्तर— झूठके बोलने, बुलवाने व अनुमोदना करनेमे तथा चुगली निन्दा आदिमे आनद माननेको मृषानन्द रौद्रध्यान कहते है।

प्रश्न १४—चौर्यानन्द रौद्रध्यान किसे कहते है ?

उत्तर— चोरी करने व करानेमे, चोरीकी अनुमोदनामे, चोरीको उत्साह दिलानेमे, चोरीका माल रखने खरीदनेमे आनन्द माननेको चौर्यानन्द रौद्रध्यान कहते है।

प्रश्न १५– विपयसरक्षणानन्द रौद्रध्यान किसे कहते है ?

उत्तर—पञ्चइन्द्रियोके विषयसाधनोके सरक्षणमे, परिग्रहके उपार्जन व रक्षणमे आनन्द माननेको विषयसरक्षणानन्द रौद्रध्यान कहते है।

प्रश्न १६—धर्म्यध्यान ४ कौन-कौन है ?

उत्तर– आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय, सस्थानविचयमे चार धर्म्यध्यान है।

प्रश्न १७—आज्ञाविचय धर्मध्यान किसे कहते है ?

उत्तर– जिनेन्द्रदेव अन्यथावादि नही होते, इस प्रतीतिके कारण जिनेन्द्रदेवकी आज्ञाके अनुसार सूक्ष्म तत्त्वोका निश्चय करना आज्ञाविचय धर्म्यध्यान है।

प्रश्न १८—अपायविचय धर्म्यध्यान किसे कहते है ?

उत्तर—भेदरत्नत्रय व अभेदरत्नत्रयकी भावनाके द्वारा हमारे व अन्य भव्यात्मावोके रागादि भावका कब विनाश होगा आदि प्रकारसे कर्मोके अपायका और मुक्तिके उपायका चिन्तवन करना सो अपायविचय धर्म्यध्यान है।

प्रश्न १९—विपाकविचय धर्म्यध्यान किसे कहते है ?

उत्तर– यद्यपि यह आत्मा स्वभावसे अविकार सहज चैतन्यस्वभावमय है तथापि पुण्यकर्मके उदयसे सुखका व पापकर्मके उदयसे दु खका अनुभव करता है इत्यादि प्रकारसे कर्मविपाकका चिन्तवन करना सो विपाकविचय धर्म्यध्यान है।

प्रश्न २०– सस्थानविचय धर्म्यध्यान किसे कहते है ?

उत्तर– लोककी रचनाओका व वहाँ सर्वत्र प्रदेशोमे जन्म-मरण करने आदिका चितवन करनेको सस्थानविचय धर्म्यध्यान कहते है।

प्रश्न २१—शुक्लध्यान चार कौन-कौन है ?

उत्तर—पृथक्त्ववीतर्कविचार, एकत्ववितर्कअवीचार, सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति, व्युपरतक्रियानिवृत्ति, ये चार शुक्लध्यान है।

प्रश्न २२– पृथक्त्ववीतर्कविचार शुक्लध्यान किसे कहते है ?

उत्तर-- पृथक्त्वका अर्थ है द्रव्य, गुण और पर्यायकी भिन्नता, वितर्कका अर्थ है निज शुद्ध आत्माको अनुभवरूप भावश्रुत अथवा भावश्रुतका वाचक अन्तर्जल्परूप वचन, वीचारका अर्थ है किसी अर्थसे अर्थान्तरमे, किसी वचनसे वचनान्तरमे, किसी योगसे योगान्तरमे परिणमना। उक्त प्रकारसे बिना चाहे अपने आप परिवर्तनसहित परिणमन होता रहे, ऐसे विराग शुक्लध्यानको पृथक्त्ववीतर्कविचार शुक्लध्यान कहते है।

प्रश्न २३– एकत्ववितर्क अवीचार शुक्लध्यान किसे कहते है ?

निज शुद्ध द्रव्यमे, निजके निरुपाधिगुणमे व निराकुल स्वसवेदन पर्यायमे जिस एक

तत्वमे उपयुक्त हुआ उसहीमे स्वसंवेदन रूप भावश्रुतके द्वारा स्थिर होना, उसमे कुछ भी परिवर्तन नही होना ऐसे ध्यानको एकत्ववितर्क अविचार शुक्लध्यान कहते है। इस शुक्लध्यानकी समाप्ति होते ही केवलज्ञानकी उत्पत्ति हो जाती है।

प्रश्न २४— सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति शुक्लध्यान किसे कहते है ?

उत्तर— जहां केवल सूक्ष्मकाययोग रहे और जिसका कभी प्रतिपात याने पतन न हो उस परिणमनको सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति शुक्लध्यान कहते है। यह ध्यान १३ वे गुणस्थानके अन्तमे होता है।

प्रश्न २५— व्युपरतक्रियानिवृत्ति शुक्लध्यान किसे कहते है ?

उत्तर—जहाँ पर समस्त क्रिया (योग) का अभाव हो चुका हो और पुन कभी योग आ ही न सके, ऐसे परिणमनको व्युपरतक्रियानिवृत्ति शुक्लध्यान कहते है। यह ध्यान १४ वें गुणस्थानमे होता है।

प्रश्न २६—सयोगकेवली व अयोगकेवली गुणस्थानमे तो मनोबल है ही नही, फिर वहाँ ध्यान कैसे बन सकता है ?

उत्तर—सयोगकेवली व अयोगकेवली गुणस्थानमे केवलज्ञान होनेसे वहाँ मनोबल नही है, अत निश्चयसे तो वहाँ ध्यान होना नही घटता तथापि ध्यानका उत्कृष्ट फल कर्मनिर्जरा है और सयोगकेवली एव अयोगकेवलीमे कर्मनिर्जरा पाई जाती है, अत उपचारसे इन दोनो गुणस्थानोमे भी ध्यान माना गया है।

प्रश्न २७—ध्यान कहते किसे हैं ?

उत्तर—एक ओर चिन्तवनके रुक जाने याने ठहर जानेको ध्यान कहते है। यद्यपि यह ध्यान मन वाले जीवके ही होना चाहिये, किन्तु शुभध्यानका फल कर्मनिर्जरा सयोगकेवली व अयोगकेवलीके पाई जानेसे अन्तिम अन्तिम शुक्लध्यान होते है। तथा एकेन्द्रियसे असज्ञी पञ्चेन्द्रिय तक भी अशुभध्यानका फल कर्मास्रव पाया जाने से ४ आर्तध्यान व ४ रौद्रध्यान होते है।

प्रश्न २८—उक्त १६ ध्यानोमे कौनसे ध्यान ससारके कारण है और कौनसे ध्यान मोक्षके कारण है ?

उत्तर—चार आर्तध्यान व चार रौद्रध्यान तो ससारके कारण है और चार धर्मध्यान यद्यपि मुख्यतासे पुण्यबन्धनके कारण है तथापि परम्परया मुक्तिके कारण है। चार शुक्लध्यानमे अन्तिम तीन शुक्लध्यान तो साक्षात् मुक्तिके कारण है और पृथक्त्ववितर्कवीचार भी साक्षात् मुक्तिका कारण है, परन्तु चारित्रमोहके उपशमक साधुवोके चारित्रमोहके उपशम के कारण इस ध्यानके उत्पन्न होनेसे चारित्रमोहका उदय अवश्यम्भावी है और अतएव यह

ध्यान प्रतिपाती हो जाता है।

प्रश्न २६—उत्तम ध्यानकी प्राप्तिके लिये क्या कर्तव्य होना चाहिये ?

उत्तर—देखे, सुने व अनुभव किये हुये समस्त विषयोके विकल्पोका त्याग होना चाहिये।

प्रश्न ३०—विकल्पोके त्याग कर देनेका उपाय क्या है ?

उत्तर—प्रथम तो पदार्थोंका स्वरूप जानना चाहिये पश्चात् जो भेदज्ञान होता है उस भेदज्ञानके द्वारा समस्त परपदार्थोंसे भिन्न निज आत्मतत्त्वकी प्रतीति होनी चाहिये। इस आत्मतत्त्वकी प्रतीतिके बलसे सहज आनन्दका अनुभव होता है। यही निर्विकल्प स्वका अनुभव होनेसे आत्मानुभव है। इस आत्मानुभवके अभिमुख होना विकल्पोके त्याग कर देनेका अमोघ उपाय है।

अब निर्विकल्प ध्यानकी सिद्धिके लिये आवश्यक कर्तव्यका उपदेश किया जाता है—

मा मुज्झह मा रज्जह मा दूसह इट्ठणिट्ठअत्थेसु।
थिरमिच्छहि जइ चित्त विचित्त झाणप्पसिद्धिए ॥४८॥

अन्वय—विचित्तझाणप्पसिद्धिए जइ चित्त थिरमिच्छह, इट्ठणिट्ठअत्थेसु मा मुज्झह मा रज्जह मा दूसह।

अर्थ—निर्विकल्प ध्यानकी सिद्धिके लिये यदि चित्तको स्थिर करना चाहते हो तो इष्ट अनिष्ट पदार्थोंमे न तो मोह करो, न राग करो और न द्वेष करो।

प्रश्न १—विचित्तका अर्थ निर्विकल्प कैसे किया ?

उत्तर—चित्तका अर्थ है चित्तमे होने वाले समस्त शुभ अथवा अशुभ विकल्प और वि उपसर्गका अर्थ है विगत याने नष्ट हो गया है। अब इस अव्ययीभाव समासमे यह अर्थ ध्वनित हुआ कि विगत चित्त यस्मिन् = जिस परिणाममे विकल्प नष्ट हो चुका है वह ध्यान। इस प्रकार विचित्तका अर्थ निर्विकल्प हुआ।

प्रश्न २—निर्विकल्प ध्यानकी सिद्धिके लिये चित्तको स्थिर करनेकी इच्छा क्यो प्रदर्शित की ?

उत्तर—चित्तकी स्थिरता बिना उत्तम ध्यानकी सिद्धि नही होती, क्योकि विकल्पोकी उत्पत्ति चित्तसे होती है। जब चित्त अस्थिर होता है, चित्तका परिवर्तन होता रहता है तब विकल्पोकी भरमार होती है। अत निर्विकल्प ध्यानकी प्रसिद्धिके लिये चित्तकी स्थिरता परमावश्यक है।

प्रश्न ३—चित्त स्वय विकल्पका मूल है तब चित्तकी स्थिरतामे भी नाना नही तो कोई एक विकल्प तो रहना ही चाहिये ?

उत्तर– यद्यपि यह बात ठीक है कि चित्तकी स्थिरताके समय एक विकल्प रहता है तथापि ऐसी चित्तकी स्थिरता होनेपर जहाँ कि एक ही ओर वृद्धि हानि आदि परिवर्तनसे रहित विकल्प हो, अन्तमे उस विकल्पका भी अभाव हो जाता है।

प्रश्न ४– वृद्धि हानि रहित एक ही विकल्पके होनेपर पश्चात् विकल्पके अभावकी सभावना क्यों रहती है ?

उत्तर—विकल्पोकी संततिका कारण किसी भी एक विकल्पका टिकाव न होना है, अत उक्त चित्तकी स्थिरतासे विकल्पोका अभाव हो जाता है।

प्रश्न ५— मोह किसे कहते है ?

उत्तर– मोह मूर्च्छाको कहते है, जिसमे स्व और परकी भिन्नताकी और स्वके स्वरूप की प्रतीति नही रहती है। मोहमे परिणत आत्मा इष्ट पदार्थोको तो अपनाता है और अनिष्ट पदार्थोंमे विचिकित्सा करता है।

प्रश्न ६– मोह होनेका कारण क्या है ?

उत्तर—मोह उत्पन्न होनेमे दर्शनमोहनीयकर्मका उदय निमित्त कारण है और मोहरूप परिणमनेको उद्यत स्वय जीव उपादान कारण है।

प्रश्न ७– मोह परिणाममे निर्विकल्प ध्यान क्यो नही होता ?

उत्तर—मोहमे जब स्वको, स्वके सहजस्वरूपकी खबर ही नही है तब परपदार्थ सम्बन्धी उपयोगसे कोई कैसे निवृत्त हो ? मोहमे परपदार्थकी ओर ही उपयोग रहता है और परपदार्थके उपयोगमे विकल्पोकी बहुलता ही है, अतः वहाँ निर्विकल्प ध्यान कभी सभव नही हो सकता।

प्रश्न ८—राग किसे कहते है ?

उत्तर– इन्द्रिय और मनको सुहावना लगनेको राग कहते है।

प्रश्न ९– रागमे निर्विकल्प ध्यान क्यो नही होता है ?

उत्तर– राग स्वय विकल्प है, रागमे भी परपदार्थकी ओर उपयोग है, अतः रागमें निर्विकल्प ध्यान नही हो सकता।

प्रश्न १०– मोह और रागमे क्या अन्तर है ?

उत्तर– मोह तो अपने बेसुधपनको कहते है और राग इन्द्रिय व मनको सुहावना लगनेको कहते हैं। मोहके होते सन्ते राग होता ही है, किन्तु राग हो और मोह न हो, ऐसी भी स्थिति रागमे हो सकती है।

प्रश्न ११– द्वेष किसे कहते है ?

उत्तर– इन्द्रिय और मनको असुहावना लगनेको द्वेष कहते है।

प्रश्न १२— द्वेषमे निर्विकल्प ध्यान क्यो नही होता है ?

उत्तर—द्वेषका विषय परपदार्थ ही होता है। परपदार्थमे द्वेषबुद्धि रखनेसे तो विकल्पोकी ज्वालावोका ही उदय है, वहा निर्विकल्प ध्यानकी कभी भी सभावना नही है।

प्रश्न १३— द्वेष तो मोहसे होता है, फिर मोहसे पृथक् द्वेषको क्यो कहा ?

उत्तर— मोहके होते सन्ते तो द्वेष होता ही है, किन्तु ऐसी भी स्थिति होती है कि द्वेष तो हो और मोह न हो, सो द्वेष और मोहमे लाक्षणिक भेद है, अत. मोह और द्वेष दोनो को कहना पडा है।

प्रश्न १४— मोह, राग और द्वेष न होने देनेका साक्षात् उपाय क्या है ?

उत्तर—आत्मीय सहज आनन्दका सवेदन मोह, राग और द्वेषके न होने देनेका साक्षात् उपाय है।

प्रश्न १५—सहज आनन्दके सवेदनका उपाय क्या है ?

उत्तर—निरपेक्ष, अखण्ड, निर्विकल्प चैतन्यस्वरूप निज परमात्मसत्यकी अभेदभावना सहज आनन्दके सवेदनका उपाय है।

अब निर्विकल्प ध्यानकी सिद्धिसे पहिले होने वाले उद्यमोमेसे एक उद्यमभूत पदस्थ-ध्यानका वर्णन करते है—

पणतीस सोल छप्पण चउदुगमेग च जवह झाएह।
परमेट्ठिवाचयाण अण्ण च गुरुवएसेण ॥४६॥

अन्वय—परमेट्ठिवाचयाण पणतीस सोल छप्पण चउ दुगमेगं च जवह, झाएह, गुरुवएसेण अण्ण च जवह झाएह।

अर्थ— परमेष्ठियोके वाचक पैंतीस, सोलह, छः, पांच, चार, दो और एक अक्षरोके मन्त्रोको जपो और ध्यान करो तथा गुरुके उपदेशके अनुसार अन्य भी मन्त्रोको जपो और ध्यान करो।

प्रश्न १— परमेष्ठी किसे कहते है ?

उत्तर—परमेष्ठी द्रव्योका स्वरूप आगे गाथाओमे कहेगे, अत यहाँ उसका विस्तार न करके केवल शब्दनिष्पत्ति द्वारा ही दिखाते है— परम माने है उत्कृष्ट, जो परमपदमे स्थित हो उन्हे परमेष्ठी कहते है।

प्रश्न २— परमेष्ठी कितने होते है ?

उत्तर— जितने परमपद हैं उतने ही उनमे स्थित रहने वाले परमेष्ठी कहलाते है। ये परमपद ५ है— अरहत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु। इस प्रकार परमेष्ठी भी ५ है— अरहन, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु।

प्रश्न ३– इनके वाचक ३५ अक्षरो वाला मन्त्र कौन है ?

उत्तर– "णमो अरहताण, णमो सिद्धाण, णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाण, णमो लोए सव्वसाहूण" यह ३५ अक्षरो वाला मन्त्र है। इसका नाम णमोकारमन्त्र व महा-मन्त्र भी है।

प्रश्न ४– इस महामन्त्रके पदोका अर्थ क्या है ?

उत्तर– लोकमे सब अरहतोको नमस्कार हो, सिद्धोको नमस्कार हो, आचार्योंको नम-स्कार हो, उपाध्यायोको नमस्कार हो और साधुवोको नमस्कार हो।

प्रश्न ५– सोलह अक्षर वाला मन्त्र कौन है ?

उत्तर– "अर्हंत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यो नमः" यह सोलह अक्षर वाला मन्त्र है। इसमें भी पञ्चपरमेष्ठियोके नाम आये है।

प्रश्न ६—छ अक्षर वाला मन्त्र कौन है ?

उत्तर—"अरिहत सिद्ध" यह छः अक्षर वाला मन्त्र है। इसमे दो परमेष्ठियोके नाम है। शेष ३ परमेष्ठियोके भी गुणोका पूर्ण विकास इन्ही पदोमे होता है, अतः मुख्यताकी दृष्टिसे यह उक्त दो परमेष्ठियोके नामका मन्त्र कहा है।

प्रश्न ७– पाच अक्षर वाला मन्त्र कौन है ?

उत्तर—"असिआ उसा" यह पाँच अक्षर वाला मन्त्र है। इसमे पाँचो परमेष्ठियोके नामके पहिले-पहिले अक्षर है, अतः यह मन्त्र पञ्चपरमेष्ठियोका वाचक है।

प्रश्न ८-- चार अक्षर वाला मन्त्र कौन है ?

उत्तर—"अरिहत" यह चार अक्षर वाला मन्त्र है। इसमे अरहत परमेष्ठीका नाम है।

प्रश्न ९– दो अक्षर वाला मन्त्र कौन है ?

उत्तर– "सिद्ध" यह दो अक्षर वाला मन्त्र है। इसमे सिद्ध परमेष्ठीका नाम है।

प्रश्न १०-- एक अक्षर वाला मन्त्र कौन है ?

उत्तर–"ॐ" यह एक अक्षर वाला मंत्र है। इसमे पांचो परमेष्ठियोके नाम गर्भित है।

प्रश्न ११-- "ॐ" मे पांचो परमेष्ठियोके नाम किस प्रकार गर्भित हो जाते है ?

उत्तर-- "ॐ" मे पांचो परमेष्ठियोके नामके प्रथम अक्षर है। जैसे अरिहतका "अ", सिद्धिका अपर नाम है अशरीर, सो अशरीरका 'अ', आचार्यका "आ" उपाध्यायका 'उ' और साधुका अपर नाम है मुनि, सो मुनिका 'म', इस प्रकार अ+अ+आ+उ+म, इन सब अक्षरोकी सन्धि कर देनेसे "ओ" यह शब्द बना। "ओ" की आकृति "ॐ" इस प्रकार भी लिखी जाती है।

प्रश्न १२—उक्त पाचो अक्षरोकी सन्धि किस प्रकार होती है ?

उत्तर—अ + अ इन दो अक्षरोमे 'अकः सवर्णे दीर्घ' इस सूत्रसे दीर्घ एकादेश हो जाता है सो आ बना। पश्चात् आ + आ इन दो अक्षरोमे 'अक. सवर्णे दीर्घ.' इस सूत्रसे दीर्घ एकादेश हुआ सो आ बना। आ + उ इन दो अक्षरोमे "आद्गुणः इस सूत्रसे गुण एकादेश हो गया, सो ओ बना। ओ + म्—इन दो अक्षरोमे "विरामे वा" इस सूत्रसे म् का अनुस्वार हो गया, सो ओं बन गया।

प्रश्न १३—क्या इन अक्षरो वाले ये ही मन्त्र है ?

उत्तर—इन अक्षरो वाले अन्य भी मन्त्र है, जैसे कि सिद्ध नम, सिद्धाय नम, ॐ नम सिद्ध, ॐ नम. सिद्धेभ्य' आदि।

प्रश्न १४—उक्त मन्त्रोके अतिरिक्त क्या अन्य मन्त्र भी है ?

उत्तर—सिद्ध चक्र आदि अनेक मन्त्र है, जो ऋषियो द्वारा यथावसर शास्त्रोमे बताये गये है।

प्रश्न १५—इन मन्त्रोका जाप किस प्रकार किया जाता है ?

उत्तर—मन्त्रोका जाप दो प्रकारसे होता है—(१) अन्तर्जल्प, (२) बहिर्जल्प। अन्तर्जल्प तो पदोका अर्थ जानकर उन परमेष्ठियोके गुणस्मरण रूप अन्तरङ्गमे अव्यक्त शब्दके आविर्भावको कहते है। बहिर्जल्प उसी तत्त्वको व्यक्त वचनोसे उच्चारण करने को कहते है।

प्रश्न १६—इन मन्त्रोका ध्यान किस प्रकार करना चाहिये ?

उत्तर—पञ्चपरमेष्ठियोका जो स्वरूप है, गुणविकास है उसकी महिमाका मौनपूर्वक मन वचन कायकी गुप्ति सहित ध्यान करना चाहिये और जिस शक्तिके वे विकास है उस शक्तिको मुख्यतया ध्येय करके उस विकासको स्वभावमे अन्तर्निहित करके निर्विकल्पताके अभिमुख होना चाहिये।

प्रश्न १७—ध्यानका फल क्या है ?

उत्तर—ध्यानका उत्कृष्ट फल कर्मोकी निर्जरा और नवीन कर्मोका संवर है तथा गौण फल जितने अंशमे जैसा राग भाव वर्त रहा है उस प्रकारका पुण्य कर्मका बन्ध है।

अब ध्यानमन्त्रोके विषयभूत पञ्चपरमेष्ठियोमे से प्रथम परमेष्ठी श्री अरहत भगवान का स्वरूप कहते है—

> णट्ठचदुघाइकम्मो दसणसुहणाणवीरियमइओ।
> सुहदेहत्थो अप्पा सुद्धो अरिहो विचिंतिज्जो ॥५०॥

अन्वय—णट्ठचदुघाइकम्मो दसण सुहणाणवीरियमइओ सुहदेहत्थो सुद्धो अप्पा अरिहो, विचिंतिज्जो।

अर्थ—नष्ट हो गये है चार घातिया कर्म जिसके, जो अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्त

सुख व अनन्तवीर्यमय है शुभ परम औदारिक शरीरमे स्थित है तथा जो शुद्ध है अर्थात् विशेष है वह आत्मा अरहन्त है और वह ध्यान करने योग्य है।

प्रश्न १– कर्म सत् है अथवा असत् ?

उत्तर-- कर्म सत् है, अभावरूप नही है।

प्रश्न २– कर्म सत् है तो उसका नाश कैसे हो सकता है, क्योकि सत्का कभी नाश नही होता ?

उत्तर—कर्म एक पर्याय है, यह कर्म पर्याय जिस पुद्गलद्रव्यकी है वह पुद्गलद्रव्य कभी भी नष्ट नही हो सकता। बात यह है कि जिस पुद्गलस्कन्धमे कर्म कर्मरूप परिणमनेकी योग्यता है उस स्कन्धकी कार्माणवर्गणाका यह नाम है। इन कर्मवर्गणाओकी कर्मपर्याय होती है और उन्ही का कर्म पर्याय न रहकर अकर्मरूप जाना भी होता है। अरहन्त भगवानके पूर्व में चार घातिया कर्म रूप परिणतवर्गणाये कर्म पर्यायको छोडकर अकर्मपर्यायरूप हो जाते है, वे फिर भविष्यमे कभी भी कर्म पर्यायरूप हो ही नही सकते, यही नाशका अभिप्राय है।

प्रश्न ३—घातिया कर्मोके नाशका उपाय क्या है ?

उत्तर-- शुद्धोपयोगरूप ध्यानके प्रतापसे घातियाकर्मका नाश होता है। यह शुद्धोपयोग निश्चय सम्यग्दर्शन, निश्चय सम्यग्ज्ञान और निश्चय सम्यक्चारित्र रूप है।

प्रश्न ४-- घातिया कर्मोंका नाश क्या एक साथ होता है या क्रमसे ?

उत्तर—घातियाकर्मोमे पहिले तो मोहनीय कर्मका क्षय होता है तदन्तर अर्थात् क्षीणमोह होनेपर ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तरायका क्षय होता है।

प्रश्न ५-- घातिया कर्मोके नाश होनेपर आत्माकी क्या अवस्था होती है ?

उत्तर—घातिया कर्मोके नाश होनेपर आत्मा अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तआनंद और अनन्तवीर्यमय हो जाता है। इन पूर्ण गुणविकासोका निमित्त कारण घातिया कर्मोका नाश है।

प्रश्न ६– ज्ञानावरणकर्मके नाशसे किस गुणका पूर्ण विकास होता है ?

उत्तर-- ज्ञानावरणकर्मके क्षयसे ज्ञानगुणका पूर्ण विकास होता है। यह विकास अनत ज्ञानरूप है।

प्रश्न ७-- अनन्तज्ञानका क्या स्वरूप है ?

उत्तर-- ज्ञानगुणका वह पूर्ण विकास अनन्तज्ञान है, जिसमे लोक अलोकवर्ती सर्वद्रव्य गुणोका ज्ञान हो जाता है तथा भूत वर्तमान भविष्यकालीन सर्वद्रव्योकी सर्वपर्यायोका ज्ञान हो जाता है।

प्रश्न ८– अनन्तदर्शनका क्या स्वरूप है ?

उत्तर-- अनन्तज्ञानपरिणत निज आत्माका प्रतिभास होते रहना अनन्तदर्शनका स्वरूप है।

प्रश्न ९—अनन्त आनन्दका क्या स्वरूप है ?

उत्तर—जहाँ रच भी आकुलता नही रही है और ऐसी परमनिराकुलताका अनन्त-ज्ञान द्वारा अनुभव हो रहा है, ऐसा सहज शुद्ध परमआनन्द अनन्तआनन्द कहलाता है।

प्रश्न १०— अनन्तवीर्यका क्या स्वरूप है ?

उत्तर—समस्त गुणोके अनन्त विकासरूप होनेकी प्रकट हुई शक्तिको अनन्तवीर्य कहते है।

प्रश्न ११—उक्त अनन्तचतुष्टय प्रकट होनेपर देहकी क्या अवस्था हो जाती है ?

उत्तर — आत्माके अनन्तचतुष्टय प्रकट होनेपर देह परमऔदारिक हो जाता है।

प्रश्न १२—परमात्माका शरीरसे क्या सम्बन्ध है जिसके कारण परमात्माके देहका वर्णन किया जा रहा है ?

उत्तर— निश्चयनयसे तो परमात्मा ही क्या आत्मा मात्रके शरीर नही है, व्यवहार से ही शरीर माना गया है। सो व्यवहारसे कहा गया वह शरीर जब तक रहना है उसीसे पहिले यदि आत्मा निष्कलङ्क हो जाता है तो शरीरकी क्या अवस्था हो जाती है, ऐसा देहकी अवस्थाके निमित्तभूत आत्मा प्रताप बताया गया है।

प्रश्न १३– परमौदारिक शरीर कैसा होता है ?

उत्तर– अरहन्त होनेसे पहिले वह शरीर सात धातु और अनेक उपधातुओ करि सहित था, वही शरीर घातियाकर्मोंका क्षय हो जानेसे सप्तधातु व उपधातुवोसे रहित स्फटिक-मणिके समान निर्मल, हजारो सूर्यकी प्रभा तुल्य प्रभाव वाला, किन्तु परको शान्तिका कारण हो जाता है। यही परमौदारिक शरीर कहलाता है।

प्रश्न १४—निष्कलङ्कताका वर्णन "णट्ठचदुघाइकम्मो" पदसे हो गया, फिर "सुद्धो" शब्द क्यो कहा गया ?

उत्तर– "सुद्धो" शब्दसे अन्य समस्त दोपोका अभाव बताया गया है।

प्रश्न १५–वे अन्य दोष कितने और कौन-कौन है जिनका अभाव अरहन्त प्रभुमे है।

उत्तर– ये दोष १८ है—(१) जन्म, (२) जरा, (३) मरण, (४) क्षुधा, (५) तृषा, (६) विस्मय, (७) अरति, (८) खेद, (९) रोग, (१०) शोक, (११) मद, (१२) मोह, (१३) भय, (१४) निद्रा, (१५) चिन्ता, (१६) स्वेद पसीना, (१७) राग, (१८) द्वेप।

ये १८ दोष अरहतप्रभुमे नही पाये जाते हैं। इनमेसे कई दोष तो ऐसे है जो अरहत होनेसे पहिले भी नही रहते और कुछ दोष ऐसे है जो अरहन्त होते ही नष्ट हो जाते हैं।

प्रश्न १६– अरहन्त शब्दके वाचक शब्द कौन-कौन है ?

उत्तर-- अरहत प्रभुके वाचक कुछ शब्द ये है– अरहन्त, अरुहत, अरिहन्त, अर्हत्, जिन, सकलपरमात्मा ये कुछ शब्द अरहन्तके वाचक है।

प्रश्न १७– अरहन्त शब्दका निरुक्त्यर्थ क्या है ?

उत्तर-- अरहन्त-- अ = अरि अर्थात् मोहनीयकर्म अथवा मोह, र = रज यानी ज्ञानावरण और दर्शनावरण अथवा अज्ञान, तथा र = रहस याने अन्तराय, इस प्रकार इन चार घातिया कर्मोको हनने वाले अथवा मिथ्यात्व अज्ञान अविरतिके नष्ट करने वाले परमात्माको अरहत कहते है।

प्रश्न १८– अरहत शब्दका अर्थ क्या है ?

उत्तर-- जो दोष और कलङ्क थे, वे नष्ट हो गये, जिनमे पुनः कभी भी न रहे, न उठे याने उत्पन्न न हो उन परमात्माको अरहन्त कहते है।

प्रश्न १९-- अरिहन्त शब्दसे क्या अर्थ निकलता है ?

उत्तर-- अरि = शत्रु याने चारो घातिया कर्म, उन्हे नष्ट करने वाले परम-आत्मा अरिहन्त कहलाते है।

प्रश्न २०-- अर्हत् शब्दसे क्या भाव ध्वनित होता है ?

उत्तर– जो आत्मा देव, देवेन्द्र, मनुष्य, मनुष्येन्द्र आदिके द्वारा पूजाको प्राप्त होते है, योग्य होते है उन्हे अर्हत् कहते है। यह शब्द "अर्ह पूजाया" धातुसे बना है और वे साक्षात् पूजाको प्राप्त होते है।

प्रश्न २१– 'जिन' शब्दसे क्या भाव ध्वनित होता है ?

उत्तर-- रागादि शत्रून् अज्ञानाद्यावरणानि जयतीति जिनः, जो रागादि शत्रुओको जीते व अज्ञानादि आवरणोको हटा ले उस परम आत्माको जिन कहते है।

प्रश्न २२-- सकलपरमात्मा शब्दका क्या है ?

उत्तर-- कलका अर्थ है शरीर, जो अभी शरीरसहित है, किन्तु परम अर्थात् पर = उत्कृष्ट मा = ज्ञानलक्ष्मी करि युक्त आत्मा है उन्हे सकलपरमात्मा कहते है।

प्रश्न २३– उत्कृष्ट ज्ञानलक्ष्मीका क्या अर्थ है ?

उत्तर– सम्पूर्ण ज्ञान याने सर्वज्ञता जिसमे लोकालोकवर्ती एव त्रिकालवर्ती सर्वपदार्थ ज्ञात होते रहते है, यह उत्कृष्ट ज्ञानलक्ष्मीका अर्थ है।

प्रश्न २४– कोई भी आत्मा सर्वज्ञ नही पाया जाता है, फिर सर्वज्ञता कैसी ?

उत्तर– सर्वज्ञ क्या इस देशमे व इस कालमे नही पाया जाता या सर्व देशमे व सर्वकालमे नही पाया जाता—इस बातका तो विचार करो।

प्रश्न २५-- सर्वज्ञ इस देशमे क्या नही पाया जाता ?

उत्तर— यदि सर्वज्ञ इस देशमे व इस कालमे नही पाया जाता तो यह बात तो ठीक ही है, यहाँ कोई सर्वज्ञ आजकल नही है। परन्तु यहाँ आजकल कोई सर्वज्ञ नही है और न होता है, इससे सर्वज्ञका बिल्कुल निषेध नही कर सकते ।

प्रश्न २६-- सर्वज्ञ किसी भी देशमें व किसी भी कालमे नही होता ।

उत्तर— यदि ऐसा तुम जान चुके हो तो लो तुम ही सर्वज्ञ हो गये, क्योकि जब तुमने सर्वदेश व सर्वकालकी बातें जानी होगी तभी ऐसा कह सक्ते हो कि किसी भी देशमें व किसी भी कालमें सर्वज्ञ नही होता ।

प्रश्न २७— सर्वज्ञकी सिद्धिमे कोई युक्ति भी है क्या ?

उत्तर—सर्वज्ञकी सिद्धि हेतुमे भी सिद्ध है—कोई सर्वज्ञ अवश्य होना है, क्योकि सम्यग्ज्ञानके बाधक राग और अज्ञानमे कमीवेशी पाई जाती है। जब यहाँ ही देखा जा रहा है कि अनेक महापुरुषोमे राग और अज्ञान कम देखा जाता है तो कोई ऐसा भी आत्मा होता है जिसमे राग और अज्ञान बिल्कुल नही रहते है। वही सर्वज्ञदेव है ।

एक युक्ति यह भी है कि सूक्ष्म, अन्तरित आदि सर्व पदार्थ किसी न किसीके प्रत्यक्ष है, क्योकि ये अनुमेय है। जो जो अनुमेय होते है वे किसी न किसीके प्रत्यक्ष होते है, जैसे—पर्वतादिमें छिपी हुई अग्नि इत्यादि अनेक युक्तियोसे सर्वज्ञपना सिद्ध है ।

प्रश्न २८—सर्वज्ञताकी सिद्धिमे कोई अनुभवगर्भित युक्ति है ?

उत्तर— ज्ञानका स्वभाव जानना है, उसके प्रतिबन्धक कर्मके बन्धन जब तक रहते है तब तक ज्ञानके कार्यमे कमी याने अपूर्णता रहनी है, किन्तु कर्मका प्रतिबन्ध समाप्त होनेपर ज्ञान थोडे ही पदार्थोंको इसका कोई कारण नही रहता, अत निष्कलङ्क ज्ञान सर्वका ज्ञाता होता है ।

प्रश्न २९—ज्ञान तो इन्द्रिय द्वारा जानता है सो यदि इन्द्रिय है तो अपना अपना विषय ही सीमा लेकर जाननेमे आवेगा, यदि इन्द्रिय नही है तो ज्ञान ही नही होगा ?

उत्तर—ज्ञान इन्द्रिय द्वारा नही जानता है, किन्तु ज्ञानके आवरणके होनेपर ज्ञानकी ऐसी अशक्ति हो जाती है कि इन्द्रियको निमित्त पाकर जानता है। परन्तु आवरणके नष्ट होनेपर ज्ञान किसीकी निमित्तरूप भी सहायताके बिना अपने स्वभाव सामर्थ्यसे जानता है और इस जाननेकी सीमा नही होती। ऐसी शुद्ध अवस्थामे ज्ञान सर्व सद्भूत अर्थोंको जानता है ।

प्रश्न ३०— उक्त रहस्यको दृष्टान्त द्वारा स्पष्ट करना चाहिये ।

उत्तर— जैसे कोई पुरुष किसी कमरेमे है, जहाँ कि ६ खिडकियाँ है, तो वह मनुष्य

भीतके आवरण होनेपर खिडकियोके द्वारसे ही देख सकता है, किन्तु यदि भीतका आवरण समाप्त हो जाय तो वह पुरुष सर्व ओरसे देख सकता है। यह एक कोणका स्पष्टीकरणके लिये दृष्टान्त है। इसी प्रकार कर्म नोकर्मका आवरण रहनेपर आत्मा इन्द्रियद्वारसे जानता है, सो जैसे खिडकी द्वारसे भी पुरुष जाने तो वहाँ भी पुरुष अपने बलसे ही देखता है वैसे ही इन्द्रिय द्वारसे जाने तो वहाँ भी आत्मा ही ज्ञानबलके द्वारा जानता है, परन्तु ज्ञानके आवरणोके समाप्त होनेपर आत्मा सर्व ओरसे समस्त द्रव्य गुण पर्यायको जानता है।

प्रश्न ३१— जैसे भीतका आवरण समाप्त होनेपर भी पुरुष सीमा लेकर ही देखता है वैसे ज्ञानका आवरण समाप्त होनेपर भी आत्मा सीमा लेकर क्यो नही जानता है ?

उत्तर— भीतका आश्रयभूत आवरण समाप्त होनेपर भी उस पुरुषके वास्तविक आवरण कर्म नोकर्मका तो लगा हुआ ही है। अतः वह पुरुष सीमा लेकर ही जानता है। परन्तु जिस आत्माके कर्म नोकर्म इन्द्रियके आवरण समाप्त हो गये है वह सीमा लेकर जाने, इसका कोई कारण नही है। यह निरावरण ज्ञान तो अनन्त ही होता है।

प्रश्न ३२— अनन्तदर्शन परमात्माके न हो तो क्या हानि है ?

उत्तर— दर्शनके बिना ज्ञान अनिश्चित अवस्थामे रहेगा और ऐसे ज्ञानकी प्रमाणता न रहेगी, अतः दर्शन होना आवश्यक है। अनन्तज्ञानके साथ अनन्तदर्शन ही होता है, और पूर्ण ज्ञानके उपयोगके साथ ही दर्शनोपयोग होता है।

प्रश्न ३३—सुख दुःख ही तो ससार है तब सुख दुःखका अभाव मोक्ष है, तब परमात्मामे सुख (आनन्द) कैसे रह सकता है ?

उत्तर— सुख दुःखका अभाव मोक्ष है यह सही है, किन्तु सुखका अर्थ यहाँ इन्द्रियजन्य सुखसे है, सो इन्द्रियजन्य सुखका अभाव मोक्षमे है। जैसे कि इन्द्रियजन्य ज्ञानका अभाव मोक्षमे है। किन्तु आनन्द गुण तो आत्माका शाश्वत गुण है, उसकी परिणति तो रहेगी। वह परिणति अनन्त आनन्दस्वरूप है। यह आनन्द अतीन्द्रिय है, आनन्द गुण है तभी तो ससार-अवस्थामे सुख दुःखकी सिद्धि है अन्यथा बतावो सुख दुःख किस गुणकी पर्याय है ? स्वाभाविक आनन्द, इन्द्रियजन्य सुख व दुःख ये सभी आनन्द गुणकी पर्याये है। भगवानमे आनन्द गुणकी अनन्त आनन्दस्वरूप परिणति चलती ही रहती है।

प्रश्न ३४— अनन्तशक्तिका परमात्मामे और क्या प्रयोजन है ?

उत्तर—अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तआनन्द आदि अनन्तपरिणति करनेके लिये अनन्तशक्ति चाहिये ही, सो परमात्मामे अनन्तशक्ति होनी ही है।

प्रश्न ३५— अरहन्त प्रभु क्या केवल पदस्थ ध्यानमे ही ध्येयभूत होते हैं ?

उत्तर—पिण्डस्थ और रूपस्थ ध्यानमे भी अरहन्त प्रभु ध्येयभूत होते है।

प्रश्न ३६– पिण्डस्थ ध्यानका क्या स्वरूप है ?

उत्तर– समाधिसाधक व धारणादि पद्धतिसे किसी रूप व प्रकारमे चैतन्य पिण्डके ध्यान करनेको पिण्डस्थ ध्यान कहते है। इसमे पार्थिवी, मारुती आदि धारणावोकी विधिसे बढकर अपने आपमे उच्च साधक अरहन्त जैसे परमात्मतत्त्वकी प्रतिष्ठा की जाती है।

प्रश्न ३७—रूपस्थ ध्यानका क्या स्वरूप है ?

उत्तर-- अरहन्त भगवानके आभ्यन्तर बाह्य विभूति सहित स्वरूपके चिन्तवन करनेको रूपस्थ ध्यान कहते है। इस ध्यानमे समवशरण विराजमान अतिशय सम्पन्न अरहत प्रभु ध्येय होते है।

प्रश्न ३८—रूपस्थ ध्यानमे अरहत प्रभुका किस प्रकारसे ध्यान करना चाहिये ?

उत्तर—रूपस्थ ध्यानमे साक्षात् समवशरणमे विराजमान, बारह सभावोसे वेष्टित, केवलज्ञानके अतिशयोका साक्षात्सा करते हुए अनन्त चतुष्टयादि अन्तरङ्गविभूतिमे ध्यान ले जावें।

प्रश्न ३९– अरहत प्रभुके कौनसा गुणस्थान होता है ?

उत्तर– अरहत प्रभुके १३ वे याने सयोगकेवली व १४ वा याने अयोगकेवली—ये २ गुणस्थान होते है। केवलज्ञान होने पर और जब तक उनके शरीरका सयोग रहता है तब तक वे परम-आत्मा अरहत कहलाते है। उसमे भी जब तक योग (प्रदेशोका हलन-चलन जिससे कि विहार दिव्यध्वनि भी हो जाती है) रहता है वे सयोगकेवली कहलाते है और जब योग नष्ट हो जाता है तब अयोगकेवली कहलाते है।

प्रश्न ४०—अयोगकेवली कब तक रहते है ?

उत्तर-- एक अरहत प्रभु एक सेकिण्डसे भी कुछ कम काल तक अयोगकेवली रहते है। इसके पश्चात् ये सिद्धपरमेष्ठी हो जाते है।

अब पदस्थध्यानमे आये हुये सिद्धपरमेष्ठीका स्वरूप कहते है—

णट्ठट्ठकम्मदेहो लोयालोयस्स जाणओ दट्ठा।
पुरिसायारो अप्पा सिद्धो झाएह लोयसिहरत्थो ॥५१॥

अन्वय– णट्ठट्ठकम्मदेहो लोयालोयस्स जाणओ दट्ठा पुरिसायारो अप्प सिद्धो, लोयसिहरत्थो झाएह।

अर्थ-- नष्ट हो गये है अष्टकर्म और शरीर जिसका, लोक और अलोकके जानने देखने वाला, जिस पुरुष देहसे मोक्ष हुआ है उस पुरुषके आकार वाला आत्मा सिद्धपरमेष्ठी कहलाता है, ऐसे लोकके शिखरमे स्थित सिद्धपरमेष्ठीको ध्यावो।

प्रश्न १—कर्मके किस रूप परिणमन हो जानेका नाम नाश है ?

उत्तर—कार्माणवर्गणावोंका इस कर्मरूप अवस्थामें छिगकर अकर्मत्व अवस्थामें आ जानेका नाम कर्मका नाश है। आगे निष्कर्मता होनेके बाद कर्मकी उत्पत्ति ही न होना भी यहाँ मुख्य रूपसे कर्मका नाश समझना चाहिये।

प्रश्न २—देहके किस रूप परिणमन हो जानेका नाम देहका नाश है ?

उत्तर— यहाँ उस देहके छोटनेके बाद अन्य कोई देहका सम्बन्धी ही न होने व सदाके लिये देहका सम्बन्ध न हो सकनेका नाम देहका नाश कहलाता है (वैसे तो उस देहका भी छोटे-छोटे सूक्ष्म स्कन्ध हो-होकर कपूरकी तरह बिखरना ही हो जाता है। केवल नख और केश जिनके कि साथ आत्मप्रदेशोंका संयोग न था, पडे रह जाते हैं। इन नख केशोंको इन्द्रादि देव क्षीरसागरमे सिरा देते हैं।)

प्रश्न ३—नख और केश ढाई द्वीपसे बाहर कैसे चले जाते हैं ?

उत्तर— वे नख और केश आत्माके सम्बन्धसे अलग रहनेसे मनुष्यके अङ्ग नही कहे जाते है, अत उनके ढाई द्वीपसे बाहर ले जाये जानेमे कोई विरोध नही आता।

प्रश्न ४—कर्म और नोकर्मके विनाशका साधन क्या है ?

उत्तर—सर्व विशुद्ध ज्ञानानुभव कर्म और नोकर्मके विनाशका उपाय है।

प्रश्न ५— यह ज्ञानानुभव कैसे उदित होता है ?

उत्तर—इस ज्ञानानुभवमे कुछ भी द्वैत प्रतिभासित नही रहता, इसका विषय निरपेक्ष चैतन्यस्वभाव है, यह निर्दोष निर्विकल्प अनुपम सहज आनन्दको प्रकट करता हुआ उदित होता है।

प्रश्न ६— सहज आनन्दके अविनाभावी इस ज्ञानानुभवका सहज उपाय क्या है ?

उत्तर—सर्व विशुद्ध अर्थात् अन्य समस्त पदार्थोंसे भिन्न तथा औपाधिक भावोंसे भिन्न स्वरूप वाले निज शुद्ध आत्मतत्त्वकी भावनासे यह ज्ञानानुभव और सहज आनन्द प्रकट होना

उत्तर– जैसे मूसके भीतर मोम रखकर, मोमके चारो तरफ चादी रखकर गहना ढालनेके लिये मोम गलाकर फिर तैयार गहना निकाल लिया जाता है तो वहाँ मोमरहित मूस के बीच आकार पूर्व जैसा रह जाता है इसी प्रकार जिस पूर्व पुरुष शरीरमे कर्मबद्ध जीव रहता था, कर्मके गल जानेपर और आत्माके सिद्ध हो जानेपर याने शरीरसे जुदा होकर सर्वथा पूर्ण विकसित हो जानेपर आत्माके प्रदेशोका आकार वही रह जाता है, जो पूर्व शरीरमे था।

प्रश्न १०– क्या सिद्ध आत्माके भी आकार होता है ?

उत्तर– रूपादि गुणो पर्यायोसे रहित होनेसे आत्मा निराकार है और अतीन्द्रिय अमूर्त चैतन्यरसनिर्भर होनेसे भी निराकार है, किन्तु प्रदेशोकी अपेक्षा व्यवहारनयसे चरमशरीरके आकार न होनेसे चरमशरीरके बराबर आकार सिद्धोके रहता है। इसी तरह अन्य ससारी आत्मा भी निश्चयनयसे निराकार है तथापि व्यवहारनयसे वर्तमान देहके आकार है।

प्रश्न ११—'सिद्ध' शब्दका क्या तात्पर्य है ?

उत्तर– सिद्ध-शब्दके निम्नलिखित तात्पर्य है—

(१) सित दग्ध कर्मेन्धन येन सः सिद्ध, जिसने समस्त कर्मेन्धनको जला दिया है, नष्ट कर दिया है उसे सिद्ध कहते है।

(२) सेधति स्म (षधु गतौ) अपनुरावृत्या इति सिद्धः, जो फिर न लौटे, इस प्रकार चला गया अर्थात् निर्वाणपुरीको चला गया उसे सिद्ध कहते है।

(३) सेधति (षिधु सराद्धौ) सिद्धयति स्म निष्ठितार्थो भवति स्म इति सिद्ध, जो सर्व सिद्ध कर चुका याने कृतकृत्य हो गया, उसे सिद्ध कहते है।

(४) सेधति स्म (षधुञ् शास्त्रे) शास्ता अभवत् इति सिद्ध, जो हितोपदेशक या धर्मानुशासक हुआ था, उसे सिद्ध कहते है।

(५) सेधति स्म (षिधूञ् माङ्गल्ये) माङ्गल्यरूपता अनुभवति स्म इति सिद्ध, जिसने माङ्गल्यत्व रूपको अनुभव किया, उसे सिद्ध कहते है।

(६) सिद्ध—जो सदाके लिये सिद्ध हो चुका, अनन्तकाल तक ऐसे ही पूर्ण रहेगा उसे सिद्ध कहते है।

(७) सिद्ध—प्रसिद्ध, जो भव्य जीवो द्वारा प्रसिद्ध है उसे सिद्ध कहते है, भव्य जीवो द्वारा सिद्धप्रभुके गुण उपलब्ध है, अतः यह निर्मल आत्मा सिद्ध कहलाता है।

इत्यादि 'सिद्ध' शब्दके अनेक अर्थ है। सब अर्थोका प्रयोजन एक यही है कि निष्कल निष्कलंक निरञ्जन परमात्मा कारणपरमात्मतत्त्वके पूर्ण अनुरूप विकासको प्राप्त है। सिद्धप्रभु समस्त अनुजीवी व प्रतिजीवी गुणोको पूर्ण सिद्ध कर चुके हैं (ये लोकशिखर है)

—सिद्धप्रभु लोकके शिखरपर ही स्थित क्यो रहते है ?

उत्तर—जीवका ऊर्ध्वगमन स्वभाव है, सो जब आत्माके कर्मबंधका विनाश हो जाता है तथा सर्वथा असग, निर्लेप हो जाते है तब एक ही समयमे ऋजुगतिसे लोकके अन्त तक जहाँ तक धर्मद्रव्य है, पहुचकर रुक जाते है, अत सिद्धपरमेष्ठियोंका आवास लोकके शिखरपर ही है।

प्रश्न १३—सिद्धपरमेष्ठीका ध्यान केवल पदस्थ ध्यानमे ही होता है ?

उत्तर—सिद्धपरमेष्ठीका पदस्थ ध्यानमे रहकर चिन्तवन करना प्रारम्भिक ध्यान है, इसके पश्चात् रूपातीत ध्यानमे रहकर सिद्धपरमेष्ठीका विशद ध्यान होता है।

प्रश्न १४— रूपातीत ध्यान कब और कैसे होता है ?

उत्तर—जब पांचो इन्द्रिय और मनके भोगोके विकल्प दूर हो जाते है तब मात्र चैतन्यमे विशुद्ध विकासका चिन्तवन करनेपर रूपातीत ध्यान होता है।

प्रश्न १५-- रूपातीत ध्यानका और पदस्थ ध्यानका क्या परस्पर कुछ सम्बन्ध है ?

उत्तर—ये दोनो ध्यान एक कालमे नही होते, अतः निश्चयसे तो कोई सम्बन्ध नही है, परन्तु कार्यकारण सम्बन्ध इनमे हो सकता है और तब पदस्थ ध्यान कारण होता है और रूपातीत ध्यान कार्य होता है।

इस प्रकार पदस्थ ध्यानमे ध्याये गये सिद्धपरमेष्ठीके स्वरूपका वर्णन करके अब पदस्थ ध्यानमे ध्याये गये आचार्य परमेष्ठीका स्वरूप कहा जाता है।

दसणणाणपहाणे वीरियचारित्त वर तवायारे।
अप्प पर च जुं जइ सो आयरिओ मुणी झेओ ॥५२॥

अन्वय– दसणणाणपहाणे वीरियचारित्त तवायारे अप्प च पर जो जु जइ सो आयरिओ मुणी झेओ।

अर्थ—दर्शन ज्ञान है प्रधान जिसमे, वीर्य, चारित्र व तपके आचारमे अर्थात् दर्शनाचार, ज्ञानाचार, वीर्याचार, चारित्राचार और तपाचार—इन पाच आचारोमे अपनेको व परको जो लगाता है वह आचार्य मुनि ध्यान करने योग्य है।

प्रश्न १—दर्शनाचार किसे कहते है ?

उत्तर—सम्यग्दर्शनमे आचरण याने परिणमन करनेको दर्शनाचार कहते है।

प्रश्न २– सम्यग्दर्शनका सुगमतागम्य स्वरूप क्या है ?

उत्तर– परमपारिणामिक भावरूप चैतन्यविलास ही जिसका लक्षण है, भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्मसे रहित, अन्य समस्त परद्रव्योसे भिन्न निज शुद्ध आत्मा ही उपादेय है, ऐसी रुचि जिस दृष्टिमे होती है उसे सम्यग्दर्शन कहते है।

प्रश्न ३—ज्ञानाचार किसे कहते है ?

उत्तर– सम्यग्ज्ञानमे आचरण याने परिणमन करनेको ज्ञानाचार कहते है।

प्रश्न ४– सम्यग्ज्ञान किसे कहते है ?

उत्तर-- भेदविज्ञानके बलसे परमपारिणामिक भावरूप याने अत्यन्त निरपेक्ष सहज चैतन्यस्वभावमय शुद्ध आत्माको मिथ्यात्व, राग, द्वेष आदि परभावोसे पृथक् जानना सम्यग्ज्ञान है।

प्रश्न ५—चारित्राचार किसे कहते है ?

उत्तर—सम्यक्चारित्रमे आचरण याने परिणमन करनेको चारित्राचार कहते हैं।

प्रश्न ६— सम्यक्चारित्र किसे कहते है ?

उत्तर—निर्दोष, निरुपाधि, सहज आनन्दके अनुभवके बलसे चित्तके निश्चेष्ट हो जानेको सम्यक्चारित्र कहते है।

प्रश्न ७—तपाचार किसे कहते है ?

उत्तर– सम्यक्तपमे आचरण याने परिणमन करनेको तपाचार कहते है ?

प्रश्न ८—सम्यक्तप किसे कहते है ?

उत्तर—समस्त परद्रव्य व परभावोकी इच्छाका अत्यन्त निरोध करके निज शुद्ध आत्मतत्त्वमे तपनेको सम्यक्तप कहते है।

प्रश्न ९—वीर्याचार किसे कहते है ?

उत्तर—सम्यग्वीर्यमे आचरण याने परिणमन करनेको वीर्याचार कहते है।

प्रश्न १०—सम्यग्वीर्य किसे कहते है ?

उत्तर– सम्यग्दर्शनाचार, सम्यग्ज्ञानाचार, सम्यक्चारित्राचार और सम्यक्तपाचार—इन चारो आचारोके धारण और रक्षणके लिये आत्मशक्तिके प्रकट होनेको सम्यग्वीर्य कहते है।

प्रश्न ११—आचार्यदेव इन पांच प्रकारके आचारोमे अपनेको कैसे लगाता है ?

उत्तर—आचार्य परमेष्ठी स्वशुद्धात्मभावनाके बलसे अपनेको पांच आचारोमे लगाता है, कदाचित् कुछ प्रमाद हो तो व्यवहारदर्शनाचार, व्यवहारज्ञानाचार, व्यवहारचारित्राचार, व्यवहारतपाचार, व्यवहारवीर्याचारमे बर्त कर पुन पूर्ण सावधान होकर मिथ्याचारमे लग जाता है।

प्रश्न १२—उक्त पाँच आचारोमे आचार्य शिष्यको कैसे लगाता है ?

उत्तर—आचार्यके आचारोकी दृढता देखकर शिष्य आचारोमे दृढ हो जाता है। इसके अतिरिक्त आचार्य शिष्योको उपदेश देकर, दीक्षा, प्रायश्चित आदि देकर शिष्योको आचारोमे लगनेके पात्र बना देते है।

प्रश्न १३– आचार्य परमेष्ठीके क्या पाँच आचार ही मूल गुण है ?

उत्तर—आचार्य परमेष्ठीके ३६ मूल गुण है । जिनमे पाँच आचारोकी अधिक विशेषता मानी गई है । वे ३६ मूल गुण ये है—१२ तप, १० धर्म, ५ आचार, ६ आवश्यक और ३ गुप्ति । अथवा आचार्य परमेष्ठीके ये मुख्य ८ गुण है—(१) आचारवत्व, (२) आधारवत्व, (३) व्यवहारवत्व, (४) प्रकारकत्व, (५) आयोपायविदर्शित्व, (६) अवपीडकत्व, (७) अपरिस्रावित्व और (८) निर्यापकत्व ।

प्रश्न १४-- आचारवत्व गुण किसे कहते है ?

उत्तर—पाच प्रकारके आचारोका स्वय निर्दोष पालन करने व अन्य साधुवोको पालन करानेको आचारवत्व गुण कहते है ।

प्रश्न १५—आधारवत्व गुण किसे कहते है ?

उत्तर– आचाराङ्ग आदि श्रुतका विशेष धारण होनेको आधारवत्व गुण कहते है ।

प्रश्न १६– व्यवहारवत्व गुण किसे कहते है ?

उत्तर—प्रायश्चित शास्त्रोकी विधि और अपने ज्ञानबलके अनुसार प्रायश्चित आदि देनेकी क्षमनाको व्यवहारवत्व कहते है ।

प्रश्न १७—प्रकारकत्व गुण किसे कहते है ?

उत्तर—सर्व सघके वैयावृत्य करनेकी विधिके परिज्ञान और वैयावृत्य करनेकी कलाको प्रकारकत्व कहते है ।

प्रश्न १८—आयोपायविदर्शित्व गुण किसे कहते है ?

उत्तर—किसी भी कार्यकी हानि और लाभको स्पष्ट और यथार्थ बतानेकी क्षमताको आयोपायविदर्शित्व कहते है ।

प्रश्न १९– अवपीडकत्व गुण किसे कहते है ?

उत्तर– आलोचना करने वाला साधु आचार्यके जिस प्रभावके कारण अपनी शल्य, अपने दोषको उगल देवे उस प्रभावको अवपीडकत्व कहते है ।

प्रश्न २०—अपरिस्रावित्व गुण किसे कहते है ?

उत्तर—आलोचक शिष्य आचार्यसे जो भी आलोचनाको, वह दोष व आलोचना आचार्य किसी भी दूसरेसे प्रकट न करे, ऐसी उदारताको अपरिस्रावित्व कहते है ।

प्रश्न २१—निर्यापकत्व गुण किसे कहते है ?

उत्तर—शिष्यकी पालित आराधना अन्त समय तक निर्विघ्न चले और समाधिसे शिष्य ससारसे पार हो, ऐसे उपाय करनेकी क्षमताको निर्यापकत्व कहते है ।

प्रश्न २२—क्या आचार्य परमेष्ठी केवल पदस्थ ध्यानमे ध्येय है ?

उत्तर— आचार्य परमेष्ठी पिण्डस्थ ध्यानमे भी ध्यान किये जाने योग्य है ?

प्रश्न २३— इस पदस्थ और पिण्डस्थ ध्यानका परस्पर कोई सम्बन्ध है ?

उत्तर— इन दोनो ध्यानोमे कार्यकारण सम्बन्ध है—पदस्थ ध्यान कारण है और पिण्डस्थ ध्यान कार्य है।

प्रश्न २४—आचार्य परमेष्ठीके ध्यानसे क्या प्रेरणा मिलती है ?

उत्तर—मोक्षमार्गके कारणभूत पञ्च-आचारोके धारण, पालन और निर्वहणकी सुगमता व शरणकी प्रतीति होनेसे पुरुषार्थ करनेमे उत्साह बढता है।

इस प्रकार पदस्थ ध्यानमे ध्याये गये आचार्य परमेष्ठीके स्वरूपका वर्णन करके पदस्थ ध्यानमे ध्याये गये उपाध्याय परमेष्ठीके स्वरूपका वर्णन करते हैं—

जो रयणत्तयजुत्तो णिच्च धम्मोवएसणे णिरदो ।
सो उवझाओ अप्पा जदिवरवसहो णमो तस्स ॥५३॥

अन्वय—जो रयणत्तयजुत्तो णिच्च धम्मोवएसणे णिरदो सो जदिवरवसहो अप्पा उवझाओ, तस्स णमो।

अर्थ—जो रत्नत्रयसे युक्त है, प्रतिदिन धर्मका उपदेश करनेमे निरत है, वह मुनिवरो मे प्रधान आत्मा उपाध्याय परमेष्ठी है, उसको नमस्कार होओ।

प्रश्न १— रत्नत्रय शब्दका निरुक्त्यर्थ क्या है ?

उत्तर—जो जिस जातिमे उत्कृष्ट हो वह उस जातिमे रत्न कहलाता है और तीन रत्नोके समाहारको रत्नत्रय कहते हैं। यहाँ मोक्षमार्गका प्रकरण है, सो मोक्षमार्गके रत्नत्रय ये ३ है—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र।

प्रश्न २—रत्नत्रय कितने प्रकारका होता है ?

उत्तर—रत्नत्रय २ प्रकारका होता है—(१) निश्चयरत्नत्रय, (२) व्यवहाररत्नत्रय।

प्रश्न ३—निश्चयरत्नत्रय किसे कहते है ?

उत्तर— अविकार निज शुद्ध आत्मतत्त्वके श्रद्धान, ज्ञान और अनुचरणरूप परमसमाधिको निश्चयरत्नत्रय कहते है। इसके अपर नाम अभेदरत्नत्रय, आभ्यन्तररत्नत्रय आदि भी है।

प्रश्न ४— व्यवहाररत्नत्रय किसे कहते है ?

उत्तर— निश्चयरत्नत्रयके कारणभूत सम्यग्दर्शनके ८ अङ्ग, सम्यग्ज्ञानके ८ अग और सम्यक्चारित्रके १३ अङ्गोके धारण, पालन व निर्वहणको व्यवहाररत्नत्रय कहते है। इसके अपर नाम भेदरत्नत्रय, बाह्यरत्नत्रय आदि भी है।

प्रश्न ५— उपाध्याय परमेष्ठी किस धर्मका उपदेश करते है ?

उत्तर– उपाध्याय परमेष्ठी निश्चयधर्म व व्यवहारधर्म दोनो प्रकारके धर्मोका उपदेश करते है ।

प्रश्न ६– निश्चयधर्म किसे कहते है ?

उत्तर-- वस्तुके स्वभावको अथवा आत्माके स्वभावको निश्चयधर्म कहते है तथा इस निश्चयधर्मकी दृष्टिके फलमे होने वाले मोहक्षोभरहित निर्मल परिणामको भी निश्चयधर्म कहते है।

प्रश्न ७– व्यवहारधर्म किसे कहते है ?

उत्तर– निश्चयधर्मके परम्परया साधनभूत एकदेश शुद्धोपयोगरूप या निश्चयधर्मके लक्ष्य रहते हुए किये गये शुभोपयोगको व्यवहारधर्म कहते है अथवा निश्चयधर्मके आविर्भाव को व्यवहारधर्म कहते है ।

प्रश्न ८ — इन धर्मोका उपदेश किस पद्धतिसे दिया जाता है ?

उत्तर-- निज शुद्धात्मद्रव्य उपादेय है, परद्रव्य हेय है, निज शुद्धात्मसवेदन भाव उपादेय है, परभाव हेय है, परमात्मभक्ति, सयम, ध्यान उपादेय है, पापभाव हेय है इत्यादि हेयोपादेयकी बुद्धि विशद करने वाली पद्धतिसे धर्मोपदेश दिया जाता है ।

प्रश्न ९– यतिवरवृषभ शब्दका क्या अर्थ है ?

उत्तर—विषय कषायोके विजय द्वारा जो निज शुद्धात्मतत्त्वकी सिद्धिमे यत्न करते हैं उन्हे यति कहते है और जो यतियोमे वर है, श्रेष्ठ है उन्हे यतिवर कहते हैं तथा यतिवरोमे वृषभ अर्थात् प्रधानको यतिवरवृषभ कहते हैं ।

प्रश्न १०—उपाध्याय शब्दका क्या अर्थ है ?

उत्तर—उप समीपे, यस्य समीपे अधीते शिष्यवर्गः पठति स उपाध्याय , जिसके समीप मे आत्मकल्याणार्थी शिष्यवर्ग अध्ययन करते है उसे उपाध्याय कहते है ।

प्रश्न ११—उपाध्याय परमेष्ठीके ध्यानसे क्या प्रेरणा मिलती है ?

उत्तर– उपाध्याय परमेष्ठीके मूल गुण २५ है, जिनके नाम ११, अग १४ पूर्वरूप है, क्योकि उपाध्याय परमेष्ठी इनके ज्ञाता होते है । सो उपाध्याय परमेष्ठी ज्ञानके प्रतीक है, इनके ध्यानसे निश्चयस्वाध्यायके कारणभूत आगमज्ञानप्राप्तिकी तथा निज शुद्धात्मतत्त्वके अभ्यासरूप निश्चयस्वाध्यायकी प्रेरणा मिलती है ।

प्रश्न १२—उपाध्याय परमेष्ठीका क्या केवल पदस्थ ध्यानमे ध्यान होता है ?

उत्तर– उपाध्याय परमेष्ठीका पिण्डस्थ ध्यानमे भी ध्यान होता है । यह ध्यान इस पिण्डस्थ ध्यानका कारणभूत है ।

इस प्रकार पदस्थ ध्यानमे ध्येयभूत उपाध्याय परमेष्ठीका स्वरूप कहकर पदस्थानमें

ध्यायें गये साधु परमेष्ठीका स्वरूप कहते है —

दसणणाणसमग्गं मग्ग मोक्खस्स जो हु चारित्तं ।
साधयदि णिच्चसुद्ध साहू सो मुणी णमो तस्स ।।५४।।

अन्वय– जो णिच्चसुद्ध मोक्खस्स मग्ग दसणणाणसमग्ग चारित्त हु साधयदि स मुणी साहू तस्स णमो ।

अर्थ-- जो नित्य शुद्ध याने रागादिरहित, मोक्षके मार्गभूत, दर्शन ज्ञान करि परिपूर्ण चारित्रको निश्चयसे साधता है वह मुनि साधु परमेष्ठी है, उसको नमस्कार हो ।

प्रश्न १-- मोक्षमार्ग नित्य शुद्ध है, इसका तात्पर्य क्या है ?

उत्तर-- मिथ्यात्व, राग, द्वेष रहित चैतन्यका अविकार परिणमन ही मोक्षमार्ग है और ऐसा ही अनन्तकाल तक मोक्षमार्गका स्वरूप रहेगा । द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव आदिके किसीके अन्तर होनेपर मोक्षमार्गका स्वरूप नही बदलेगा तथा इसी प्रकार उक्त निश्चय-मोक्षमार्गके कारणभूत बाह्य आभ्यन्तर परिग्रहसे रहितता तथा निष्परिग्रहतामें दोष न लगे, इस प्रकारकी अहोरात्रचर्या व्यवहार मोक्षमार्ग कहावेगा । इससे विपरीत अन्य कुछ मोक्षमार्ग ही नही।

प्रश्न २-- सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र– ये तीनो मोक्षके मार्ग है या नही ?

उत्तर-- ये तीनो मोक्षके मार्ग तो है, परन्तु केवल कोई एक या दो मोक्षमार्गका वह पद नही जिसके पश्चात् मोक्ष होता ही है ।

प्रश्न ३-- फिर कोई एक मोक्षका मार्ग कैसे हो सकता है ?

उत्तर-- कोई एक या दो एकदेश मोक्षका मार्ग है और तीनोकी परिपूर्णता आत्यन्तिक मोक्षका मार्ग है ।

प्रश्न ४—सम्यग्दर्शनका प्रारम्भ किस गुणस्थानसे होता है ?

उत्तर—सम्यग्दर्शनकी उत्पत्ति चतुर्थ गुणस्थानमे हो जाती है । यदि सम्यक्त्व व देशचारित्र एक साथ प्रकट हो तो पाँचवे गुणस्थानमे सम्यग्दर्शनकी उत्पत्ति कहलाती है । यदि सम्यक्त्व और सकलसयम एक साथ प्रकट हो तो सप्तम गुणस्थानमे सम्यग्दर्शनकी उत्पत्ति कहलाती है ।

प्रश्न ५– सम्यग्ज्ञानकी उत्पत्ति किस गुणस्थानमे हो जाती है ?

उत्तर– सम्यग्दर्शनकी तरह सम्यग्ज्ञानकी भी चौथे, ५वे, ७वे गुणस्थानमे हो जाती है । परन्तु सम्यग्ज्ञानकी पूर्णता १३वें गुणस्थानमे हो जाती है । पूर्ण सम्यग्ज्ञानका अपर नाम केवलज्ञान है ।

प्रश्न ६– सम्यक्चारित्रकी उत्पत्ति किस गुणस्थानमे हो जाती है ?

उत्तर– सम्यक्‌चारित्रकी भी उत्पत्ति सम्यग्दर्शनकी तरह चौथे, ५वें, ७वे गुणस्थानमे हो जाती है, परन्तु सम्यक्‌चारित्रकी पूर्णता १४वें गुणस्थानके अन्तमे होती है।

प्रश्न ७—कषायोका अभाव तो १०वें गुणस्थानके अन्तमे हो जाता है, फिर इसके ही अनन्तर पूर्ण सम्यक्‌चारित्र क्यो नही हो जाता ?

उत्तर—कषायोके अभावसे होने वाली निर्मलताकी अपेक्षासे तो सम्यक्‌चारित्रकी पूर्णता ११वें से मानी गई है, परन्तु ११वें गुणस्थानमे तो औपशमिक चारित्र है उसका विनाश हो जाता है। १२वे गुणस्थानमे अनन्तज्ञान नही है जिससे अनन्तचारित्रका अनुभव नही है, १३वे गुणस्थानमे योगकी चचलता है, सो निर्मलता और अनुभवकी अपेक्षा पूर्णता होनेपर प्रादेशिक स्थिरता नही है। १४वें गुणस्थानमे कर्म नोकर्मसे सयुक्त होनेसे सर्वथा यथावस्था नही है, अत सम्यक्‌चारित्रको पूर्णता १४वें गुणस्थानके अन्तमे होती है।

प्रश्न ८– साधु शब्दका क्या अर्थ है ?

उत्तर—स्व शुद्धात्मान साधयति इति साधु, जो निज शुद्ध आत्माको साधे उसे साधु कहते है।

प्रश्न ९– साधु परिणतियोकी जातिकी अपेक्षासे कितने प्रकारके होते है ?

उत्तर—साधु १० प्रकारके होते है– (१) प्रमत्तविरत, (२) अप्रमत्तविरत, (३) अपूर्वकरणउपशमक, (४) अनिवृत्तिकरणउपशमक, (५) सूक्ष्मसाम्परायउपशमक, (६) उपशान्तमोह, (७) अपूर्वकरणक्षपक, (८) अनिवृत्तिकरणक्षपक, (९) सूक्ष्मसाम्परायक्षपक, (१०) क्षीणमोह।

प्रश्न १०– उक्त साधुवोमे परिणामविशुद्ध वालोका अल्पबहुत्व किस प्रकार है ?

उत्तर– पूर्व पूर्वसे उत्तर उत्तर नम्बर वाले साधु अधिक अधिक विशुद्ध परिणति वाले होते है।

प्रश्न ११—साधु परमेष्ठीके ध्यानसे क्या प्रेरणा मिलती है ?

उत्तर—साधुवोके गुणविकास व गुणविकासके मार्गके ध्यानसे व्यवहार मोक्षमार्ग एव निश्चयमोक्षमार्गमे चलनेकी प्रेरणा मिलती है।

प्रश्न १२—साधु परमेष्ठी क्या केवल पदस्थध्यानमे ही ध्येयभूत होते है ?

उत्तर– साधु परमेष्ठी पिण्डस्थ ध्यानमे भी ध्यान किये जाते है। यह पदस्थ ध्यान पिण्डस्थ ध्यानका कारणभूत है।

प्रश्न १३—पदस्थ ध्यानका क्या स्वरूप है ?

उत्तर– पदके उच्चारण व जपके अवलम्बनसे जो चित्तकी एकाग्रता होती है वह पदस्थ ध्यान कहलाता है।

प्रश्न १४– नमस्कारका क्या तात्पर्य है ?

उत्तर– क्रोध, अहकार, मायाचार व लोभको छोडकर गुणानुरागपूर्वक विनम्र होनेको नमस्कार कहते है।

प्रश्न १५– नमस्कार कितने प्रकारका होता है ?

उत्तर– नमस्कार चार प्रकारका होता है– (१) भाव नमस्कार, (२) मानसिक नमस्कार, (३) वाचनिक नमस्कार और (४) कायिक नमस्कार।

प्रश्न १६– भाव नमस्कार किसे कहते है ?

उत्तर– सहज शुद्ध चैतन्यकी भावनासे उत्पन्न हुये सहज आनन्दका अनुभव होना भावनमस्कार है।

प्रश्न १७– मानसिक नमस्कार किसे कहते है ?

उत्तर—परमेष्ठीके गुणोको चिन्तना, भावनासे मनका विनम्र हो जाना मानसिक नमस्कार है।

प्रश्न १८– वाचनिक नमस्कार किसे कहते है ?

उत्तर—'णमो अरहताण' आदि पदोका उच्चारण करने, परमेष्ठीका वाचक नाम लेने, नमस्कार हो, जयवन्त हो आदि मगल वचन बोलने, गुणोकी प्रशसा, स्तुति करनेको वाचनिक नमस्कार कहते है।

प्रश्न १९– कायिक नमस्कार किसे कहते है ?

उत्तर—परमेष्ठी देवका लक्ष्य करके सिर नमाने, हाथ जोडने, अष्टाङ्ग या सप्ताङ्ग या पञ्चाङ्ग आदि नमस्कार करनेको कायिक नमस्कार कहते है।

इस प्रकार पदस्थ ध्यान द्वारा ध्यानका उपदेश करके अब ध्याता, ध्यान, ध्येयका सकेत करते हुए निश्चय ध्यानका लक्षण कहते है–

ज किंचिवि चितंतो णिरीहवित्ती हवे जदा साहू।
लद्धूणय एयत्त तदाहु त तस्स णिच्छय झाण ॥५५॥

अन्वय– जदा ज किंचिवि चितंतो साहू एयत्त लद्धूणय णिरीहवित्ती हवे तदा त तस्स णिच्छय झाण आहु।

अर्थ– जिस समय जो कुछ भी विचारता हुआ साधु ध्येयमे चित्तकी एकाग्रताको प्राप्त करके अथवा निजमे एकत्वको प्राप्त करके समस्त इच्छावोसे रहित परिणति वाला हो जाता है तब ऋषिजन उस ध्यानको उसका निश्चयध्यान कहते है।

प्रश्न १– ध्येयका सकेत किस पदसे प्रकट होता है ?

उत्तर– "ज किंचिवि चितंतो" इस पदसे ध्येयका सकेत प्रकट होता है।

प्रश्न २– साधु जिस किसीका किसका चिन्तवन करता है ?

उत्तर-- आत्मा या अनात्मभूत कोई पदार्थ भी साधुके चिन्तवनमे आ जाय, कोई हानि नही होती है, क्योकि ज्ञानका स्वभाव जानना है। उसमे कुछ भी ज्ञान जाननेमे आ जाय व एकाग्रचित्ततासे भी जाननेमे आ जाय यह ज्ञान आत्माका बाधक नही है। बाधक तो विपरीत अभिप्राय है।

प्रश्न ३– प्राथमिक शिष्योके ध्यानमे अधिकतया क्या ध्येय आता है ?

उत्तर-- प्राथमिक साधकोके प्रायः सविकल्प अवस्था रहती है वहाँ विकल्प बहुलता की निवृत्तिके लिये चित्तकी स्थिरता आवश्यक है, एतदर्थ, देव, शास्त्र, गुरु आदि धर्मान्वित परद्रव्य ध्येय रहते है।

प्रश्न ४– अभ्यस्त साधुवोके ध्यानमें क्या ध्येय आता है ?

उत्तर– अभ्यस्त साधुवोके, निश्चलचित्तोके ध्यानमे सहज शुद्ध, नित्य, निरञ्जन निज शुद्धस्वभाव ध्येयरूप होता है।

प्रश्न ५—ध्यानका सकेत किस पदसे हो रहा है ?

उत्तर– "साहू णिरीहवित्ती हवे" जो साधु निस्पृह वृत्ति वाला हो जाता है इस पदसे ध्याताका सकेत हो रहा है। सफल ध्याता वही होता है जो सर्वप्रकारकी इच्छाओसे अत्यन्त परे है।

प्रश्न ६—यहाँ इच्छामे क्या-क्या बाते गर्भित है ?

उत्तर—इच्छामे सभी प्रकारके परिग्रह गर्भित हो जाते है। वे परिग्रह १४ है—(१) मिथ्यात्व, (२) क्रोध, (३) मान, (४) माया, (५) लोभ, (६) हास्य, (७) रति, (८) अरति, (९) शोक, (१०) भय, (११) जुगुप्सा, (१२) पुरुषवेद, (१३) स्त्रीवेद और (१४) नपुसकवेद।

प्रश्न ७– इन्ही आभ्यन्तर परिग्रहोसे रहित होनेकी आवश्यकता है तो बाह्यपरिग्रह होते हुये ध्यान होना मानना चाहिये ?

उत्तर—मिथ्यात्वका अभाव होनेपर वह अन्य आभ्यन्तर परिग्रहकी शिथिलता होने पर बाह्यपरिग्रहका ग्रहण ही नही रह सकता और बाह्यपरिग्रहका ग्रहण न रहने पर आभ्यन्तर परिग्रहका भी सर्वथा अभाव हो जाता है। इस प्रकार आभ्यन्तर व बाह्य दोनो प्रकारके सब परिग्रहोका त्यागी उत्तम ध्याता होता है।

प्रश्न ८—ध्यानका सकेत किस पद द्वारा हो रहा है ?

उत्तर– "एयत्त लद्धूणय" इस पदसे ध्यानका सकेत होता है। एकत्वकी प्राप्त करना ध्यानका लक्ष्य है। इसमें भी चित्तकी एकाग्रता पाने रूप एकत्वकी प्राप्ति ध्यानका प्राथमिक लक्षण है और निज शुद्ध आत्मतत्त्वके एकत्वको पाने रूप एकत्वकी प्राप्ति उत्तम ध्यानका

लक्षण है।

प्रश्न ६—यहां निश्चयध्यानसे तात्पर्य किस निश्चयध्यानका है ?

उत्तर– इस गाथामे व्यवहाररत्नत्रयके साधक चित्तकी एकाग्रतारूप ध्यानको निश्चय-ध्यान कहा गया है।

प्रश्न १०—इस निश्चयध्यानके फलमे क्या होता है ?

उत्तर—इस निश्चयध्यानके प्रतापसे निज शुद्ध आत्मतत्त्वके एकत्वकी प्राप्ति रूप परम-ध्यान होता है।

अब इसी परमध्यानका उपाय व स्वरूप कहते है।

> मा चिट्ठह मा जपह मा चितह किंवि जेण होई थिरो।
> अप्पा अप्पम्हि रओ इणमेव परं हवे झाणं ॥५६॥

अन्वय– किंवि मा चिट्ठह, मा जपत, मा चिंतह जेण अप्पा अप्पम्हि रओ थिरो होदि, इणमेव पर झाणं हवे।

अर्थ– कुछ भी चेष्टा मत करो, कुछ भी मत बोलो और कुछ भी मत विचारो, जिससे आत्मा आत्मामे रत होता हुआ स्थिर हो जाय, यही परमध्यान है।

प्रश्न १– चेष्टा करने, बोलने व सोचनेके निषेधके इस क्रमका कोई प्रयोजन है ?

उत्तर– काय, वचन, मनका निरोध क्रमसे होना सुगम होता है, इसके प्रदर्शित करने का प्रयोजन यह क्रम बनाता है।

प्रश्न २– किस प्रकारकी कायचेष्टाका विरोध करना चाहिये ?

उत्तर– शुभ तथा अशुभ सभी प्रकारकी शरीरकी चेष्टाका निरोध करना चाहिये।

प्रश्न ३– शुभ कायचेष्टाका निरोध क्यो आवश्यक है ?

उत्तर– अशुभ चेष्टाकी तरह शुभ चेष्टा भी सहज शुद्ध नित्य निष्क्रिय निज शुद्धात्मा के अनुभवमे बाधक है, अत शुभ अशुभ दोनो काय-व्यापारोका निरोध परमसमाधिरूप ध्यान के लिये आवश्यक है।

प्रश्न ४– कौनसे वचनव्यापार हटाना परमध्यानके लिये आवश्यक है ?

उत्तर—शुभबहिर्जल्प, अशुभबहिर्जल्प, शुभअन्तर्जल्प, अशुभअन्तर्जल्प– ये चारो ही प्रकारके वचनव्यापार रोक देना परमध्यानके लिये आवश्यक है।

प्रश्न ५– शुभ वचनोका व अन्तर्जल्परूप वचनोका रोकना परमध्यानके लिये क्यो आवश्यक है ?

उत्तर– अशुभ वचनव्यापारकी तरह शुभवचनव्यापार भी निश्चल निस्तरग चैतन्य-स्वभावके अनुभवका प्रतिबन्धक है और इसी प्रकार बहिर्जल्पकी तरह अन्तर्जल्प भी स्वभावा-

नुभवका प्रतिबन्धक है। अत सभी प्रकारके वचनव्यापारोका निरोध परमध्यानके लिये आवश्यक है।

प्रश्न ६-- कौनसे मानसिक व्यापारोका निरोध परमध्यानके लिये आवश्यक है ?

उत्तर-- शुभ तथा अशुभ सभी प्रकारके विकल्परूप चित्तव्यापारोका निरोध परमध्यानके लिये आवश्यक है।

प्रश्न ७-- शुभ भावनाओका निरोध परमध्यानके लिये क्यो आवश्यक है ?

उत्तर—अशुभ भावनाके विकल्पकी तरह शुभ भावनाके विकल्प भी निर्विकल्प, निरञ्जन सहज शुद्ध निज स्वभावके अनुभवके प्रतिबन्धक है, अतः शुभ व अशुभ दोनों प्रकार के विकल्पोका विरोध परमध्यानके लिये आवश्यक है।

प्रश्न ८— काय, वचन, मनके व्यापारके निरोधपूर्वक होने वाली आत्मलीनतामे आत्मा की क्या स्थिति रहती है ?

उत्तर—आत्मलीनतामे रागद्वेषके सर्वविकल्पोसे रहित परमसमाधि होती है और आत्मीय सहज परमआनन्दकी अनुभूति होती है।

प्रश्न ६—इस परमध्यानका फल क्या है ?

उत्तर— यह परमध्यान, अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तशक्ति और अनन्तआनन्दके आविर्भावका कारण है। जिस अनन्तचतुष्टय फलके प्रकट होनेसे यह परमतत्त्वदर्शी अनन्तकाल तक याने सर्वकाल तक परमात्मत्वका अनुभव करता है।

प्रश्न १०— इस परमध्यानमे ध्येयभूत तत्त्व क्या होता है ?

उत्तर— यह परमध्यान निर्विकल्प परमसमाधिरूप अवस्था है, अत बुद्धिपूर्वक ध्यान तो किसीका भी नहीं है, परन्तु निस्तरंग परिणमनमे ध्रुव, परमपारिणामिक भावस्वरूप, सहजज्ञानदर्शनानन्दमय समयसार ध्येय रह जाता है। इसे सहज शुद्ध आत्मतत्त्वका सहज अवलम्बन कहते है। इसमे यह आत्मा आनन्द, अनन्त, अहेतुक चैतन्यस्वभावको कारणरूपसे उपादान करके स्वय सहज आनन्दरूप परिणमता रहता है। यही परमकारण है।

इस प्रकार दस गाथाओमे ध्यानसम्बन्धी तत्त्वोका उपदेश करके श्रीमत्सिद्धान्तिदेव आचार्य अब ध्यानके वर्णनोका उपसहार करते हुए सदादेश देते है—

तवसुदवदव चेदा झाणरहधुरधरो हवे जम्हा।
तम्हा तत्तियणिरदा तल्लद्धीए सदा होइ ॥५७॥

अन्वय— जम्हा तव सुदवदव चेदा झाणरहधुरधरो हवे, तम्हा तल्लद्धीए सदा तत्तियणिरदा होह।

अर्थ—चूंकि तप श्रुत व्रत वाला आत्मा ही ध्यानरूपी रथकी धुरीका धारण करने

वाला होता है, अतः हे भव्यजीवो ! इस ध्यानकी प्राप्तिके अर्थ सदा तप, श्रुत और व्रत—इन तीनोमे निरत होओ।

प्रश्न १– परमध्यानके वर्णनके बाद व्यवहार साधनोसे ध्यानका उपसहार क्यो किया ?

उत्तर—यहाँ निश्चयतप, निश्चयश्रुत व निश्चयव्रतका ग्रहण करना है। यह परमध्यानके अनन्य सहायक है। अत व्यवहारसाधन जैसी बात नही सोचना।

प्रश्न २– निश्चयतप क्या है ?

उत्तर—शुद्ध आत्मस्वरूपमे तपना निश्चयतप है। इस निश्चयतपका प्राथमिक साधन अनशन आदि बारह प्रकारका तप है।

प्रश्न ३—निश्चयश्रुत क्या है ?

उत्तर—निर्विकार शुद्ध स्वसवेदनरूप परिणमन निश्चयश्रुत है। इस निश्चयश्रुतका साधन आचार शास्त्र आदि द्रव्यश्रुतका अध्ययन, मनन, आधार है।

प्रश्न ४—निश्चयव्रत क्या है ?

उत्तर-- समस्त शुभ अशुभ मन, वचन, कायके व्यापारोसे निवृत्ति होना निश्चयव्रत है।

प्रश्न ५-- निश्चयव्रतका साधन क्या है ?

उत्तर– अहिंसामहाव्रत आदि बाह्य व्रतोका पालन निश्चयव्रतका साधन है।

प्रश्न ६—अहिंसा महाव्रतादि तो पूर्ण त्यागरूप है, ये बाह्यव्रत क्यो कहे जाते है ?

उत्तर-- ये पाँचो महाव्रतादि तो पूर्ण निवृत्तिरूप नही हैं, अत ये बाह्यव्रत कहलाते है अथवा एकदेशव्रत कहलाते है।

प्रश्न ७-- एकदेशव्रत तो संयमासयम होता है, महाव्रत एकदेशव्रत कैसे हो सकता है ?

उत्तर– इन महाव्रतोमे भी एकदेश प्रवृत्ति पाई जाती है, अत ये भी एकदेशव्रत हैं। सयमासयमरूप एकदेशव्रतमे ये महाव्रत विशेष व्रत अवश्य हैं।

प्रश्न ८– महाव्रतोमे क्या अनिवृत्ति या प्रवृत्ति पाई जाती है ?

उत्तर-- अहिंसामहाव्रतमे जीवरक्षाकी प्रवृत्ति है, सत्यमहाव्रतमे सत्यवचनकी प्रवृत्ति है, अचौर्यमहाव्रतमे दत्तादानकी प्रवृत्ति है, ब्रह्मचर्यमहाव्रतमे शीलरक्षणकी प्रवृत्ति है, परिग्रहत्याग महाव्रतमे असग रहने, नग्न रहने, एकान्त सवास करने आदिकी प्रवृत्ति है।

प्रश्न ९– तब क्या निश्चयव्रतमे जीवरक्षाकी प्रवृत्ति नही है ?

उत्तर– निश्चयव्रतमे शुभ अशुभ समस्त विकल्पोकी निवृत्ति है, पूर्ण मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्तिकी अवस्था है। वहा किसी भी प्रकारके विकल्पको अथवा व्यापारको अव-

काश नही है। वहाँ तो जैसे हिंसादि अशुभ भावोसे निवृत्ति है वैसे ही जीवरक्षादि शुभ भावोसे भी पूर्ण निवृत्ति है, अन्यथा मोक्षकी प्राप्ति असम्भव हो जायेगी।

प्रश्न १०—तथा निश्चयव्रत, निश्चयतप और निश्चयश्रुतके बिना मोक्षकी प्राप्ति नही होती?

उत्तर—निश्चयव्रत, निश्चयतप और निश्चयश्रुत रूप परमसमाधिके बिना मोक्षकी प्राप्ति असम्भव है।

प्रश्न ११—जिनके सकलसयमका उत्कृष्ट अन्तर कुछ अन्तर्मुहूर्त कम अर्द्धपुद्गल परिवर्तनकाल तकका बताया है वहां सकलसयम होते ही अन्तर्मुहूर्त मोक्ष माना है। वहाँ निश्चयतप आदिका अवसर ही कैसे हो सकता है?

उत्तर—ऐसी स्थितिमे भी निश्चयतप आदि रूप परमसमाधि तो होती ही है, किन्तु उसका अधिक काल न होनेसे वह लोकप्रसिद्ध नही हो पाती।

प्रश्न १२—क्या निश्चयतप, निश्चयव्रत व निश्चयश्रुत आजकल सम्भव है?

उत्तर—निश्चयतप आदि आजकल सम्भव तो है, परन्तु अत्यल्पकाल तक यह परिणति आजकल रह सकती है, इस कारण मोक्षका कारणभूत शुक्लध्यान भी नही हो पाता।

प्रश्न १३—तब फिर आजकल उत्कृष्टसे उत्कृष्ट कौनसा ध्यान हो सकता है?

उत्तर—आजकल धर्मध्यान तक ही हो सकता है।

प्रश्न १४—जब मोक्षका कारणभूत शुक्लध्यान नही हो पाता, फिर ध्यानके प्रयत्न से क्या प्रयोजन?

उत्तर—धर्म्यध्यान भी मोक्षका परम्परया कारणभूत है। इस समय भी ऐसा तो हो ही सकता है कि स्वशुद्धात्मभावनारूप निश्चयतप आदिके होनेपर देवायुका बन्ध कर मरणकर देवगतिमे उत्पत्ति हो। फिर वहाँसे चलकर विदेहक्षेत्रमे अथवा चतुर्थकालमे मनुष्य होकर वहाँसे मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं।

प्रश्न १५—ध्यानके मुख्य सहायक साधन क्या हैं?

उत्तर—वैराग्य, तत्त्वज्ञान, निष्परिग्रहता, वशचित्तता, परीषहविजय—ये पाँच ध्यानके मुख्य साधक हैं। स्थिरचित्तता

प्रश्न १६—वैराग्यसे तात्पर्य क्या है?

उत्तर—संसार, देह और भोगोसे उपेक्षा होनेको वैराग्य कहते है।

प्रश्न १७—ससारसे उपेक्षा कैसी होना चाहिये?

उत्तर—संसारका अर्थ है—मन वचन कायकी चेष्टायें, उन्हे अहित, विनश्वर और परभाव जानकर उनसे रति हट जाना चाहिये।

प्रश्न १८— देहसे वैराग्य कैसे होता है ?

उत्तर—यह ही दुःखका प्रबलतम कारण है। इसीका सम्बन्ध नाना वेदनाओंका मूल है और फिर भी यह देह हाड मासका पुतला अनेक रोगोंसे घिरा हुआ है इत्यादि देहके स्वरूपके ज्ञानके बलसे देहसे अनुराग हट जाता है।

प्रश्न १९—अङ्गोंसे उपेक्षा कैसे हो जाती है ?

उत्तर— पञ्च इन्द्रियोंके साधनभूत दृश्यमान ये जड पदार्थ मुझ चेतनसे अत्यन्त भिन्न है, इनकी चाहसे ही मेरा अनन्त वैभव ढका हुआ है, इनका समागम भी विद्युतकी तरह चञ्चल है इत्यादि सत्य भावनावोंके बलसे भोगोंसे उपेक्षा हो जाती है।

प्रश्न २०— ससारसे वैराग्य पानेसे ध्यानपर कैसे असर होता है ?

उत्तर—जब मन वचन कायकी चेष्टावोंमे रति नही होती है तब उपयोगको इनमे आश्रय न मिलनेसे उपयोगकी अस्थिरता समाप्त होती है। यही उपयोगकी स्थिरताका ध्यान है। इस प्रकार ससारमे वैराग्य होनेसे ध्यानकी वृद्धि होती है।

प्रश्न २१— तत्त्वज्ञान किसे कहते है ?

उत्तर— स्वभाव व परभावके भेदविज्ञानके बलसे स्वत.सिद्ध, ध्रुव सहजानन्दमय चैतन्य परमतत्त्वके उपयोगको तत्त्वज्ञान कहते है।

प्रश्न २२—तत्त्वज्ञानमे ध्यानकी सिद्धि क्यों सुगम है ?

उत्तर— तत्त्वज्ञानमे उपयोगका विषय अपरिणामी, स्वत सिद्ध, परमपारिणामिक भावमय निज चैतन्यरस रहना है, सो स्थिर विषयके उपयोगसे ध्यान भी स्थिर होता है।

प्रश्न २३— तत्त्वज्ञानसे ध्यानकी कैसे सिद्धि होती है ?

उत्तर—बाह्य परिश्रमका आश्रय करके आभ्यन्तर परिग्रह इच्छाका प्रादुर्भाव होता है। इच्छाके उदयमे चित्तकी चञ्चलता रहती है। जब बाह्य परिग्रहका आश्रय छोड दिया जाता है तब बाह्य व आभ्यन्तर समस्त परिग्रहोके अभावसे इच्छा समाप्त हो जाती है और इस निर्वाञ्छकताके फलमे स्वसवेदनकी स्थिरता होती है। इस प्रकार इस उत्कृष्ट ध्यानकी साधिका निष्परिग्रहता है।

प्रश्न २४—वशचित्तताmे ध्यानकी सिद्धि कैसे होती है ?

उत्तर— चित्तके वश होनेसे अर्थात् भोग, प्रशसा, कीर्ति आदिके आधीन चित्तके न होनेसे चित्तकी एकाग्रता रह सकती है। और इस एकाग्रतामे एक उपादेय तत्त्वकी ओर चिन्तन रुक जाता है। इस प्रकार वशचित्ततासे ध्यानकी सिद्धि होती है।

प्रश्न २५—परीषहविजय ध्यानकी सिद्धिमे कैसे कारण पडता है ?

उत्तर—परीषहोके (उपसर्ग याने उपद्रवोके) आने पर जो परीषहविजयी नही है उसे

विह्वलता हो ही जावेगी। विह्वल पुरुषके चित्तकी एकाग्रता नही रहती है, अतः ध्यान भी नही हो सकता। जो परीषहविजयी है वे मोहियोके माने हुये संकटोके उपस्थित होनेपर भी ज्ञानभावसे च्युत नही होते। इस प्रकार परीषहविजय ध्यानसिद्धिमे कारण होता है।

प्रश्न २६—तप, व्रत, श्रुतमे निरत सदा होनेका उपदेश किया, सो सदाका अर्थ क्या है ?

उत्तर—जब तक ध्यानसे च्युत होकर अपध्यानकी कभी भी सभावना न रहे तब तक इन तीनोमे 'सदा निरत हो उन्हे' यह तात्पर्य सदा शब्दसे निकलता है।

प्रश्न २७— ध्यानकी प्राप्ति होनेपर क्या अनन्तकाल तक ध्यान बना रहता है ?

उत्तर— अन्तर्मुहूर्त परमोत्कृष्ट अभेदध्यान होनेपर परमात्मत्व, सर्वज्ञत्व प्रकट हो जाता है, पश्चात् अतीतध्यान अवस्था हो जाती है, फिर न तो ध्यान रहता है और न ध्यान की आवश्यकता ही होती है।

इस प्रकार द्रव्योके यथार्थ परिज्ञानके फलभूत ध्यानका वर्णन करके ग्रन्थसमाप्तिपर पूज्य श्रीमन्नेमिचन्द्रजी सिद्धान्तिदेव अन्तमे श्रुतदेवताके प्रति भक्तिरूप अपनी लघुताकी सूचना करते हुये अन्तिम गाथा कहते है—

दव्वसग्रहमिण मुणिणाहा दोससचयचुदा सुदंपुण्णा।
सोधयतु तणुसुत्तधरेण णेमिचदमुणिणाभणियं ज ॥५८॥

अन्वय— तणुसुत्तधरेण णेमिचदमुणिणा ज भणिय, इव दव्वसग्रह दोससचयचुदा सुदपुण्णा मुणिणाहा सोधयतु।

अर्थ—अल्पज्ञानी नेमिचद मुनिके द्वारा जो कहा गया है, ऐसे इस द्रव्यसग्रहको समस्त दोषोसे रहित और श्रुतमे परिपूर्ण, ऐसे मुनि प्रधान गुरुजन शुद्ध करे।

प्रश्न १—द्रव्यसग्रहका शब्दार्थ क्या है ?

उत्तर— जिसने पर्यायोरूपसे परिणमन किया व कर रहा है एव करता रहेगा वह द्रव्य कहलाता है। ऐसे-ऐसे समस्त द्रव्योका वर्णनात्मकसग्रह जिसमे किया गया उस गाथाको द्रव्य-सग्रह कहा गया है।

प्रश्न २—समस्त द्रव्योंका जातिकी अपेक्षासे किस-किस प्रकार संग्रह किया जा सकता है ?

उत्तर— जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल—इन छः जातियोमे तज्जातीय सर्वद्रव्योका सग्रह हो जाता है।

प्रश्न ३— इन छः जातियोका भी किन-किन विशेषताओमे किन-किनका अन्तर्भाव हो सकता है ?

उत्तर— जीवत्व, मूर्तत्व, एक संख्यकत्व, सर्वगतत्व, कर्तृत्व, गतिहेतुत्व, स्थितिहेतुत्व, अवगाहनहेतुत्व, परिणमनहेतुत्व, अनन्तप्रदेशत्व, एकप्रदेशित्व, परिणामित्व, क्रियावत्व, विभावशक्तिमत्व, असंख्यातप्रदेशित्व, असख्यातसख्यक, अनन्तसख्यक, नित्यत्व, कारणबहुप्रदेशित्व, अमूर्तत्व, जडत्व, अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशत्व, प्रमेयत्व आदि विशेषतावो मे १-१, २-२, ३-३, १, २, ३, ४, ५, ६ जातिके द्रव्योका यथासम्भव सग्रह होता है।

प्रश्न ४— जीवत्व किन द्रव्योमे पाया जाता है ?

उत्तर—जीवत्व केवल जीवद्रव्यमे पाया जाता है, शेष ५ द्रव्योमे जीवत्व कभी नही हो सकता। क्योकि ज्ञान दर्शनरूप चैतन्य जीवमे ही होता है।

प्रश्न ५— मूर्तत्व किन द्रव्योमे पाया जाता है ?

उत्तर— मूर्तत्व केवल पुद्गल द्रव्योमे ही पाया जाता है। रूप, रस, गन्ध, स्पर्श— इन चारोका सद्भावरूप मूर्तत्व शेष ५ द्रव्योमे कभी नही पाया जाता।

प्रश्न ६—एक सख्यक द्रव्य कौन-कौन है ?

उत्तर—जो केवल एक ही है, जिनकी सख्या एकसे अधिक है ही नही, ऐसे द्रव्य ३ है--- (१) धर्मद्रव्य, (२) अधर्मद्रव्य, (३) आकाशद्रव्य।

प्रश्न ७—सर्वगत्व किन द्रव्योमे पाया जाता है ?

उत्तर— सर्वगत्व याने सर्वव्यापीपना केवल आकाशद्रव्यमे है। आकाशद्रव्य सर्वव्यापी है। शेष ५ द्रव्योमेसे कोई भी द्रव्य लोकालोकव्यापक नही है।

प्रश्न ८— कर्तृत्व किन-किन द्रव्योमे पाया जाता है ?

उत्तर—अपने-अपने परिणमनसे परिणमना कर्तृत्व है, इस विवक्षासे तो कर्तृत्व सर्वद्रव्योमे पाया जाता है, परन्तु कर्तृत्वकी जैसी प्रसिद्धि समझदारकी चेष्टामे है ऐसे कर्तृत्व की अपेक्षा तो कर्ता एक जीवद्रव्य ही है। यह जीव यद्यपि परमशुद्ध निश्चयनयकी दृष्टिसे बन्ध, मोक्ष, पुण्य, पाप आदि सर्व भाव और पदार्थोंका अकर्ता है तथापि शुद्धनिश्चयनयसे जीव अनन्तज्ञानादिका कर्ता है, अशुद्ध निश्चयनयसे रागादि भावका कर्ता है, व्यवहारसे घट पट आदिका कर्ता माना गया है।

प्रश्न ९—गतिहेतुत्वकी विशेषता किन द्रव्योमे पाई जाती है ?

उत्तर— गतिहेतुत्व केवल धर्मद्रव्यमे ही पाया जाता है। अन्य ५ द्रव्योमे गतिहेतुत्व नही है।

प्रश्न १०—स्थितिहेतुत्व किन द्रव्योमे पाया जाता है ?

उत्तर—स्थितिहेतुत्व केवल अधर्मद्रव्यमे पाया जाता है।

प्रश्न ११—अवगाहनहेतुत्व किन द्रव्योमे पाया जाता है ?

उत्तर—अवगाहनहेतुत्व केवल आकाशद्रव्यमे पाया जाता है। शेष ५ द्रव्योमे अवगाहनहेतुत्व नही है। क्योकि सर्वद्रव्योको अवकाश देनेमे समर्थ आकाशद्रव्य ही है।

प्रश्न १२—परिणामनहेतुत्व किन द्रव्योमे पाया जाता है?

उत्तर—परिणामनहेतुत्व केवल कालद्रव्यमे ही पाया जाता है। क्योकि सर्वद्रव्योके परिणमनका साधारण निमित्तपना कालद्रव्यमे ही है।

प्रश्न १३—अनन्तप्रदेशवत्व किन-किन द्रव्योमे पाया जाता है?

उत्तर—अनन्तप्रदेश केवल आकाशद्रव्यमे ही होते है, अतः अनन्त प्रदेशवत्व आकाशद्रव्यमे ही पाया जाता है।

प्रश्न १४—स्कन्ध भी तो अनेक अनन्तप्रदेशी होते है, उन्हे अनन्तप्रदेशी क्यो नही बताते?

उत्तर—वे स्कन्ध अनन्त पुद्गलद्रव्योका एक पिण्ड है, वस्तुत उस स्कन्धमे जितने द्रव्य है वे सब एक-एक प्रदेशी है।

प्रश्न १५—एक प्रदेशित्व धर्म किन द्रव्योमे पाया जाता है?

उत्तर—एक प्रदेशीपना पुद्गलद्रव्य (परमाणु) और कालद्रव्य—इन दो द्रव्योमे पाया जाता है।

प्रश्न १६—परिणामित्व किन द्रव्योमे पाया जाता है?

उत्तर—सूक्ष्मतासे तो परिणामित्व छहो द्रव्योमे पाया जाता है, (किन्तु यहाँ उस परिणामित्वकी विवक्षा है जिसमे आकार भी बदल जाता है। ऐसे विभावव्यञ्जन पर्यायकी विवक्षासे परिणामित्व केवल जीव और पुद्गलोमे ही पाया जाता है।)

प्रश्न १७—पुद्गल द्रव्य तो एकप्रदेशी है, फिर उसमे परिणामित्व कैसे हो सकता है?

उत्तर—पुद्गलद्रव्य रूप, रस, गध व स्पर्शकी अपेक्षा व्यक्तपरिणामी है और अनेक पुद्गलद्रव्योका विलक्षण पिण्ड होनेसे एकरूपताका उपचार करके उसमे विभावव्यञ्जन पर्याय भी घटित होती है, अत. पुद्गलद्रव्यमे परिणामित्व घटित हो जाता है।

प्रश्न १८—क्रियावत्व धर्म किन द्रव्योमे है?

उत्तर—क्रियावत्व धर्म केवल जीव और पुद्गलद्रव्योमे ही है। शेषके ४ द्रव्य अपने अवरुद्ध आकाशक्षेत्रको छोडकर एक प्रदेशमे भी कही नही जा सकते है।

प्रश्न १९—विभावशक्तित्व धर्म किन द्रव्योमे है?

उत्तर—विभावशक्तित्व धर्म जीव और पुद्गल—इन दो द्रव्योमे ही है। जीव और पुद्गलमे दो द्रव्य ही अपने गुणोमे विभावरूपसे परिणम सकते है अर्थात् नाना विषम विकासो से परिणम सकते है। शेषके ४ द्रव्योका स्वभावपरिणमन ही होता है।

प्रश्न २०– असख्यातप्रदेशी द्रव्य कौन-कौन है ?

उत्तर– जीवद्रव्य, धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य– ये तीन द्रव्य असख्यातप्रदेशी है ।

प्रश्न २१– असख्यातसख्यक द्रव्य कौन-कौन हैं ?

उत्तर– कालद्रव्य ही असख्यातसख्यक द्रव्य है अर्थात् कालद्रव्य असख्यात है । प्रत्येक कालद्रव्य लोकाकाशके एक प्रदेशपर अवस्थित है और लोकाकाशके एक प्रदेशपर एक ही कालद्रव्य है । लोकाकाशके असख्यात प्रदेश होते है ।

प्रश्न २२– अनन्तसख्यात द्रव्य कौन-कौन है ?

उत्तर—जीव और पुद्गल द्रव्य– ये दो द्रव्य अनन्तसंख्यक है अर्थात् जीवद्रव्य अनन्तानन्त है और पुद्गलद्रव्य भी अनन्तानन्त है ।

प्रश्न २३– नित्यत्व धर्म किन द्रव्योमे पाया जाता है ?

उत्तर– यद्यपि सभी द्रव्य स्वत सिद्ध और नित्य है, किन्तु यहाँ उस नित्यत्वकी विवक्षा है जिसमे व्यञ्जनपर्यायका न कभी परिवर्तन हुआ और न कभी होगा । इस नित्यत्व की विवक्षासे धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य और कालद्रव्य– इन चार द्रव्योमे नित्यत्व है ।

प्रश्न २४—कारणभूत द्रव्य कौन-कौन है ?

उत्तर—पुद्गल, धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य और कालद्रव्य– ये ५ द्रव्य चैतन्यशून्य होनेसे कर्तृत्वकी प्रसिद्धि नही है, अतः ये कारण ही है । अथवा ये पाँचो द्रव्य शरीर मन, वचन श्वासोच्छ्वास गति स्थिति अवगाह परिणमन आदि कार्यके करने वाले है, किन्तु जीव इन पाच द्रव्योका कुछ कार्य नही करता, इस उपकारकी अपेक्षा ये ५ द्रव्य कारण हैं ।

प्रश्न २५– बहुप्रदेशित्व धर्म किन-किन द्रव्योमे है ?

उत्तर– बहुप्रदेशित्व पुद्गल व कालद्रव्यको छोडकर शेष चार द्रव्योमे पाया जाता है ।

प्रश्न २६– यदि बहुप्रदेशित्व पुद्गलद्रव्यमे नही है तो पुद्गलद्रव्य अस्तिकाय कैसे सिद्ध होगा ? यदि पुद्गलद्रव्य अस्तिकाय नही है तो अस्तिकायकी सख्या ४ ही कहना चाहिये, ५ नही कहना चाहिये ?

उत्तर—पुद्गलद्रव्य उपचारसे अस्तिकाय है । सजातीय अनेक द्रव्योका एक पिण्डरूप स्कध पर्याय पुद्गलद्रव्योकी ही सम्भव है, अतः यह उपचार द्रव्यमे ही हो सकता है । अतः पुद्गलद्रव्यको अस्तिकाय भी माना है और बहुप्रदेशी भी माना है ।

प्रश्न २७– अमूर्तत्व धर्म किन द्रव्योमे है ?

उत्तर– अमूर्तत्व धर्म पुद्गलद्रव्यको छोडकर शेष ५ द्रव्योमे है । क्योकि इन पाँच द्रव्योमें रूप, रस, गध, स्पर्श, बिल्कुल सम्भव नही है ।

प्रश्न २८—जडत्वधर्म किन-किन द्रव्योमें है ?

उत्तर—जडत्वधर्म जीवको छोडकर शेष ५ द्रव्योमे है ।

प्रश्न २९—अस्तित्वधर्म किन द्रव्योमे है ?

उत्तर—अस्तित्वधर्म सभी द्रव्योमे है, क्योकि सभी द्रव्य सत्तावान है ।

प्रश्न ३०— वस्तुत्वधर्म किन-किन द्रव्योमे है ?

उत्तर— वस्तुत्वधर्म सभी द्रव्योमे है, क्योकि प्रत्येक द्रव्य अपनेमे अपनी शक्तियोको बसाये है और अन्य द्रव्योकी शक्तियोका त्याग किये हुए है ।

प्रश्न ३१—द्रव्यत्वधर्म किन-किन द्रव्योमे है ?

उत्तर—द्रव्यत्वधर्म भी सब द्रव्योमे है । क्योकि सभी द्रव्य परिणमनशील होनेसे अपनी-अपनी पर्यायोको प्रकट करते रहते है ।

प्रश्न ३२—अगुरुलघुत्व धर्म किन-किन द्रव्योमे है ?

उत्तर— अगुरुलघुत्व गुण भी सर्व द्रव्योमे है, क्योकि सभी द्रव्य षड्गुण हानिवृद्धिरूप परिणमते है ।

प्रश्न ३३— प्रदेशवत्व धर्म किन-किन द्रव्योमे है ?

उत्तर—प्रदेशवत्व धर्म भी सर्वद्रव्योमे है। प्रदेशके बिना द्रव्यकी सत्ता कहाँ रहेगी ? चाहे एकप्रदेशी द्रव्य हो, चाहे बहुप्रदेशी द्रव्य हो, प्रदेश तो उनका होता ही है ।

प्रश्न ३४-- प्रमेयत्व धर्म किन-किन द्रव्योमे है ?

उत्तर—प्रमेयत्व धर्म भी सर्वद्रव्योमे पाया जाता है, क्योकि सभी द्रव्य किसी न किसीके द्वारा ज्ञेय, प्रमेय है । सर्वज्ञदेवके ज्ञानमे तो सभी द्रव्य और उनकी समस्त पर्याये युगपत ज्ञात हो जाती है ।

प्रश्न ३५— उक्त प्रकारोसे द्रव्योके ज्ञान करनेसे लाभ क्या होता है ?

उत्तर— अनन्तधर्मात्मक स्वत सिद्ध सद्भूत स्वतन्त्ररूपी द्रव्योके परिज्ञानसे सयोगबुद्धि नही रहती है, अत आकुलताका एकमात्र कारणभूत मोह भी नष्ट हो जाता है । मोहके सर्वथा नष्ट होनेपर अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तआनन्द आदिका पूर्ण स्वाभाविक गुणविकास हो जाता है । यही स्थिति सर्वोपरि लाभ वाली है ।

प्रश्न ३६— क्या द्रव्यसग्रहके कर्ताको अपनी कृतिमे कुछ सशय था, जिससे अन्य मुनीश्वरो द्वारा शुद्ध किये जानेकी अपेक्षा करनी पडी ?

उत्तर— द्रव्यसग्रहके रचयिता पूज्य श्रीमन्नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेवको इन द्रव्यो व तत्त्वो के विषयमे गूढ श्रद्धा थी, सशयका तो अवकाश ही नही था, परन्तु ज्ञानी जनोकी और श्रुतदेवताकी भक्तिमे ओतप्रोत ग्रन्थकर्ताने अपनी लघुता और भक्ति प्रदर्शित की है ।

प्रश्न ३७— "दोससचयचुदा" इस पदसे किन दोषोसे रहित मुनिनाथका ग्रहण है ?

उत्तर— सहजसिद्ध परमात्मतत्त्व और कार्यपरमात्मतत्त्व तथा कार्यपरमात्मतत्त्वकी प्राप्तिके उपायभूत द्रव्यस्वरूप, जीवादि सात तत्त्वोके ज्ञानमे, जिनके न तो सशय है, न विपर्यता है और न अनध्यवसाय है तथा जिनके रागद्वेषादि भी अति मद है, ऐसे मुनिनाथ राग, द्वेष, सशय, विपर्यय व अनध्यवसाय—इन दोषोसे रहित कहे गये है ।

प्रश्न ३८— "सुदपुण्णा" इस पदसे कैसे श्रुतमे पूर्ण मुनिनाथोको कहा गया है ?

उत्तर— ग्रथकर्ताके समयमे उपलब्ध परमागमके ज्ञानसे पूर्ण व उस परमागमके ज्ञानके अवलबनसे सजात निरपेक्ष निजशुद्धात्मतत्त्वके सवेदनसे युक्त मुनिनाथोको "सुदपुण्णा" शब्दसे कहा गया है ।

ऐसे मुनिनाथ द्रव्यसग्रहका शोधन करके, इस प्रकार भक्ति और लघुता प्रदर्शन करके ग्रथकर्ता श्रीमन्नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेवने मोक्षमार्ग रत्नत्रयका प्रतिपादन करने वाले तीसरे अध्यायकी समाप्तिके साथ द्रव्यसग्रह नामक ग्रथ सम्पूर्ण किया ।

यह टीका सन् १९५७ के देहरादून वर्षायोगमे सम्पूर्ण हुई ।

॥ द्रव्यसग्रह–प्रश्नोत्तरी टीका समाप्त ॥